ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

बालाघाट जिले की बैगा जनजाति में पोषण स्तर एवं स्वास्थ्य दशाओं का भौगोलिक अध्ययन

मीनाक्षी मेरावी
(शोधार्थी), रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

भारत में कुल 74 पिछड़ी जनजाति को पहचाना गया है जो कृषि तकनीक, खाद्य संग्रहण एवं साक्षरता एवं निम्न स्तर की दशाओं में जीवन यापन कर रहे हैं। जनजातीय समूहों में स्वास्थ्य की समस्या पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। क्योंकि इनका रहवास सुदूर और एकाकीपन वाला है। भारत की पिछड़ी जनजाति समुदायों में कुछ विशेष स्वास्थ्य समस्या और वंशानुसार विकृतियां होती है जैसे – सिकलसेल एनीमिया, लाल कोशिका, एन्जाईम कमी आदि। इन जनजातियों में अस्वस्थ दशाओं, व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अभाव, शिक्षा की कमी के कारण स्वास्थ्य उत्तम नहीं रहता है। कुछ जनजातियों में विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य समस्या हमेशा पाई जाती है जिनमें मलेरिया, संक्रमण ज्वर, कुपोषण आदि। इनके भोजन की व्यवस्था सामाजिक आर्थिक एवं पर्यावरण पर निर्भर रहती है।

प्राचीन आदिम काल से यह माना जाता रहा है कि वनों में रहने वाली जातियां सम्पूर्ण रूप से वनों पर निर्भर रहती है। वनों से ही अपने मुख्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ वनों से उत्पन्न होने वाले कंदमूल फल या मांसाहार के रूप में जीव जिन्हें वे अपने भोजन के रूप में प्रयुक्त करते हैं। प्रत्येक मानव को यह जानने की जिज्ञासा रहती है कि मानव का व्यक्तिगत स्वास्थ्य कैसा हो तथा इसे सुंदर, बलिष्ठ, बौद्धिक कैसे बनाया जा सकता है जिससे कभी रोगी न हो। आदिवासी क्षेत्रों के वर्तमान, सामाजिक, आर्थिक दशाओं में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा से संबंधित समस्याएं अपने गुण व अवसीमा में अद्वितीय है। उचित शिक्षा के अभाव और चिकित्सा संबंधी सुविधाओं की पर्याप्त उपलब्धता न होने के कारण मृत्यु एवं बीमारी की दर शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक रहती है। स्वास्थ्य एवं पोषण के स्तर को बताने वाले मुख्य स्वरूपों में मानव का बाहरी रंग–रूप, केश, त्वचा–संरचना, आहार संबंधी आदतें एवं पोषक तत्वों को शामिल किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में बैगा जनजाति के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर के स्वरूप का विवरण दिया जा रहा है।

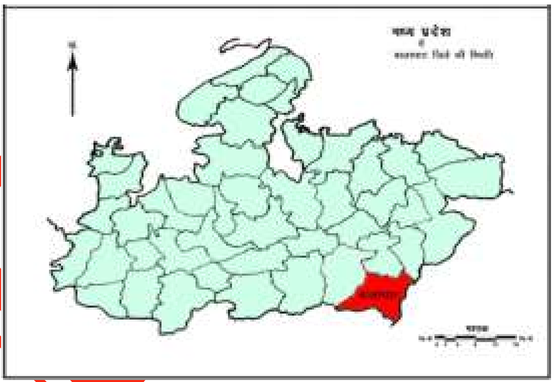

पोषण एवं स्वास्थ्य

पोषण :– पोषण उन प्रक्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जाता है जिनके आधार पर आहार शरीर में प्रवेश करता है और उपयोग में आता है इससे शरीर के समस्त कार्य, वृद्धि एवं उत्तकों में सुधार सुचारू रूप से क्रियान्वित होते हैं । अधिकांश आदिवासियों के भोजन में चाहे वह गरीब हो या अमीर, वृद्ध हो या युवा, स्त्री हो या पुरूष, गर्भवती माता हो या धात्री महिला, किसी न किसी पोष्टिक तत्वों की अधिकता या कती रहती है। सामान्यतः आदिवासियों का भोजन गुणात्मक व परिमाणात्मक दोनों ही दृष्टि से अपर्याप्त होता है।

आदिवासियों में अधिकांश लोगों को प्रतिदिन प्रोटीन–कैलोरी की पूर्ति न होने के कारण विविध स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रसित रहते हैं। संतुलित भोजन न मिलने के कारण तथा पोषक तत्वों की कमी के कारण वे निर्बल, निःशस्त एवं थके –थके दिखाई देते हैं। भोजन की कमी से कुपोषण और अल्प पोषण जैसी स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न होती है।

कुपोषण :– कुपोषण पोषण की वह स्थिति है जिसके कारण व्यक्ति के स्वास्थ्य में गिरावट आने लगती है। यह प्रायः एक या एक से अधिक तत्वों की कमी या अधिकता के कारण उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शरीर में विटामिन एवं खनिज की मात्रा

कम हो जाने से कुपोषण जैसी समस्या उत्पन्न होती है।

अल्पपोषण :– जब व्यक्ति के शरीर में किसी न किसी पौष्टिक तत्वों की निरन्तर कमी पाई जाती हो तो उसे ''अल्पपोषण '' (Under Nutrition) कहते हैं। अर्थात् जब शरीर में भोजन की मात्रा कम हो तो उसे अल्पपोषण कहते हैं।

स्वास्थ्य :– स्वास्थ्य एवं पोषण का घनिष्ठ संबंध होता है, स्वास्थ्य वह स्थिति है जिसमें न केवल बीमारी की अनुपस्थिति है अपितु संपूर्ण शारीरिक, मानसिकव सामाजिक स्वस्थता है।

स्वास्थ्य एवं पोषण का संबंध :– संतुलित आहार वह है, जिससे सुरक्षात्मक रूप से उचित मात्रा में व्यक्ति को सभी पोषक तत्व आवश्यक रूप में पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाये। आदिवासी क्षेत्रों में कुपोषण और न्यून पोषण मुख्य स्वास्थ्य समस्यायें हैं। पोषक तत्वों की कमी के कारण आदिवासी क्षेत्रों में प्रायः बच्चों और महिलाओं में कुपोषण अधिक पाया जाता है। इसके लिये दो कारक प्रमुख हैं –

1. महिलाओं में संतुलित भोजन संबंधी ज्ञान का अभाव और शिक्षा की कमी तथा दूसरा
2. गरीबी और अज्ञानता।

स्वास्थ्य का मौलिक घटक अच्छा पोषण होता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से स्वास्थ्य का पोषण से सीधा संबंध होता है ।

1) वृद्धि और विकास :– अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अच्छा भोजन आवश्यक है। बौद्धिक विकास और शारीरिक विकास भी कुपोषण से सीधे प्रभावित होता है। गर्भावस्था में कुपोषण से बच्चे के शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रौढ़ावस्था में भी अच्छा स्वास्थ्य और कार्य कुशलता बनाये रखने के लिए उत्तम पोषण आवश्यक होता है। इस प्रकार गर्भ से मृत्यु तक पोषण का स्वास्थ्य पर किसी न किसी रूप में प्रभाव पड़ता है।

2) पोषण की कमी और प्रभाव :– कुपोषण कुछ रोगों के लिए सीधे उत्तरदायी होता है। जैसे क्वाशीओरकर, मरासमस, रतौंधि, अल्परक्तता, बेरी–बेरी आदि। अतः इस प्रकार के रोगों की रोकथाम और उत्तम स्वास्थ्य वृद्धि के लिए अच्छे भोजन एवं पोषण की आवश्यकता होती है। कुपोषण की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है, जब शरीर को आवश्यक मात्रा में अच्छा भोजन नहीं मिलता।कुपोषण के लिए कोई आयु बंधन नही है। यह किसी भी उम्र में हो सकता है। परंतु बच्चों में यह सर्वाधिक होता है।

पोषण स्तर का निर्धारण :– पोषण स्तर का निर्धारण निम्न विधियों द्वारा किया जसता है–

(1) क्लीनिकल एसेसमेंट
(2) एन्थ्रोपोमेट्रिक मेजरमेंट
(3) सोशियोइकोनामिक सर्वे
(4) बायोकैमिकल एसेसमेंट

(1) क्लीनिकल एसेसमेंट :– इसमें व्यक्ति का बाहरी स्तर पर परीक्षण कर हीनता के लक्षण देखे जा सकते हैं। इस प्रकार के एसेसमेंट के लिए किसी भी तरह शरीर की त्वचा, बाल, चेहरा, आंखें आदि का बाहरी तौर पर परीक्षण कर उसका पोषण स्तर ज्ञात किया जाता है।

(2) एन्थ्रोपोमेट्रिक मेजरमेंट :– यद्यपि शरीर की वृद्धि एवं विकास वंशानुक्रम द्वारा होता है। किन्तु बहुत कुछ आहार व पोषण का भी उस पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अतः शरीर के कुछ मापों द्वारा व्यक्ति के पोषण स्तर के विषय में लाभदायक जानकारी प्राप्त हो सकती है।

(3) सोशियोइकोनामिक सर्वे :– पोषण का स्तर जानने के लिए किए जाने वाले सर्वेक्षण में से एक है सामाजिक, आर्थिक स्थिति जानने के लिए किए जाने वाला सर्वेक्षण, इसके द्वारा उस समुदाय की सामाजिक व आर्थिक स्थिति जानी जाती है। जिससे पोषण का निर्धारण करना होता है। इससे परिवार का अप्रत्यक्ष रूप से उनके पोषण स्तर की जानकारी प्राप्त होती है।

(4) बायोकैमिकल एसेसमेंट :– पोषण के स्तर को जानने के लिए कुछ बायोकैमिकल विधियां भी अपनाई जाती हैं। रक्त, मूत्र तथा कोशिकाओं के परिक्षण द्वारा पोषक तत्वों की कमी, छिपी हुई हीनता पता चलती है। जब मानव शरीर में किसी पोषक तत्व की कमी रहती है तो उसके लक्षण बाहरी रूप में एक साथ दिखाई नहीं देते। परंतु कमी के प्रभाव के पहले जैव रासायनिक रूप में शरीर के अंदर दिखाई देते हैं व बाद में लक्षण स्पष्ट रूप से त्वचा, बाल, दांत, जीभ, होंठ आदि पर दिखाई देते हैं।

सारणी क्रमांक
आयु अनुसार उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

आयु (वर्षों में)	प्रादर्श संख्या	प्रतिशत
15–25	32	10.1
25–35	82	26.0
35–45	54	18.4
45–55	45	14.2
55–60	39	12.3
60–65	31	9.8
65	28	8.8
योग	315	100

स्त्रोत :– क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपरोक्त सारणी में सर्वेक्षित उत्तरदाओं का आयु अनुसार वर्गीकरण किया गया जिसमें सर्वाधिक उत्तरदाताओं की संख्या 25 से 35 वर्ष के लोगों की है जिनका प्रतिशत 26.0 है। इसके पश्चात् 35 से 45 वर्ष के उत्तरदाता हैं जिनका प्रतिशत 18.4 है। 45 से 55 वर्ष के उत्तरदाताओं की संख्या (45) 14.2 प्रतिशत हैं जिनके माध्यम से सर्वेक्षण के दौरान विभिन्न तथ्यों की जानकारी प्राप्त की गयी।

सारणी क्रमांक
बैगा उत्तरदाताओं का शैक्षणिक स्तर

विकासखण्ड का नाम	निरक्षर			प्रायमरी शिक्षा			माध्यमिक शिक्षा			हाई स्कूल			स्नातक			कुल योग
	पु0	स्त्री	कुल	पु0	स्त्री	कुल	पु0	स्त्री	कुल	पु0	स्त्री	कुल	पु0	स्त्री	कुल	
बैहर	20	26	46	11	07	18	06	13	19	05	07	12	03	07	10	105
बिरसा	36	15	51	08	06	14	15	29	24	06	04	10	03	03	06	105
परसवाड़ा	22	20	42	09	11	20	10	12	22	06	08	14	04	03	07	105
कुलयोग –	78	61	139	28	24	52	31	54	65	17	19	36	10	13	23	315
कुल प्रतिशत	44.1			16.50			20.6			11.4			7.30			100

स्त्रोत :–क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपर्युक्त सारणी में प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट है कि सर्वेक्षित बैगा परिवारों की जनसंख्या में सर्वाधिक निरक्षर व्यक्तियों का प्रतिशत 44.1 प्रतिशत जिसमें बैहर विकासखण्ड से 43.7 प्रतिशत पुरूष तथा 56.5 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं । बिरसा विकासखण्ड के अन्तर्गत कुल 70.5 प्रतिशत पुरूष और 29.4 प्रतिशत महिला निरक्षर प्राप्त हुये। इसी प्रकार परसवाड़ा विकासखण्ड से 52.3 प्रतिशत पुरूष और 47.6 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर हैं।

प्रायमरी शिक्षा के अन्तर्गत कुल 16.5 प्रतिशत बैगा शिक्षित हैं। 20.6 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हैं जिसमें बैहर विकासखण्ड से 31.5 प्रतिशत पुरूष व 68.4 प्रतिशत महिलाएं, बिरसा विकासखण्ड से 62.5 प्रतिशत पुरूष माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं। परसवाड़ा विकासखण्ड के अन्तर्गत कुल 20.6 प्रतिशत शिक्षित हैं जिनमें 45.4 प्रतिशत पुरूष एवं 54.5 प्रतिशत महिलाएं शिक्षित हैं। हाई स्कूल के अन्तर्गत बैगा परिवारों का शैक्षणिक स्तर कुल 11.4 प्रतिशत है जिसमें 47.2 प्रतिशत पुरूष तथा 52.7 प्रतिशत शिक्षित महिलाएं हैं। स्नातक स्तर का कुल शैक्षणिक प्रतिशत 7.30 प्रतिशत है। अतः स्पष्ट है कि सर्वेक्षित परिवारों में ज्ञात तथ्यों से प्राप्त आकड़ों में सर्वाधिक निरक्षर उत्तरदाओं की संख्या पाई गई है।

बैगा जनजाति में पोषक तत्वों का उपभोग प्रतिरूप

पोषक तत्वों की उपलब्धता :– व्यक्ति के उत्तम पोषण के लिए पोषक तत्वों की सही मात्रा मिलना आवश्यक होता है। ये पोषक तत्व भोज्य पदार्थों में अनेक रासायनिक रूप में उपस्थित होते हैं। ये रासायनिक पदार्थ शरीर की वृद्धि, उत्तकों की टूट–फूट

की मरम्मत, रोगों से रक्षा, शरीर की उष्णता एवं नियंत्रण के लिए आवश्यक है। यह रासायनिक पदार्थ शरीर में होने वाली विविध प्रकार की क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए एवं शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं।

पोषक तत्वों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया गया है –

1. **कैलोरी** :– शरीर को उर्जा भोज्य पदार्थों से ही प्राप्त होती है। भोजन में कार्बोज, वसा तथा प्रोटीन तत्व शरीर के लिए सतत उर्जा प्रदान करते हैं। शरीर में ये तीनों भोज्य तत्व (कार्बोज, वसा, प्रोटीन) पाचन, चयापचय के उपरांत कैलोरी देते हैं एवं शरीर की कैलोरी संबंधी आवश्यकता को पूर्ण करते हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के भोज्य विशेषज्ञों ने साधारणतः क्रियाशील, मध्यम क्रियाशील तथा अधिक क्रियाशील व्यक्तियों के लिए प्रतिदिन क्रमशः 2400, 2875 तथा 3800 कैलोरी की अनुशंसा की है।

आवश्यकता से अधिक मात्रा में कैलोरी ग्रहण की जाने पर सामान्यतः शरीर का वजन बढ़ता है। शरीर का वजन आयु एवं लिंग के अनुसार सामान्य रखना हो तो शरीर में आवश्यकता से अधिक मात्रा में उर्जा ग्रहण नहीं करनी चाहिए। मुख्यतः 200 कैलोरी प्रतिदिन भोजन के रूप में शरीर में अधिक ली जाने पर वजन 1 किलोग्राम प्रतिमाह बढ़ता है। सर्वेक्षित क्षेत्र आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र है जहां कैलोरी का प्रमुख स्त्रोत चावल है यहां 83 प्रतिशत कैलोरी अनाज से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त दाल, शाक–सब्जी, शक्कर, तेल, मांस व मछली, अंडे व फलों से प्राप्त होती है।

2. **प्रोटीन** :– सर्वेक्षित क्षेत्रों के अध्ययन में यह पाया गया कि बैगा आदिवासियों के भोजन में ऐसे भोज्य पदार्थों का अभाव है जिनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। सवेक्षित परिवारों में 78 प्रतिशत प्रोटीन अनाजों से प्राप्त किया जाता है। प्रोटीन शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द त्वजमेंश से हुई है। इसका अर्थ है "प्रथम स्थान ग्रहण करने वाला" क्योंकि, यह तत्व जीवन के लिए सबसे आवश्यक तत्व है। प्रोटीन प्रायः मांस, मछली, अंडा, दूध, दही, मक्खन, अनाजों, दालों आदि में पाया जाता है। प्रोटीन शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए अनिवार्य है। इससे शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है।

3. **कार्बोहाईड्रेट्स** :– कार्बोहाईड्रेट्स शरीर में उर्जा का प्रमुख स्त्रोत है। चावल, साबूदाना, गेंहू, शकरकंद, अरबी, चीनी, गुड, शहद आदि इसके प्रमुख स्त्रोत है। इसके अंतर्गत श्वेत सार तथा शर्करा दो पोषक तत्व होते हैं।

4. **वसा** :– वसा एक कार्बनिक यौगिक है। यह ग्लिसरीन एवं वसीय अम्लों का मिश्रण होता है। इसमें कार्बोज की तरह ही मुख्य रूप से तीन तत्व कार्बन, हाईड्रोजन एवं आक्सीजन उपस्थित होते हैं। वसा का मुख्य कार्य शरीर को उर्जा प्रदान करना, शरीर में उर्जा संग्रह करना, शरीर के तापक्रम को नियंत्रित करना, त्वचा को चिकना कांतिमय एवं स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होता है साथ ही शरीर के महत्वपूर्ण उत्पादों के निर्माण में सहायक होता है। वसा हमारे भोजन का महत्वपूर्ण भाग है। वसा एवं तेल प्राकृतिक रूप से, प्राणिज एवं वनस्पति दोनों ही स्त्रोतों से प्राप्त होते हैं। वसा कुछ भोज्य पदार्थों में अदृश्य होता है जिनमें – अनाज, दालें, आटा, फल, सब्जियां आदि है। कुछ भोज्य पदार्थों में वसा दृश्य रूप में उपस्थित होते हैं जैसे – दूध, घी, मक्खन, वनस्पति घी, दही, मूंगफली, सोयाबीन, सरसो, तिल, सूर्यमुखी आदि के बीज। सर्वेक्षित ग्रामों के बैगा परिवारों में पाया गया कि वसा का प्रति वयस्क प्रति दिन उपभोग अनुशंसित मात्रा (20 ग्राम) से बहुत कम है। जबकि भूमिहीन परिवारों में यह मात्रा सबसे कम मात्र 8 ग्राम है।

5. **खनिज** :– खनिज प्रायः अस्थियों, दांतों, तथा मांसपेसियों का निर्माण करते हैं। ये शरीर की विभिन्न आंतरिक क्रियाओं का नियम एवं नियंत्रण करते हैं और शरीर को बीमारियों से बचाते हैं। कैल्सियम, फास्फोरस, लौह तत्व, आयोडीन, सल्फर आदि खनिज तत्व हैं।

6. **विटामिन** :– विटामिन शरीर को सुरक्षा प्रदान करता है। विटामिन शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक होते हैं। ये शरीर की छतिपूर्ति और देखरेख करते हैं। शरीर को उर्जा प्रदान करने के साथ–साथ शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाते हैं। शरीर को इसकी बहुत कम मात्रा में आवश्यकता है। विटीमिन मुख्यतः ए, बी, सी, डी, ई, और के होते हैं।

सारणी क्रमांक

प्रतिदिन प्रति वयस्क व्यक्ति के लिए संतुलित आहार

खाद्य पदार्थ	शाकाहारी (ग्रामों में)	मांसाहारी (ग्रामों में)
अनाज	400	400
दालें	70	55
हरी पत्तेदार सब्जी	100	100
अन्य शाक–सब्जियां	75	75
कंद–मूल	75	75
फल	30	30
दूध	200	100
वसा एवं तेल	25	40
मांस मछली	–	30
अंडा	–	30
शक्कर, गुड़	30	30

स्त्रोत : ICMR

सारणी क्रमांक

सर्वेक्षित परिवारों में प्रति व्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग प्रतिरूप

खाद्य पदार्थ	आयु (वर्षों में)				
	0–6	7–14	15–30	31–62	65+
चावल	434.1	444.5	458.9	470.1	451.9
दाल	10.2	11.2	13.7	15.8	12.7
गेहूं	22.8	24.9	27.2	31.2	26.5
वसा/तेल	9.9	10.7	12.45	16.24	12.32
मक्का	28.1	29.3	35.9	39.3	33.1
मांस मछली	9.6	10.4	11.6	14.4	11.5
शक्कर/गुड़	8.7	11.4	14.6	21.9	14.2
सब्जियां	130.2	141.5	150.5	160.7	145.7
अण्डे	1.4	1.7	1.8	2.4	1.7

स्त्रोतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वेक्षित परिवारों में आयु अनुसार प्रति व्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग को बताया गया है जिसमें 0 से 6 वर्ष तक के बच्चों में चावल का उपभोग प्रतिरूप 434.1 ग्राम है, 7 से 14 वर्ष के बच्चों में यह मात्रा 444.5 ग्राम, 15 से 30 वर्ष तक के व्यक्तियों में यह मात्रा 458.9 ग्राम, तथा 31 से 62 वर्ष के व्यक्तियों में चावल का उपभोग प्रतिरूप 470.1 ग्राम है। दाल का उपभोग प्रतिरूप अनुशंसित मात्रा से प्रायः कम पाया जा रहा है। गेहूं का उपभोग प्रतिरूप प्रति व्यस्क प्रतिदिन बहुत ही कम है। खाद्य तेल वसा का प्रमुख स्त्रोत होता है। तेल का प्रतिव्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग भी कम पाया गया है। मांस मछली तथा अण्डे का उपभोग प्रतिरूप अनुशंसित मात्रा से कम प्राप्त हो रहा है। गुड़ एवं शक्कर का भी उपभोग प्रतिरूप प्रतिव्यस्क प्रतिदिन कम पाया जा रहा है। जबकि हरी पत्तेदार सब्जियों का प्रतिव्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग प्रतिरूप अनुशंसित मात्रा से सामान्य है।

सारणी क्रमांक

सर्वेक्षित परिवारों में पोषक तत्वों का प्रति व्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग प्रतिरूप

पोषक खाद्य पदार्थ	आयु (वर्षों में)				
	0–6	7–14	15–30	31–62	65+
कैलारी	1904.5	1999.2	2115.3	2257.4	2069.1
प्रोटीन	5.5	8.2	9.6	10.5	13.6
वसा	8.0	8.6	9.9	11.8	9.6
कैल्सियम	171.4	179.4	189.2	201.7	185.4
कैरोटीन	2119.8	2294.8	2550.4	2769.9	2433.5
थायमिन	1.17	1.2	1.3	1.36	1.25
राइबोफ्लोबिन	1.08	1.1	1.2	1.27	1.16
लौह	6.6	7.00	7.6	8.2	7.4

स्त्रोतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपरोक्त सारणी में आयु अनुसार सर्वेक्षित परिवारों में पोषक तत्वों का प्रति व्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग प्रतिरूप को बताया गया है। जिसमें कैलोरी का प्रति व्यस्क प्रतिदिन औसत उपभोग अनुशंसित मात्रा (2400 किलो कैलोरी) से बहुत कम है। 0 से 6 वर्ष के बच्चों में यह मात्रा 1904.5 किलो कैलोरी, 7 से 14 वर्ष के बच्चो में 1999.2 किलो कैलोरी, 15 से 30 वर्ष तक के व्यक्तियों में 2115.3 किलो कैलोरी, 31 से 62 वर्ष तक के व्यक्तियों में यह मात्रा 2267.4 किलो कैलोरी तथा 60 से अधिक आयु के व्यक्यिं में यह मात्रा 2069.1 किलो कैलोरी है। प्रोटीन की मात्रा जहां 0 से 6 वर्ष के बच्चों में 5.5 है वहीं 7 से 14 वर्ष तक के बच्चों में यह मात्रा 8.2 है। वसा (अनुशंसित मात्रा 20 ग्राम) का उपभोग प्रतिरूप 0 से 6 वर्ष के बच्चों में 8.0 ग्राम पाया जा रहा है वहीं 7 से 14 वर्ष के बच्चों में 8.6 ग्राम है। इसी प्रकार 15 से 30 वर्ष तक के व्यक्तियों में यह मात्रा 9.9 ग्राम है जबकि 31 से 62 वर्ष के व्यक्तियों में वसा का प्रतिदिन औसत उपभोग 11.8 ग्राम है। कैल्शियम (अनुशंसित मात्रा 400 मिली ग्राम) का उपभोग प्रतिरूप 0 से 6 वर्ष के बच्चों में 171.4 मिली ग्राम है तथा 15 से 30 वर्ष तक के व्यक्तियों में यह मात्रा 189.2 मिली ग्राम है। कैरोटीन जिसे विटामिन –ए कहते हैं का (अनुशंसित मात्रा 2500 आई. यू.) अनुशंसित मात्रा से उपभोग प्रतिरूप कम है। इसी प्रकार थायमिन जिसे विटामिन –बी कहते हैं का उपभोग प्रतिरूप (अनुशंसित मात्रा 1.2 मिली ग्राम) 0 से 6 वर्ष के बच्चों में 1.17 मिली ग्राम, 31 से 62 वर्ष तक के व्यक्तियों में यह 1.36 मिली ग्राम है जबकि 62 से अधिक आयु के व्यक्तियों में यह मात्रा 1.25 मिली ग्राम है। राइबोफ्लोबिन (अनुशंसित मात्रा 1.32 मिली ग्राम) जिसे विटामिन बी –2 कहते हैं की मात्रा अनुशंसित मात्रा से कम प्राप्त हो रही है। इस प्रकार सर्वेक्षित परिवारों में पोषक तत्वों की प्रायः कमीं पायी जा रही है।

आहार प्रतिरूप :– भोजन अर्थात मानव जीवन का प्रमुख आधारभूत स्तंभ माना जाता है। भोजन मानव की प्राथमिक आवश्यकता है जिससे उसे उर्जा एवं बल मिलता है तथा निरंतर कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है। उचित आहार से मानव की लंबाई, भार व आकार प्रभावित होता है। उत्तम रूप से आहार लेने वाले व्यक्ति की हड्डियां, मांसपेशियां, दांत अधिक मजबूत होती है तथा त्वचा व केश पूर्ण रूप से स्वस्थ होते हैं। संसार की कई जनजातियां अपने आहार की परिपूर्ति के लिए अपने आसपास के वातावरण पर निर्भर होते हैं। जनजातियों के भोजन में प्रायः भोज्य तत्वों की कमी पाई जाती है। इनका भोज्य पूर्ण आहार नहीं होता। भोजन इन जनजातियों के लिए मात्र उदर पूर्ति हेतु पर्याप्त होता है। किसी क्षेत्र के निवासियों की खान–पान की आदतें उस क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक क्रियाकलाप, रहन–सहन तथा लोगों की आर्थिक स्थिति से प्रभावित होती है। व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति एवं क्रय शक्ति खान–पान की आदतों और पोषण स्तर को निर्धारित करती है क्योंकि उच्च आय क्रय शक्ति वाले व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में तथा उच्च गुणवत्ता वाले भोज्य पदार्थों का उपभोग कर सकते हैं परन्तु आदिवासी क्षेत्रों में विषम प्राकृतिक परिस्थिति तथा सीमित संसाधनों के कारण पर्याप्त संतुलित आहार नहीं ले पाते हैं जिससे इन क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की पोषण संबंधी समस्याएं पाई जाती है।

ISSN : 2394-3580 **Swadeshi Research Foundation** Vol. – 6, No. - 9 July 2019

A Monthly Journal of Multidisciplinary

International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

1. प्राकृतिक आहार :– 'प्राकृतिक आहार' वह आहार है जिसे मानव सीधे प्रकृति से प्राप्त करता है। इसे उत्पन्न करने में मानव का कोई योगदान नहीं रहता है। इसके अंतर्गत वनों में पाए जाने वाले फल–फूल, कंद–मूल, शाक–सब्जियां इत्यादि आते हैं। बैगा अपने प्राकृतिक पर्यावरण से बहुत ही घनिष्ठ रूप से संबंधित रहते है। बालाघाट जिले के सघन वनों में विभिन्न प्रकार के पौधे एवं वृक्ष पाए जाते हैं जिन पर बैगा जनजाति के लोग अपने भोजन के लिए निर्भर रहते है। प्राकृतिक आहार अर्थात विभिन्न प्रकार के फल–फूल जैसे – तेंदू, घुई, उमर, जामुन, आम, चार, चुरना आदि फलों के अतिरिक्त वनों में मिलने वाले कंद–मूल और जड़ें भी इनके आहार का मुख्य भाग होते हैं। इनमें जड़े एवं कंद सभी मौसमों में सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं जैसे – जमीं कंद, शकरकंद, कनहीय कंद, खिनुआ आदि जिन्हें बैगा अपने भोजन में प्रयुक्त करते हैं। इन जंगली कंद एवं जड़ों को बैगा आग में भूनकर अथवा पकाकर खाते हैं। ये कंद कुछ खट्टे, मीठे और स्वादिष्ट होते हैं। बैगा जंगलों में उगने वाले शाक–सब्जियों का भी भोजन में प्रयोग करते हैं इनमें – चकोड़ा (चिरोटा), धोबई, चेच, आमाहे (अमाड़ी) इत्यादि पत्तों का उपयोग करते हैं। वनों में उगने वाले फफूंद (कुकुरमुत्ता) जिसे पिहरी और पुतपुरा कहा जाता है को औषधीय भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं। मौसमी भोज्य पदार्थ के रूप में वनों में उत्पन्न होने वाले कुकुरमुत्ते के विभिन्न किस्में जिसमें – सवाना पुतपुरा, चिर्कु पिहरी, भटपिहरी, सरईपिहरी, आदि इन्हें बैगा मौसम में अपना भोजन में रूप में उपयोग करते हैं तथा इन्हें धूप में सुखाकर संग्रहण करके भी रखते हैं।

2. कृषि द्वारा उत्पन्न खाद्यान्न :– कृषि से उत्पन्न खाद्यान्न के अंतर्गत बैगा अपने निवास स्थल के करीब की भूमि पर मक्का, दाल (तुअर,कुर्थी), धान उत्पादन कर अपने आहार में प्रयोग करते हैं। इनके अतिरिक्त पहाड़ी व ऊबड़–खाबड़ भूमि को समतल कर उनमें कोदो–कुटकी, मडिया उत्पादन कर भोजन के रूप में उपयोग करते हैं। कभी–कभी कोदो–कुटकी व मडिया, मक्का को उबालकर उसे पेय पदार्थ अर्थात् पेज बनाकर पीते हैं। बैगा अधिकांशतः पहाड़ी घने जंगलों व ऊबड़–खाबड़ भूमि में निवास करते हैं जहां का धरातल अनउपजाऊ होता है। ऐसे में उपयुक्त खाद्यान्न का उत्पादन नहीं हो पाता है। स्वयं की भूमि पर शाक–सब्जियां बहुत कम उत्पादन करते हैं अर्थात प्राकृतिक रूप से उत्पन्न सब्जियों को भोजन में प्रयुक्त किया जाता है।

सारणी क्रमांक

भूमि का स्वरूप

प्रकार	सिंचित		असिंचित		पड़ती भूमि		भूमिहीन		योग	
विकास खण्ड	उत्तरदाता संख्या	प्रति शत	उत्तरदाता संख्या	प्रति शत	उत्तरदाता संख्या	प्रति शत	उत्तरदाता संख्या	प्रति शत	उत्तरदाता संख्या	प्रति शत
बैहर	12	46.15	32	34.7	39	41.0	46	45.0	123	40.9
बिरसा	6	23.0	26	28.2	29	30.5	42	41.1	103	32.6
परसवाड़ा	8	30.7	34	36.9	27	28.4	14	13.7	83	26.3
योग–	26	99.8	92	99.8	95	99.9	102	99.8	315	100

स्त्रोतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपयुक्त सारणी में भूमि के स्वरूप को बताया गया हे जिसमें बैहर विकासखण्ड के 46.15 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके भूमि का स्वरूप सिंचित है। पड़ती के अन्तर्गत 39 उत्तरदाताओं ने बताया कि उनकी भूमि पड़ती है जबकि 45.0 प्रतिशत उत्तरदाता भूमिहीन हैं। बिरसा विकासखण्ड के अन्तर्गत (29) 30.5 प्रतिशत लोगों के पास पड़ती भूमि है। 41.1 प्रतिशत उत्तरदाता भूमिहीन है। परसवाड़ा विकासखण्ड के अंतर्गत (34) 36.9 प्रतिशत उत्तरदाता है जिनकी भूमि असिंचित तथा 13.7 प्रतिशत उत्तरदाता भूमिहीन है।

3. मौसम अनुसार आहार प्रतिरूप :– बैगा मौसम अनुसार विभिन्न भोज्य पदार्थों का सेवन करते हैं इनमें शाक–सब्जी के अतिरिक्त अनाज, दलहन आदि सम्मिलित है। ग्रीष्म ऋतु में कोदो, कुटकी, मक्का, गेंहू का सेवन करते है। इसके साथ ही साथ आम, महुआ, जामुन, तेंदू फल तथा मांसाहार में मुर्गा–मुर्गी, अंडा, सूअर का मांस खाते हैं। वर्षा ऋतु में मछली, जंगलों से प्राप्त कंद–मूल, मशरूम तथा शीत ऋतु में पत्तेदार हरी

सब्जियां जैसे – चकोड़ा, सरसो, चना भाजी आदि का अधिक सेवन किया जाता है। इसके साथ ही वनों से विभिन्न प्रकार के फलों को संग्रहित कर सेवन किया जाता है।

4. दैनिक आहार :– किसी क्षेत्र के निवासियों के खान–पान की आदतें एवं पोषण दशा उनके आहार व्यवस्था पर निर्भर करता है। सर्वेक्षित क्षेत्र आदिवासी बाहुल्य है। यहां चावल की कृषि मुख्य रूप से की जाती है जिसके कारण लोगों के भोजन में चावल का सर्वाधिक उपयोग होता है। आहार का सही मात्रा में उपभोग करने से मानव की शारीरिक एवं कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है। वनों में रहने वाले बैगा जनजाति अपने दैनिक आहार में 3 बार भोजन करते हैं–

सुबह का भोजन :– बैगा जनजाति का पहला भोजन सुबह के समय होता है जिसे **"जुअरा"** कहते हैं, जो पेज के रूप में होता है। जिसमें कोदो, कुटकी, चावल, मक्का का पतला घोल उबालकर बनाया जाता है जिसे बैगा बड़े चाव से एक बार में 2 लीटर पी जाते हैं।

दोपहर का भोजन :– दोपहर के समय भी पेज को सम्मिलित किया जाता है जिसे **"मडिया"** कहते हैं। पेज, मडिया और बियारी में बैगा चटनी का भी सेवन करते हैं। अनाज में चावल, कोदो, कुटकी का भात व सब्जी प्रयोग करते हैं।

रात्रि का भोजन :– रात्रि में बैगा **"बियारी"** का सेवन करते हैं। "बियारी" में दाल, भात, कोई मौसमी सब्जी का उपयोग करते हैं। आग पर मोटी–मोटी रोटी बनाते हैं जिसे महलोन के पत्तों से लपेटकर अच्छी तरह दोनों तरफ सेंककर खाते हैं। मछलियों को हफ्तों तक खाने के लिए छोटी–छोटी मछलियों को घास में लपेटकर हल्की आंच में भूनकर रख देते हैं। बड़ी मछली को काटकर, भूनकर, सुखाकर खाते हैं। इसके अतिरिक्त मुर्गी, तीतर, बटेर, वन मुर्गी, गिलहरी आदि को बैगा आग में भूनकर भोजन के रूप में उपयोग करते हैं। त्योहार उत्सवों में कभी–कभी पूड़ी, सब्जी आदि पकवान बनाए जाते हैं।

बैगा समाज में नशे की प्रवृत्ति

1. मादक पेय पदार्थ

महुआ से बनी शराब :– बैगाओं में महुआ से बनी शराब का अधिक सेवन किया जाता है। महुआ की शराब बनाने के लिए बैगा महुआ के मौसम में महुए के फूलों को बीनकर सुखा लेते हैं। सूखे हुए महुए में मटके में भरकर पानी के साथ कुछ दिनों तक सड़ने के लिए रख दिया जाता है। जब ये महुए का फूल पानी में गल जाता है तब इसे निकालकर शराब बनाई जाती है। इस शराब को बैगा अपने दैनिक जीवन में पेय के रूप में उपयोग में लाते हैं। किसी भी त्यौहार, शादि, विवाह, तीज में महुए की शराब बैगाओं द्वारा पी जाती है। मेहमानों की अगवानी करने तथा विवाह की विभिन्न रस्मों में शराब पीकर खुशियां मनाई जाती है। इनमें पुरूषों के साथ–साथ महिलाएं भी महुए की शराब का सेवन करती है। महिलाओं की अपेक्षा पुरूषों द्वारा शराब का सेवन अधिक किया जाता है। पूजा–अर्चना में शराब को देवी–देवताओं को चढ़ाई जाती है तथा पूजा के पश्चात शराब को प्रसाद के रूप में ग्रहण की जाती है। शराब के बिना कोई भी कार्य अधूरा माना जाता है। बैगाओं में मद्यपान की प्रवृत्ति प्रारंभिक काल से ही पाई गई है। बैगा अपने दैनिक कार्यकलापों में कोई भी कार्य शराब के बिना अपूर्ण समझते हैं। बैगा समाज प्रायः नित्य नशीले पदार्थों का सेवन करते हैं। बिना भोजन के वे रह सकते हैं परन्तु नशा किए बिना वे नहीं रह सकते।

सारणी क्रमांक

मादक पेय पदार्थों का विवरण

विवरण	प्रतिदिन		कभी–कभी		नहीं		उत्सव / त्योहार		योग	
विकासखण्ड	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
बैहर	47	37.6	29	29.5	12	40	24	38.7	112	35.5
बिरसा	42	33.6	38	38.7	8	26.6	22	35.4	110	34.9
परसवाड़ा	36	28.8	31	31.6	10	33.3	16	25.8	93	29.5
योग	125	100	98	99.8	30	99.9	62	99.9	315	100

स्त्रोतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि बैगाओं द्वारा मादक पेय पदार्थ के रूप में प्रतिदिन शराब का सेवन किया जाता है। उत्सवों तथा त्यौहारों में बैहर विकासखण्ड से 38.7 प्रतिशत उत्तरदाता, बिरसा विकासखण्ड से 35.4 प्रतिशत और परसवाड़ा विकासखण्ड से 25.8 प्रतिशत उत्तरदाता शराब का उपयोग करते हैं।

सारणी क्रमांक

नशे की प्रवृत्ति

समयावधि	पुरूष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत
प्रतिदिन	115	41.3	12	30.7
सप्ताह में	45	16.1	8	20.5
महीने में	46	16.5	6	15.3
उत्सव / त्योहारों में	58	20.8	8	20.5
नहीं	14	5.0	5	12.8
योग	278	100	39	100

स्त्रोतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि मादक पेय पदार्थ बैगाओं का दैनिक पेय होता है। पुरूषों में (115) 41.3 प्रतिशत बैगा पुरूष शराब प्रतिदिन पीते हैं। 20.8 प्रतिशत लोग उत्सवों / त्यौहारों में उपयोग करते हैं। जबकि 5.0 उत्तरदाता शराब का प्रयोग नहीं करते। पुरूषों के साथ–साथ बैगा महिलाएं भी शराब का सेवन करती है। जिनमें 30.7 प्रतिशत महिलाएं प्रतिदिन 20.5 प्रतिशत महिला उत्तरदाता सप्ताह में और 12.8 प्रतिशत महिलाएं शराब का सेवन नहीं करती।

कांजी / हडिया :– यह मादक पेय पदार्थ चावल से तैयार किया जाता है। इसे बनाने के लिए पके हुए चावल में पानी डालकर कुछ दिनों के लिए उबालकर ढक कर रख दिया जाता है। जब इसमें खमीर आ जाती है तब इसे छानकर पिया जाता है।

2. मादक खाद्य पदार्थ

गुड़ाकु :– गुड़ और तम्बाकू सेंककर इन्हें मिलाकर पीस लिया जाता है जिससे गुड़ाकु बनता है। इसे नशे के रूप में उपयोग किया जाता है।

तम्बाकू :– यह चूने में चूने में तम्बाकू को मिलाकर बनाया जाता है और इसे निचले होठों में दबाकर रखा जाता है।

3. मादक धूम्रपान

बीड़ी :– बैगा बीड़ी का भी सेवन करते हैं। यह तेंदू पत्ते के मध्य तम्बाकू लपेटकर तैयार किया जाता है। जो नशे के रूप में प्रयोग किया जाता है।

गांजा :– गांजे का प्रयोग भी नशे के लिए किया जाता है। गांजे को चिलम में भरकर उसके धुएं का सेवन करते हैं। बैगा गांजा का प्रयोग झाड–फूंक करने के लिए भी करते है।

सारणी क्रमांक

बैगाओं में मादक वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति

विवरण	प्रादर्श संख्या	प्रतिशत
तम्बाकू	128	40.6
बीड़ी	102	32.3
चिलम	85	26.9
योग	315	100

स्त्रोतः क्षेत्रीय सर्वेक्षण (2017)

उपरोक्त सारणी में मादक वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति को बताया गया है जिसमें तम्बाकू खाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 128 है। जिनकी प्रतिशतता 40.6 प्रतिशत है। बीड़ी का सेवन 32.3 प्रतिशत उत्तरदाता करते हैं तथा चिलम का उपयोग करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 85 है अर्थात 26.9 प्रतिशत चिलम का सेवन करते हैं।

बैगा स्वास्थ्य :– जनजातीय समूहों में स्वास्थ की समस्या पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि इनका रहवास सुदूर एवं एकाकीपन वाला होता है। भारत की पिछड़ी जनजातियों में कुछ गंभीर स्वास्थ्य समस्या वंशानुगत रूप में पाई जाती है जैसे – सिकलसेल एनीमिया, जी–6, पी.डी. लाल कोशिका एन्जाईम, कमी आदि विकृतियां मुख्य है। भारत की कुछ जनजातियों में स्वास्थ्य समस्याएं जैसे – मलेरिया, छयरोग, पेचिस, उच्च शिशु मृत्युदर, संक्रमण ज्वर, खांसी और कुपोषण आदि व्याप्त रहते हैं। इन जनजातियों में स्वास्थ्य विकृतियों के होने का मुख्य कारण उनमें व्यक्तिगत स्वास्थ्य का अभाव, स्वास्थ्य शिक्षा की कमी, विभिन्न स्वास्थ्य दशाएं आदि उत्तम नहीं पाई जाती इस कारण जनजातियों में स्वास्थ्य एवं पोषक तत्वों की समस्या हमेशा व्याप्त रहती है। जनजातियों में पोषक तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया सबसे बड़ी समस्या है। भारत में ग्रामीण एवं जनजातीय महिलाओं में यह समस्या अधिक पाई जाती है। असाक्षरता के कारण इनमें स्वच्छता की कमी पाई

जाती है। वंशानुगत विकृतियों में सिकलसेल एनीमिया और जी–6 पी.डी. अधिक पाया जाता है। सिकलसेल एनीमिया मध्य, दक्षिणी भारत एवं पश्चिमी भारत के जिलों में पाया जाता है। ये बीमारियां मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडू, उडीसा, असम एवं मलेशिया संभाग में सर्वाधिक पाई गई है।

बैगा जनजाति सुदूर सघन वनों में निवास करती है। इनकी प्रमुख दैनिक आवश्यकताएं प्राकृतिक वातावरण से ही पूरी हो जाती है। अपने प्राकृतिक वातावरण पर निर्भर रहकर वनों से कंदमूल, फल, शाक–सब्जी एवं जंगलों के जानवरों के मांस पर निर्भर रहते हैं। बहुत कम ही होता है जहां ये कुछ मात्रा में अपने आवास क्षेत्र के निकट कोदो कुटकी, मक्का, उड़द मौसमी सब्जियां भी उपजाते हैं। सघन वनों के आंतरिक भागों में रहने के कारण मुख्य सड़क मार्ग से हटकर परिवारों के समूहों में निवास करते हैं। इनके ग्रामों में न तो सड़क मार्ग की उत्तम स्थिति होती है और न ही बिजली व पानी की। बैगा प्रकृति के करीब होते हैं तथा सरल स्वभाव शर्मिली व मेहनती एवं इमानदार होते हैं । इनकी अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर होती है कुछ मजदूरी करते हैं। आर्थिक स्थिति जीर्ण अर्थात कमजोर होने के कारण अपने स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान नहीं देते हैं। इनमें शिक्षा का अभाव होने के कारण ये अपने व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाते और विभिन्न समस्याओं से ग्रसित रहते हैं। बैगाओं का अधिकांश समय वनों में गुजरता है जहां से ये अपने खाद्य पदार्थों का संग्रहण करने में गजारते हैं। वनों से कंद–मूल फल आदि का संग्रहण कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इनका मुख्य आहार में पेय पदार्थ अर्थात महुए का संग्रहण कर शराब बनाकर विविध कार्यक्रमों व पूजा–पाठ में उपयोग करते हैं। शराब इनके जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है इसके बिना कोई भी कार्य शुभ नहीं माना जाता है। इनके भोजन में उपयुक्त पोषक तत्व के अभाव के कारण विभिन्न बिमारियां देखने मिलती हैं। बैगा बच्चों में कुपोषण की समस्याऐं गम्भीर रूप में दिखाई देती हैं। बैगाओं के आहार में विटामिन प्रोटीन खनिज और कैलोरी संबंधी पोषक तत्वों की कमी पायी जाती है। मौसमी बीमारियां भी इनके वनों और दुर्गम पहाड़ों पर रहने के कारण मौसम के बदलने पर उनके स्वास्थ्य पर दिखाई देता है। इनमें स्वास्थ्य उपचार की परम्परागत पद्धतियां आज भी व्याप्त हैं उपचार हेतु बैगा ओझा, गुनियां, पंडा पर अधिक विश्वास करते हैं। परन्तु सर्वेक्षण के दौरान यह ज्ञात हुआ कि इनमें रोग उपचार के लिये सर्व प्रथम निकटवर्ती डॉक्टर/चिकित्सक से जांच करवाते हैं तत्पश्चात् पण्डा, गुनियां, ओझा से अपना ईलाज करवाते हैं।

स्पष्ट हैं कि बैगा अनेक स्वास्थ्य संबंधी बिमारियों से ग्रसित हैं इनके स्वास्थ्य का स्तर निम्न पाया गाया है। बैगा शरीर से भले ही हष्ट–पुष्ट दिखते हों परन्तु इसके बावजूद भी ये किसी न किसी बिमारी से प्रायः ग्रसित रहते हैं। विभिन्न शारीरिक एवं पर्यावरणीय अस्वच्छता के कारण बैगाओं की स्वास्थ्य दशायें प्रतिकूल हैं।

बैगा जनजाति का स्वास्थ्य स्तर :– आदिम काल से वनों में रहने के कारण बैगा जन जाति अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति वनों से करती आ रही है इनकी मूलभूत आवश्यकताओं में भोजन प्रमुख है। भोजन से ही मानव के स्वास्थ्य के स्तर को जाना जा सकता है, जो उसके मानसिक, शारीरिक संरचना को पुष्ट बनता है। उपयुक्त संतुलित आहार, पोषक तत्वों की उपलब्धता से मानव की शारीरिक व मानसिक विकास होता है।

बैगा शारीरिक रूप से काफी मजबूत होते हैं परन्तु स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें बहुत होती हैं। शारीरिक संरचना के अनुसार बैगा पुरूष काले व चमकीली त्वचा, लम्बे काले घने बाल, आभायुक्त नेत्रों, हष्ट–पुष्ट होते हैं। बैगा महिलायें भी पुरूषों की भांति गेहुआं व सांवली त्वचा, नाक चौड़ी, होंठ मध्यम आकार के, काले घने लम्बे बाल, छोटी चमकीली आंखों वाली शारीरिक संरचना की होती हैं।

बैगा प्राकृतिक रूप से अपने आहार या उदर पूर्ति हेतु वनों से कंद मूल फल शाकाहारी व मांस के लिये जानवरों जैसे– हिरन, तीतर, बटेर, गिलहरी आदि एवं पक्षियों का सेवन करते हैं।

कृषि के लिए बैगाओं की भूमि अनुपजाऊ है इनमें कुछ ही भाग उपजाऊ है जो नदी कछार के निकट होते हैं। मौसम अनुसार बैगा के भोज्य पदार्थों में परिवर्तन होते रहते हैं। अनाज व दलहन वर्ष भर एक जैसे ही उपयोग करते हैं। आर.एम.आर.सी.टी संस्थान (आयुर्विज्ञान संस्थान) के अंतर्गत डॉ. टी.चकमा द्वारा वर्ष 2002–03 के वार्षिक रिपोर्ट में यह तथ्य स्पष्ट होता है कि बैगा अनाज का सेवन तीनों मौसमों में समान रूप से करते हैं। जबकि दलहन शीत ऋतु में और सब्जियां वर्षा ऋतु में अधिक उपयोग करते हैं। डॉ. टी.चकमा द्वारा अपने रिपोर्ट में बैगा जनजाति के पोषक तत्वों को बताया कि इनमें दीर्घकालीन उर्जा की कमी के कारण

एनीमिया, विटामिन–ए और बी की कमी पाई जाती है। अपने आहार में मोटे अनाजों का उपयोग करते हैं। तेल/वसा, गुड़, शक्कर, फल का उपयोग बहुत कम मात्रा में करते हैं। आर.डी.ए की अपेक्षा प्रोटीन, कैरोटीन, राईबोफोविन, लौह तत्व का सेवन बैगा अपने आहार में बहुत न्यून मात्रा में करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि बैगा जनजाति में असंतुलित भोजन के कारण विभिन्न स्वास्थ्य स्तर निम्न रहता है।

बैगा जनजाति में स्वास्थ्य समस्याएं एवं बीमारियां :– स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में बैगा जनजाति का पर्यावरण उनके स्वास्थ्य के लिए उत्तम नहीं है। सामान्यतः ये लोग सुदूर वनों, पहाड़ी धरातल, ऊबड़–खाबड़ भूमि, अनउपजाऊ मृदा, परिवहन सुविधाओं की कमी, खुले पर्यावरण में रहने के कारण शीत ऋतु में अधिक ठंड से सर्दी, खांसी, कफ व ज्वर की दशाएं उत्पन्न होती है। वहीं वर्षा ऋतु में नदी–नालों के गंदे प्रदूषित जल को पीने से जल संबंधी संक्रमण उत्पन्न होता है जिससे दस्त, उल्टी, हैजा, पेचिस जैसी बीमारियां पाई जाती है। बैगा में अधिकांशतः बच्चों में कुपोषण की दशाएं देखने मिलती है। इनके भोजन में पाए जाने वाले पोषक तत्व शरीर की संपूर्ण पोषक तत्वों की आवश्यकताओं को पूरा करने में असक्षम है।

भारत की विभिन्न जनजातियों में स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं पाई जाती है और ये समस्याएं उनके पर्यावरणीय अस्वच्छता, आर्थिक एवं वातावरणीय परिवेश आदि कारणों से उत्पन्न होती है। जनजातीय सभ्यताएं अन्य सभ्य समाजों की धारा से अलग अपने भिन्न परिवेश में जीवन–यापन करते हैं। इनके रहन–सहन, भोजन, आवासीय क्षेत्र, आवासीय दशाएं इनके स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। अध्यायित बालाघाट जिला सघन वनों एवं सतपुड़ा की पहाड़ी श्रृंखला से घिरा है। बैगा जनजाति जिले के तीन विकासखण्ड – बैहर, बिरसा, परसवाड़ा में निवास करती है। सघन एवं दुर्गम भागों में रहने के कारण इनमें स्वास्थ्य समस्याएं पाई जाती है।

संदर्भ गंथ :–

1. अग्रवाल, पी.सी. (1987), दण्डकारण्य ''मध्य प्रदेश के प्रादेशिक भूगोल'', हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
2. आवातरामानी, सुरेश (1989), ''बैगा आदिवासी, सामाजिक–आर्थिक कल्याण के प्रयास'', मध्य प्रदेश संदेश, 10 मई।
3. अख्तर रईस एण्ड लेयरमेकट, ए.टी.ए. (1985), ''ज्योग्राफीकल ऑस्प्रेक्ट्स ऑफ हेल्थ एण्ड डिजीजेज इन इण्डिया'', कॉन्सेप्ट अवस्थी, निवेदिता एवं कुमार, ए.आर. (1999), ''न्यूट्रीशनल स्टेट्स ऑफ हिल प्रायमरी स्कूल चिल्ड्रन, इंडियन जर्नल ऑफ न्यूट्रीशन एण्ड डायेटेट्रिक्स, पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली।
4. बारीथी, एस. (1991), ''ट्राइबल कल्चर इकोनॉमी एण्ड हेल्थ'', रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. बासु, एस.के. (1994), ''ट्राइबल हेल्थ इन इण्डिया (एड)'', मयंक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
6. बोस, ए. देसाई, पी.बी. (1998), ''स्टडीज द सोशल डायनामिक ऑफ प्राइमरी हेल्थ केयर'', हिन्दुस्तान पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
7. कुम्बले, एम.डी. (1984), ''रूरल हेल्थ'', आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
8. भाटिया, एच.एस., राव, वी.आर. (1986), ''जैनेटिक एटलस ऑफ इंडियन ट्राइल्स, प्रतिरक्षा–रूक्षिर विज्ञान संस्थान (भा.आ.अ.प.) मुम्बई।
9. राय, अजय कुमार (2007), '' बैतुल छिंदवाड़ा पठार के आदिवासियों में परम्परागत चिकित्सा पद्धति का अध्ययन '', उत्तर भारत भूगोल पत्रिका, वाल्यूम 43, जून–दिसम्बर,।
10. पटेल, डी.पी. (1991), '' मध्यप्रदेश की बैगा जनजाति में परम्परागत चिकित्सा पद्धति का अध्ययन '', बुलेटिन ऑफ दि ट्राइबल रिसर्च एण्ड डेव्हलपमेंट इंस्ट्टयूट, भोपाल, ओपी. सिट.।
11. तिवारी, डॉ. शिवकुमार एवं शर्मा, डॉ. श्रीकमल (2009), '' मध्यप्रदेश की जनजातियां'', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बानगंगा, भोपाल।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

कबीर के काव्य में प्रेम और भक्ति

डॉ. संगीता त्यागी
दिल्ली विश्वविद्यालय, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीश

प्रकृति अपना रंग, समय, काल, परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। लेकिन एक संत, एक महात्मा, एक विचारक, एक दार्शनिक, एक समाज–सुधरक के मत, उनकी मान्यताएँ, उनके विचार, उनकी अनुभूतियाँ युग–युगान्तर तक प्रासंगिक बनी हुई रहती हैं क्योंकि उनके पास दिव्य दृष्टि होती है। वे स्थिति–परिस्थिति को ही नहीं, अपने समय की सम्पूर्ण गतिविधियों पर नजर रखते हैं। इन महापुरुषों की वाणी और व्यवहार में अन्तर नहीं हुआ करता, व्यक्तिगत ग्रन्थियों से मुक्त होते हैं। संत–मत नामक सम्प्रदाय के पूर्व प्रवर्त्तक महात्मा कबीर इन्हीं गुणों के भण्डार थे। भगवान बुद्ध के उपरान्त उत्तर भारत के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन चेतना का शंख फूकने वालों में शंकराचार्य के बाद कबीर सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम है, जिन्होंने संत काव्य की धारा को प्रवाहित किया, संत कबीर की अटपटी वाणी आज छह शताब्दियों से निरन्तर सद–भक्ति का परम सन्देश सुनाती आ रही है। अनेक झंझावातों के प्रबल झोंकों को सहता हुआ उनका भक्ति उपवन आज भी हरा–भरा तथा अम्लान है जिसके तरू–तरू से नीति, ज्ञान, वैराग्य, प्रीति, गुरू–महिमा, ईश्वर–महिमा की सरल सुगन्धि निकलकर भग्त–हृदय को तृप्त कर रही है। सन्त कबीर को यदि प्रेम था तो केवल परमात्मा से। सांसारिकता को तो उन्होंने केवल अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए बोझे की तरह ढ़ोया।

यद्यपि वे इस सांसारिकता को त्यागकर शुद्ध वैराग्यवादी जीवन व्यतीत कर सकते थे, किन्तु तब शायद उन पर जीवन से पलायन कर जाने की मुहर लग जाती और शायद तब लोग उनकी बातों को उतनी गम्भीरता से न लेते। उन्होंने जो कहा, वैसा अपने जीवन में स्वयं करके दिखाया। कबीर का जन्म भले ही लहरतारा के कमल पुष्प पर न हुआ हो, किन्तु उन्होंने अपनी जीवन शैली और विचारधारा से यह सिद्ध करके दिखाया है कि जैसे कमल–पत्र जल में रहते हुए भी जल से अलग रहता है, यानि उस पर जल ठहर नहीं पाता, वैसे ही सांसारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए सांसारिकता से अलग रहा जा सकता है और उन्होंने वैसा कर दिखाया। संसार में व्यक्ति को सबसे अधिक प्रेम अपनी सन्तान से होता है और उसमें भी पुत्र से, किन्तु कबीर में वह पुत्रा–प्रेम कहीं दृष्टिगत नहीं होता कबीर सदैव उस पुत्र से असन्तुष्ट रहते थे। उन्होंने उसके विषय में कहा है–

''बूढ़ा वंश कबीर का, उपजा पूत कमाल,
हरिका सुमिरन छोड़ के, घर ले आया माल।''

कहने का तात्पर्य है कि कबीर की भक्ति ही उनके प्रेम का आधार थी। जहाँ कहीं भी उन्होंने सांसारिक प्रेम की बात कही है, वहाँ भी उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति अलौकिक प्रेम अर्थात् भक्ति का ही सन्देश देती है। भारतीय भक्तिधारा में वैष्णव भक्ति के दो रूप मिलते हैं– सगुण और निर्गुण। कबीर निर्गुण भक्तिधारा के अनुयायी थे और ईश्वर के निर्गुण एवं निराकार रूप के प्रति भक्ति–भाव रखते थे। उनकी भक्ति भावना उस ईश्वर के प्रति थी, जो सम्पूर्ण ब्रह्मण का प्राणतत्व होकर भी निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापी है। यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी से उत्पन्न होती है और उसी में समाहित हो जाती है–

''पाँणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कह्या न जाइ।।

कबीर के अनुसार भगवान एक है बस उसे अनेक रूपों से जाना जाता है। वह प्राणीमात्र का परमात्मा है; किसी जाति, धर्म या समुदाय में अपना भिन्न अस्तित्व रखने वाला नहीं। उन्होंने हिन्दुओं के बहुदेववाद का विरोध किया तो इस्लाम धर्म के उस एकेश्वरवाद का भी विरोध किया है, जो खुदा को सातवें आसमान पर बन्दे से अलग बैठा बताता है–

''मुसलमान का एक खुदाई।
कबीर का स्वामी रह्या रमाई।।''

कबीर का परमात्मा इस दृष्टि से वैदिक 'पुरुषसूक्त' के परमात्मा से समानता रखता है। कबीर ने अपनी साखियों एवं पदों में यत्रा–तत्र प्रेम का महत्व बताते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला है, किन्तु

यहाँ स्मरणीय है कि कबीर के प्रेम का यह भाव किसी मनुष्य के प्रति नहीं वरन उस परम्तत्व के प्रति है, जिससे जीव अपनी अज्ञानता के कारण दूर है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद कबीर की आत्मा उसी परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलने के लिए किसी विरहातुर नारी की तरह व्याकुल है–

''बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुम मिलन कूँ, मणि नाही विश्राम।।

कबीर की भक्ति में प्रेम के माधुर्य का पुट है। इस माधुर्य भाव में प्रेमाकुल विरह की अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि उनकी भक्ति पर सूफी विचारधारा का प्रभाव है, तथापि इसकी मधुरता में श्रृंगार रस की प्रधानता है। इस विरहातुर प्रेम–भाव की अधिकता किसी प्रेमिका की भांति प्रियतम पर स्वयं के अस्तित्व को मिटा देने की सीमा तक है। कबीर के प्रेम का यह स्वरूप ईश्वर के प्रति उत्कृष्ट प्रेम–भक्ति की भावना के ओत–प्रोत है। वे परमात्मा की प्राप्ति हेतु प्रेमाकुल है और उसकी प्राप्ति के मार्ग की विकटता को समझते हुए भी प्रेम की वेदी पर स्वयं को बलिदान कर देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि प्रेम का मार्ग अति विकट है। इसमें व्यक्ति को अपने अहंकार अथवा अपने अस्तित्व के प्रति अभिमान को त्यागना होता है, तभी वह अपने प्रियतम के हृदय में प्रवेश पा सकता है–

''कबिरा यहु घर प्रेम का, खाला कर घर नाहिं।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माहिं।।''

कबीर की भक्ति में गुरू की भक्ति का महत्व ईश्वर से भी श्रेष्ठ है क्योंकि गुरू ही ज्ञान प्रदान करके हमें भगवान तक जाने का रास्ता बताता है। इसलिए वे भक्ति मार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरू की सेवा आवश्यक मानते हैं। कबीर ने भक्ति के मार्ग पर चलकर भक्ति के नाम–स्मरण को अत्याधिक महत्वपूर्ण माना हे। वे नाम के स्मरण को ही ईश्वर की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन मानते हैं, किन्तु नाम स्मरण हेतु वे किसी भी प्रकार के बाहरी आड़म्बरों के प्रबल विरोधी हैं। कबीर मुँह से ईश्वर के नाम को जपने या माला फेरने की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार नाम का स्मरण मन से होना चाहिए। कबीर सांसारिकता को त्यागकर जंगल में निवास करने या शरीर को कष्ट देकर ईश्वर की भक्ति करने के समर्थन नहीं थे। वे मध्यम मार्गी भक्ति को महत्व देते थे, जिसे प्रत्येक व्यक्ति सदगुरू से ज्ञान प्राप्त कर, मन से प्रभु नाम का स्मरण करके और सदगुरू से ज्ञान प्राप्त कर, मन से प्रभु नाम का स्मरण करके और बिना किसी आड़म्बर के सरल भक्ति भाव से अपना सकता है। कबीर जीव को ब्रह्मा का ही रूप मानते है इसलिए सगुण एवं निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति में परमात्मा की प्राप्ति के लिए स्वयं के अहंकार का त्याग कर उस परमात्मा में ही एकाकार हो जाने पर बल देते हैं। कबीर के अनुसार भक्ति के लिए हृदय की निर्मलता आवश्यक है, बाह्य आडम्बरों की नहीं। वे इसके लिए किसी जाति पाँति या ऊँच–नीच को महत्व नहीं देते। वे स्पष्ट कहते हैं कि भगवद् भक्ति के लिए किसी जाति–विशेष की आवश्यकता नहीं है– 'जाति पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।'' कबीर के अनुसार भक्ति के मार्ग में माया ही सबसे बड़ी बाध है। यह माया परब्रह्मा की ऐसी रहस्यमयी शक्ति हो जो विश्व–मोहिनी के रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण जीवों को फँसाए रखती है। इससे बचने की कोई लाख चेष्टा करे वह पीछा नहीं छोड़ती–

''मीठी–मीठी माया लजि न जाई।
अग्यानी पुरुष को भोलि–भोलि खाई।।''

कबीर की भक्ति में अपने इष्टदेव के अनुकूल गुणों के ग्रहण करने का संकल्प, प्रतिकूल गुणों का त्याग है। राम के नाम से कबीर ने निर्गुण निराकार ब्रह्मा को सम्बोधित किया है। इस विषय में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना के विचारों को भी यहाँ उद्धृत करना उपयुक्त होगा कि– कबीर एक ऐसी भक्तिधारा को प्रवाहित करना चाहते थे जिसे वर्ण या र्ध्म के व्यक्ति बिना किसी हिचकिचाहट के अपना सकें।'' वास्तव में कबीर अपनी निर्गुण भक्ति–भावना के द्वारा हिन्दू–मुसलमानों के वैमनस्य कोदूर करने में काफी हद तक सफल हुए। यही कारण है कि बहुत बड़ी संख्या में दोनों धर्मों के लोग उनके अनुयायी हो गए। अतः कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति का आश्रय लेकर दोनों जातियों की कटुता एवं वैमनस्यता की भावना को दूर करके एक ऐसी भक्ति का प्रचार किया, जिसमें राम और रहीम, कृष्ण और करीम, महादेव और मुहम्मद की एकरूपता स्थापित करके एक ईश्वर की उपासना पर जोर दिया गया।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

स्वामी विवेकानंद के दर्शन में नव्य वेदान्त एवं धर्म का समावेशी चिंतन

कृति पटेल
शोध छात्रा, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, सतना म.प्र.

भारत वर्ष की पुण्य भूमि पर अनेक महापुरूषों का अविर्भाव हुआ, जिनमें स्वामी विवेकानंद जी एक थे। नवजागरण के पुरोधा, चमत्कारी व्यक्तित्व और बहुमुखी प्रतीभा जैसे गुणों के स्वामी विवेकानंद ने केवल भारतीय आध्यात्मिक चेतना के शिरामणि थे। बल्कि वे महान मनवता के पोषाक, दूरदर्शी विचारक एवं वेदांत के अपने आप में प्रचारक भी थे। इनकी ज्ञान ज्योत्सना से न केवल भारत बल्कि अनेक देशों के अनेक लोगों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि ये पूज्यनीय बन गये और विभिन्न देशों के लोगों ने इनके आदर्शो को अपनाकर इनकी गरिमा को और अधिक बढ़ा दिया है। विभिन्न देशों के लोग आज भी स्वामी विवेकानंद का आभार प्रकट करते है। तथा इन्होनें सम्पूर्ण विश्व में ऐसी छवि स्थापित की है कि आज और आने वाले हर समय में स्वामी जी का अस्तित्व एक आदर्श के रूप में रहेगा।

स्वामी विवेकानंद वेदांत के अध्येता थे। अनेक ग्रंथों का ज्ञान ग्रहण कर स्वामी जी ने उसे जीवन का मूल उद्देश्य बनाया है। इन्होंने वेदांत के आधार पर ऐसा दर्शन विकसित करने का प्रयास किया जो समस्त संघर्षो को दूर करके मानव जाति को बहुमूखी संपूर्णता के शिखर पर पहुँचा सके। विवेकानंद ने वेदांत को पंडितों के शास्त्रार्थ का विषय नहीं माना अपितु इसे प्रतिदिन के पारिवारिक और सामाजिक जीवन की कुंजी सिद्ध किया। वेदांत व्यक्ति के उत्थान एवं विकास और समाज के निर्माण एवं राष्ट्र के समन्वय का शास्त्र है। समन्वयवादी एवं व्यवहारिक विचार ही वेदांत को एक नया आयाम देता है और यही संदेश स्वामी विवेकानंद के ''नव्य वेदांत'' में भी देखने को मिलता है।

स्वामी विवेकानंद की व्यवहारिक वेदांत की तत्वमीमान्सा न तो पूर्णतः यथार्थवादी है, और न ही विज्ञानवादी। इसमें यथार्थवाद और विज्ञानवाद का समन्वय किया गया है, इसलिये स्वामी विवेकानंद के वेदांत को पूर्ण अद्वैतवादी वेदांत की संज्ञा दी गयी है। यत पिंडे तत् ब्रहाम्डे, स्वामी जी मानते है, कि हम अपने दैनिक जीवन में भी पूजा–पाठ, आराधना, ध्यान से भी ब्रह्मनुभूती प्राप्त कर सकते है। इसलिये स्वामी विवेकानंद की तत्वमीमांसा मात्र तर्क न होकर व्यवहार का विषय है इसलिए इसे व्यवहारिक वेदांत भी कहा जाता है।

''एक मात्र जीवन है, एक मात्र जगत है, एक मात्र सत् है। सब कुछ वही एक सत्तामात्र है, भेद केवल परिणाम का है, प्रकार का नही।''

सामान्यतः लोगों की ऐसी धारणा रही हैं, कि वेदांत ऐसा जटिल एवं रहस्यपूर्ण विषय है, जो साधारण मानवीय बुद्धि से अगम्य है। परन्तु स्वामी जी के वेदांत की व्यवहारिक व्याख्या करके इसे जनमानस के स्तर पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है, और वेदांत में अंतर्निहित गूढ़ विषयों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करके स्वामी जी ने स्पष्ट किया है, कि किस प्रकार वेदांत हमारे जीवन का आधार बन सकता है। समस्त पुराने अंधविश्वासों को दूर करने के लिये हमे तर्क बुद्धि की आवश्यकता है, और अंत में जो बचता है वही वेदांत है। वेदांत में यथार्थ योगी, मूर्ति पूजक, नास्तिक इन सभी लोगो के लिये स्थान है इतना ही नही वेदांत सागर में हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई या पारसी सभी एक है, और उसी एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की संतान है। जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आते है। इसी बीच मानव में संतुलन बिगड़ जाता है। आदर्श से हम भटक जाते है, हमारा संतुलन भंग नही हो इसीलिये कर्मण्यता के बीच अनंत शांताभाव वाली अवस्था को पाना ही वेदांत का लक्ष्य है। इसलिये स्वामी विवेकानंद ने कहा है – ''हमे अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में उसे कार्य रूप में परिणित करना चाहिए। केवल यही नही अपितु व्यवहारिक एवं अध्यात्मिक जीवन के बीच जो एक काल्पनिक भेद है, उसे भी मिट जाना चाहिए, क्योकि वेदांत एक अखण्ड वस्तु के संबंध में उपदेश देता है–वेदांत कहता है, कि एक ही प्राण सर्वत्र विद्यमान है। धर्म के आदर्शो को संपूर्ण जीवन में अविष्ट करना, हमारे प्रत्येक विचार के भीतर प्रवेश करना और कर्म को अधिकाधिक प्रभावित करना चाहिए।''

विमर्श :–

स्वामी विवेकानंद के नव्य वेदांत में प्रतिष्ठित नीति :– तत्व का विषय ही ऐसा व्यवहार्य नैतिक सिद्धांत है जो आज के भूमंडलीकरण के युग में विश्वबंधुत्व एवं वसुदेवकुटुम्बकम की सार्थक व्याख्या करते हुये मानव मात्र की एकता कायम रखने में सक्षम हो सकता है। स्वामी विवेकानंद ईश्वर के सत्यज्ञान को अनंत मानते है। वे कहते है कि ईश्वर में मानवीय गुण विद्यामान है। ईश्वर में जो गुण पाये जाते है मनुष्य में भी वे गुण पाये जाते है भले ही उसमें मात्रा का अंतर हो सकता है, और इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य जीवों में श्रेष्ठतम् जीव है, यही गुण उसे विश्वबंधुत्व की भावना से बाँधे रखते है।

''सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वं सर्वपापेभ्यो मोक्षयिश्यामि मा भाचः।''

स्वामी विवेकानंद ने वेदांत को सर्वोच्च दर्शन सर्वोच्च धर्म के रूप में स्वीकार किया है। अपने नव्य वेदांत से हमें यह समझाने का प्रयास किया है कि वेदांत द्वारा प्रतिपादित सत्य एकाकी नही वरन सर्वजन है, साथ ही वह शाश्वत है फलतः वे सभी व्यक्तियों को चाहे वह किसी भी धर्म, संप्रदाय का क्यों न हो, आदर्श जीवन के निर्माण में अपूर्व योगदान करते है।

स्वामी विवेकानंद ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने मानव धर्मो को एक नई अवस्था देकर धर्म के प्रति एक तार्किक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया। धर्म तो भारत की नियती के साथ जुड़ा हुआ है। अद्वैतवाद, विशिष्टताद्वैत, द्वैतवाद आदि वेदांत के विभिन्न संप्रदायों एवं भारतीय दर्शनों में जो विरोध चला आ रहा है, स्वामी विवेकानंद ने उनमे सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया और सभी धर्मो में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया और सभी धर्मो में समन्वय स्थापित करते हुये स्वामी विवेकानंद कहते है कि ''विश्व के सभी धर्म मूलतः अभिन्न है।''

''पवित्रता एवं नैतिकता सदा धर्म के विषय रहें है। पवित्र, सदाचारी मनुष्य स्वयं पर नियंत्रण रखता है और सारे मन एक ही है, समष्टि – मन के अंश मात्र है। जिसे एक ढेले का ज्ञान हो गया उसने दुनिया की सारी मिट्टी जान ली। जो अपने मन को जानता है और स्वअधीन रख सकता है वह हर मन का रहस्य जानता है, और हर मन पर अधिकार रखता है।''

हमारी देह के भीतर अनमोल शक्तियाँ समाहित है, और हमारी दुर्बलताएं ही हमारी शक्तियों को छुपाती है, और मनुष्य को कमजोर बनाती है। मनुष्य में संपूर्ण गुणों को भंडार हैं, और वह अज्ञानता में छुपा हुआ है, और इन्हीं शक्तियों को पहचानना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। स्वामी जी का मानना है कि मनुष्यों के बीच जो भेद है, वह केवल आत्मविश्वास के द्वारा सब कुछ हो सकता है। उन्होंने अपने जीवन में इसे अनुभव किया है। वेदांत यह सिद्ध करता है कि समस्त दुख अज्ञान से ही उत्पन्न होता है, लेकिन यह अज्ञान और कुछ नहीं बल्कि बहुत्व की धारणा है, जिसमें मनुष्य–मनुष्य से भिन्न है, पुरूष और स्त्री भिन्न है, युवा शिशु से भिन्न है, पृथ्वी चन्द्र से भिन्न है, ऐसा बोध होना ही समस्त दुखों का कारण है। वेदांत कहता है, कि यह भेद केवल 'ाासित होता है। जो ऊपर से दिखाई देता है, वही वस्तुओं के अंतस्थल में एकत्व रूप में विराजमान है, और जगत को एकत्व रूप में देखना ही संपूर्ण ज्ञान की स्थिति है।

''जहाँ पर सर्वप्रथम इस एकेश्वरवाद सूचक भाव का आरंभ होता है, वहीं से वेदांत का आरंभ होता है।''

अद्वैत वेदांत का जब अध्ययन करते है, कि शंकराचार्य जगत को व्यवहारिक सत्य मानते है, और कहते है–''ब्रह्म सत्यं जगन्न मिथ्या जीवों ब्रम्हात नापरः''। विवेकानंद कहते है कि – ''एक ही सत्य में एक से अधिक वस्तुओं का अस्तित्व नहीं रह सकता है।'' शंकराचार्य ने माया को अर्निवचनीय माना है, विवेकानंद जीव को कर्ता स्वीकार करते है, वे कहते है कि यदि जीव दुखी या सुखी है, तो वह अपने कर्म के कारण है। एक सच्चे वेदांती की तरह स्वामीजी जीव और ब्रह्म में एकता स्वीकार करते है। स्वामी विवेकानंद के मोक्ष विचार में भी अद्वैत वेदात की झलक मिलती है। शंकर ब्रह्मज्ञान को ही मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते है, कि मोक्ष प्राप्ति के लिये साधक को साधन चतुष्टय की आवश्यकता होती है, तथा उसे श्रवण, मनन, निदिध्यासन को अपनाना पड़ता है। इसके बाद उसे तत्वमसि का आभास होता है। विवेकानंद ने भी अपने दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान को ही साधन माना है। स्वामी जी का यह मानना है कि ये तीन बातें मनुष्य के लिये वरदान है– ''(1) मानव शरीर (2) ईश्वर लाभ

की व्यास (3) ऐसा गुरू जो हमे ज्ञान लोक दिखा सके।'' जब ये तीन वरदान हमारे अपने हो जाते है तब हमे यह समझना चाहिए कि हमारी मुक्ति निकट है, अब केवल हमें ज्ञान ही हमें मुक्त कर सकता है, और हमारा परित्राण भी कर सकता है।

निष्कर्षतः भारत वर्ष और अन्य देशों में भी कल्याण कार्य की दृष्टि से वेदांत के प्रचार और प्रसार के लिये बहुत विस्तृत क्षेत्र है। इस तरह देश और विदेशों में भी मनुष्य जाति के लिए, दुख दूर करने के लिए तथा मानव जाति की उन्नति के लिये स्वामी विवेकानंद ने बतलाया है कि परमात्मा की सर्व व्यापकता और सर्वत्र समान रूप से उसकी विद्यमानता का प्रचार करना चाहिए। क्योंकि जहाँ बुराई दिखाई देती है, वही पर अज्ञान भी मौजूद होता है। जिसे हमे अपने ज्ञान और अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है। यहीं शास्त्रों में भी कहा गया है कि भेद बुद्धि से ही संसार के सारे अशुभ मिलते है और अभेद बुद्धि से शुभ मिलते है। इसलिये संसार में विभिन्नताओं के अंदर यदि ईश्वर के एकत्व पर विश्वास किया जाये तो संसार का कल्याण हो सकता है। और यहीं वेदांत का सर्वोच्च आदर्श माना गया है।

''विश्वात्मा की सर्व व्यापकता और समतारूपी वेदांत के सिद्धांत पर आधारित है।''

वेदांत सभी जगह अर्थात सर्वत्र है। केवल हमे उससे अवगत होना है। निरर्थक विश्वास अंधविश्वास हमारी प्रगति में बाधक है। अगर संभव हो तो हमे इन्हें दूर फेक देना होगा और यह समझना होगा कि ईश्वर सत्य आत्मा के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यदि वेदांत में यह चेतनाशील ज्ञान है कि सभी एक ही आत्मा है और यह बात चारों ओर फैल जाये तो सारी मानवता ही आध्यात्मिक हो जायेगी।

''स्वामी जी के अनुसार संसार को अब भी उन निम्न स्तर के धर्मो की आवश्यकता है जो सगुण ईश्वर की शिक्षा देते है, इसी कारण असली बुद्धिमत उस समय तक जो जनमन को नहीं पकड़ सका जब तक की उसमे वे परिवर्तन सम्मिलित नहीं हो गये जो कि तिब्बत और तातार से परिवर्तित हुये थे।''

स्वामी विवेकानंद का संपूर्ण दर्शन वेदांत पर आधारित है इनकी मूल शिक्षा वेदान्तिक थी। इसीलिए हर एक पहलू को वेदांत के विचारो से समायोजित कर ऐसा निष्कर्ष हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। जो सर्वमान्य है और इसे ही नव्य वेदांत के नाम से परिभाषित किया गया। स्वामीजी ने मानवता के विकास के लिए अपना अमूल्य योगदान दिया है। जिन्होंने संपूर्ण विश्व को एकात्मकता के बंधन में बांधने का प्रयास किया तथा भारत को तथा भारतीय सभ्यता को इतना परिवर्तित किया है कि आज भारत बहुत उन्नति पर है विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं में तथा मानवीय व्यवहार में अत्यधिक बदलाव आया है। ये सभी हमारे लिए अमूल्य योगदान है। अतः विश्व के अभिशापों से दूर करने के लिए स्वामी विवेकानंद के जीवन से मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य – 1996, स्वामी मुमुक्षानंद, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, भाग–8, पृष्ठ–8
2. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, भाग – 8, पृष्ठ –3
3. गीता 18/66
4. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, भाग – 4, पृष्ठ –174
5. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, भाग – 2, पृष्ठ –21
6. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, भाग – 6, पृष्ठ –256
7. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, भाग –5, पृष्ठ –90
8. स्वामी विवेकानंद, विवेकानंद साहित्य, भाग – 10, पृष्ठ –305
9. रोम्याँ रोला कृत विवेकानंद, 1968, सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', रघुवीर सहारा, लोक भारतीय प्रकाशन 15–ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहबाद
10. बसंत कुमार लाल, समकालीन भारतीय दर्शन, 1991, मोतीलाल बनारसी दास, बंगला रोड, दिल्ली–110007
11. नरवणे, विश्वनाथ, आधुनिक भारतीय चिंतन, 1966, राज कमल प्रकाशन दिल्ली।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

पुरातत्व संग्रहालयों में प्रदर्शित दशावतारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन (मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में)

रेनु चौधरी
शोध छात्रा, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर

विष्णु मूर्तियों का उद्भव, विकास एवं प्रतिमा विज्ञान :– भारतीय संस्कृति मूलतः वेदों परिपूर्ण है। वैदिक साहित्य व संस्कृति का दिव्य स्वरूप वेदों में ही झलकता है। वैदिक संस्कृति के आवरण में वेद, संहिता, ब्राह्मण, आरव्यक और उपनषिद् आदि की गणना की जाती है। जिन्हें निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. वेद के मुख्यतः दो भाग होते हैं।

वेद– 1. मंत्र, 2. ब्राह्मण

2. संहिता को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

संहिता– 1. ऋग्वेदीय, 2. यजुर्वेदीय 3. सामवेदीय, 4. अर्थवेदीय।

इन सभी संहिताओं में ऋग्वेद अत्यंतः प्राचीन माना जाता है इसे विश्व में सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है। भारतीय संस्कृति में संहिता के आधार के रूप में ब्राह्मण ग्रंथ को माना जाता है। ब्राह्मण ग्रंथों में शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण ग्रंथ ही अति प्राचीन माने गये हैं। आरण्यक ग्रंथों के विशिष्ठ और अंतिम अंशों में उपनषिद् की गणना की जाती है। ऐसा अनुमान है कि काल और गणना की दृष्टि से उपनषिदों के संख्याक्रम के विचार करने पर विभिन्न प्रकार के (जैसे– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक, त्रेत्तिरीय, ऐतरेय, छांदोग्य एवं आरण्य इत्यादि) उपनिषद् इसके अतिरिक्त कौषतिकी, श्वेताश्वर और मैत्रायणीय तीन अत्यंत प्राचीन उपनषिद् मान गये हैं। यदि वेदांगों के विषय में चर्चा करें तो यह देखा गया है कि इसका मूल स्वरूप भी वैदिक साहित्य के अंतर्गत किया गया है। इस दृष्टि से विचार करने पर वैदिक वांग्मय का आकलन इसके अंतर्गत किया जाता है।

गरूणपुराण के अनुसार जब–जब इस संसार में कोई विपदा या संकट होता है तो एक ही ईश्वर समय–समय पर विभिन्न अवतार स्वरूप से सृष्टि की रक्षा करते हैं। गरूणपुराण में 22 अवतारों का वर्णन किया गया है।

भागवत पुराण में विष्णु के असंख्य अवतारों का वर्णन किया जाता है। जिसकी गणना असंभव है। इसके अनुसार देवता, प्रजापति, मनु व अन्य समस्त प्राणी उन्हीं के अंश है फिर भी अत्याचारियों/दुराचारियों के विरोध में शक्ति व समृद्धि के प्रतीक के रूप में इस जगत में विभिन्न रूपों में प्रकट होते आये हैं। ईश्वर के इन विभिन्न रूपों को ही अवतार कहा जाता है।

श्रीमद् भागवत के दशम व एकादश स्कंधों में विभिन्न अवतारों का वर्णन मिलता है। दशम स्कंध (40/17–22) के अनुसार मतस्य, हयशीर्ष, कच्छप, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरूद्ध, बुद्ध तथा कल्कि अवतारों का वर्णन क्रमबद्ध है। जबकि एकादश स्कंध (4/17–2) में नर–नारायण, हंस, दत्तात्रेय, कुमार, ऋषभ, हयास्य, मतस्य, वराह, कूर्म, गजेंद्र मोक्षकर्ता, बाल विल्य के रक्षक, इंद्र के शाप मोचक, देव आदि अन्य अवतार क्रमबद्ध है।

यदि हम द्वापर युग बारे में चर्चा करें तो पायेंगे कि महाभारत के नारायणीय अंश में एक स्थान पर 4 अवतारों (वराह, वामन, नरसिंह तथा वासुदेव कृष्ण) तथा दूसरे अन्य स्थान पर कुछ अन्य अवतार जैसे– रामदशरअी, रामभार्गव, वराह, वामन, नरसिंह तथा तीसरे स्थान पर 10 अवतारों की व्याख्या की गई है।

हरिवंश पुराण में केवल 6 अवतारों का उल्लेख मिलता है जैसे – 1. वराह, 2. वामन, 3. नरसिंह, 4. वासुदेव कृष्ण, 5. रामदशरथी, 6. भार्गव। यदि वायुपुराण का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि कुछ अवतार इंद्र व शिव के प्रतीत होते हैं। अन्य स्थानों पर इनकी संख्या 10 दी गई है। अग्निपुराण में भी केवल 10 अवतारों की व्याख्या की गई है जबकि मतस्यपुराण में केवल 7 अवतारों का ही उल्लेख मिलता है। परंतु किन्हीं स्थानों पर यह संख्या 10 भी है।

मतस्य कूर्मो वराहश्च नर सिंहासन वामनः।
रामौ रामश्च कृष्णश्य बुद्धः कल्कि च ते दशः।।

विष्णु पुराण में एक स्थल पर कहा गया है कि – ''**मतस्य** कूर्म वराहाश्चसिंह रूपादिभिः स्थितम्। विष्णु मूर्ति का उद्‌भव, विकास एवं प्रतिमा विज्ञान एवं प्रतिमा **विज्ञान।''**

धार्मिक आस्था वाले भारत देश में तथा इसके विभिन्न क्षेत्रों में विष्णु के दशावतार से संबंधित कई मूर्तियों के अवशेष पूर्णावतार रूपी राम व कृष्ण आवेशतार के रूप में परशुराम तथा अंशावतार रूपी आयुध – पुरूष मिलते हैं। वायुपुराण, वराहपुराण, अग्निपुराण तथा मतस्यपुराण में वर्णित मतस्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि अवतार का विशेष उल्लेखनीय है।

इन अवतारों का विस्तृत अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वराह, नरसिंह और वामन रूपेण स्वतंत्र मूर्तियां सर्वाधिक संख्या में उकेरी गयी बेलूर, सोमनाथपुर, ओसियां, भुवनेश्वर, खुजराहो आदि इसके जीवंत साक्ष्य है।

राम, बलराम और कृष्ण की स्वतंत्र मूर्तियां भी पर्याप्त संख्या में मिली है। अन्य रूपों में प्रचलित कुछ स्वरूपों की प्रतिमाएं मंदिरों के देव स्थान या गर्भग्रहों में मुख्य देवता के रूप में प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार तीसरे वर्ग में दशावतार पट्‌ट आते हैं, जिन पर दशावतारों की सामूहिक आकृति उकेरी होती है। दशावतार पट्‌ट का प्रयोग वैष्णव मंदिरों एवं मूर्तियों के परिकर के रूप में किया गया है। खुजराहों में एक सुंदर दशावतर पट्‌ट प्राप्त हुआ है जिसमें एक पंक्ति में क्रमशः कूर्म, नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध और कल्कि अवतारों पर सजीव चित्रण है। वर्तमान में यह पट्‌ट 10वीं शताब्दी ई का है ऐसा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त खुजराहों संग्रहालय में स्थित है। उपलब्ध जानकारी में चित्रगुप्त मंदिर से एकादशमुख विष्णु की विशिष्ट एवं अलौकिक मूर्ति मिली है। उपलब्ध जानकारी के चित्रगुप्त मंदिर से एकादशमुख विष्णु की विशिष्ट एवं अलौकिक मूर्ति मिली है। जो कि आभूषणों से अलंकृत होकर दर्शनीय है। जो कि आभूषणों से अलंकृत होकर दर्शनीय है। इस मूर्ति की मुख्य विशेषता है कि इसमें सभी अवतारों का प्रदर्शन एक साथ हैं। अष्ट भुजायमान इस संदुर मूर्ति के उपरी कोनो पर ब्रह्म और शिव उत्कीर्ण है जो ललितासन में बैठे हैं।

प्रस्तुत अध्याय के परिप्रेक्ष्य में :– कुषाण काल, गुप्त काल एवं मध्यकालीन भारतीय संस्कृति में विकसित एवं पल्लवित दशावतार स्वरूपों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए प्रत्येक अवतार का अलग–अलग विवरण कुषाण काल से मध्यकालीन मूर्तिकला के उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है जिसकी क्रमिक विवेचना निम्नानुसार है :

कुषाण कालीन मूर्तिकला में दशावतार :– इतिहासकारों का मत है कि कुषाणकाल से पूर्व दशावतार का कोई भी स्वतंत्र या सामूहिक चित्रण उपलब्ध नहीं था। इस काल में ही सर्वप्रथम कुछ अवतारों जैसे – वराह और कृष्ण के दर्शन होते हैं। यद्यपि साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में विष्णु एवं उनके अवतारों के अनेक उद्धरण मिलते हैं। विष्णु और उनके अवतार का बीज भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में सर्वप्रथम ऋग्वेद में एक सौर देवता के रूप में मिलता है। उत्तर वैदिक काल में यज्ञ से विष्णु की घनिष्ठता दिखाई पड़ती है – यज्ञों वे विष्णुः।।

इसी दिशा में गहन शोध करने पर ज्ञात हुआ कि विष्णु कुषाण कला और मुद्राओं पर अंकित मिलते है। पांचाल शासक के कार्यकाल के दौरान एक मुद्रा पर विष्णु का स्वरूप उद्रेखित है। 'यहां पर एक बात उल्लेख करने योग्य है कि मुद्रा पर अंकित स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि उसका मूर्ति विज्ञानीय विश्लेषण करना कठिन है। डॉ. दिनेश चंद्र सरकार ने कुषाण शासक हुविष्क की एक ताम्र मुद्रा पर विष्णु का अंकन पाया है किंतु अन्य कई विद्वानों ने उसे विष्णु नहीं माना है।

कुछ विष्णु प्रतिमाएं सम्मुख और पार्श्व दोनों ही ओर से उकेरी हुई है। इन प्रतिमाओं में कुशल वस्त्र सज्जा व फल–पक्षियों का सजीव वर्णन प्रकट होता है। जो कि इस काल में उपलब्ध इन प्रतिमाओं की विशेषता है। इनका स्वरूप यक्ष व बोधिसत्व की प्रतिमाओं से मिलता जुलता दिखाई देता है।

कुषाणकाल की विष्णु की एक प्रतिमा गरूड़ासन रूप में प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा में गरूड़ अपने पंख को फैलायी हुए है। विष्णु चतुर्भुजी है। सामने का

दाहिना हाथ अभय मुद्रा में कंधे तक अन्य प्रतिमाओं के समान ही उठा हुआ है। पीछे के हाथ में गदा है तथा बायें हाथ में शंख और चक्र है।

विष्णु की अष्टभुजी प्रतिमायें भी इस काल में निर्मित हुई है। कुषाण कालीन तीन अष्टभुजी विष्णु प्रतिमाओं में से दो (म.सं. 15:1010, 50:3550) की है और एक राज्य संग्रहालय लखनऊ में (49:247) है। इन प्रतिमाओं के सभी अंग खंडित हैं किंतु जो भी बच पाये हैं उससे यह निश्चय ही कहा जा सकता है कि इन तीनों ही प्रतिमाओं के निर्माण का एक ही मूर्तिविधानीय आधार रहा है। बाण, तलवार और शंख की पहचान स्पष्ट रूप से हो जाती है। सामने का दाहिना हाथ मोड़कर छाती पर रखा हुआ दिखाया गया है। दाहिने के सबसे ऊपर वाले हाथ में पकड़ी हुई वस्तु की ठीक से पहचान नहीं हो सकी है। पवाया से विष्णु की त्रिविक्रम रूप में एक प्रतिमा मिली है, जो ग्वालियर संग्रहालय में है। यद्यपि यह प्रतिमा कुषाण परंपरा में ही निर्मित है किंतु समय की दृष्टि से उपर्युक्त उद्धत ठेठ कुषाण प्रतिमाओं से कुछ बाद की है।

कुषाणकालीन विष्णु की अवतार प्रतिमायें भी देखने को मिलती है। अभी हाल ही में मथुरा संग्रहालय (म.सं. 65:15) में एक वराह की प्रतिमा उपलब्ध हुई है। यह एक बड़े शिलापट्ट के छोर पर उत्तीर्ण है। इसके ही बायें तरफ एक मानव मूर्ति नमस्कार मुद्रा में है। वराह चतुर्भुजी है। इनमें दोनों सामने के हाथ कमर पर है। शेष दोनों ऊपर उठाये हुये हैं। मुखाकृति नष्ट हो चुकी है। इसके पास ही एक छोटी सी स्त्री मूर्ति बनी है। निश्चय ही यह पृथ्वी की प्रतिमा है गले में माला, वक्षस्थल पर श्रीवत्स, कमर में फेटा और धोती पहने हुए हैं जिसके छोर पैरों के बीच लटक रहे हैं। साथ ही यहां एक सूर्य व दूसरा चंद्र है। इस प्रतिमा पर दूसरी सदी ई. का एक लेख है।

इस काल में एक ओर बात देखने को नहीं मिलती है। तत्कालीन कलाकारों ने कृष्ण की कोई भी स्वतंत्र प्रतिमा देखने को नहीं मिलती है। तत्कालीन कलाकारों ने कृष्ण से संबंधित कथाओं को स्थान एवं महत्व दिया जैसे – यमुना पार करते वासुदेव, केशी के साथ कृष्ण का संघर्ष आदि। परंतु ऐसी मान्यता है कि ये प्रतिमाएं भी विष्णु की है। जो विभिन्न मुद्राओं में बैठे हैं एवं साथ में शंख व जलपात्र है।

कुषाणकाल में बलराम भी अत्यधिक लोकप्रिय रहे। बलराम की सर्वाधिक प्राचीन प्रतिमा वर्तमान में लखनऊ संग्रहालय में है। बलराम की कुषाणकालीन अठारह प्रतिमाओं का उल्लेख मिलता है जिनमें से पंद्रह प्रतिमाएं मथुरा संग्रहालय और तीन लखनऊ संग्रहालय में है।

गहन अध्ययन के पश्चात ज्ञात हुआ कि इस युग की प्रधानता के कारण विष्णु का महत्व भी बढ़ा है। किंतु वे विष्णु वैष्णय संप्रदाय के केंद्र बिंदु हुए।

गुप्तकालीन मूर्तिकला में दशावतार :– गुप्तकाल में विष्णु के अवतार स्वरूप के प्रतिमा लाक्षणिक, विवरण तथा मूर्तियों के उदाहरण मिलने लगते हैं। रघुवंश में एक स्थान पर विष्णु के दशावतरों का संकेत मिलता है। जबकि अन्य परिप्रेक्ष्य में चर्चा करें तो वराह अवतार द्वारा पृथ्वी उठाए जाने तथा तीसरे स्थान पर रामवतार का भी वर्णन मिलता है। गोपवेश में कृष्ण का संदर्भ मेघदूत में मिलता है। वृहत्संहिता में दशरथी राम की बीस अंगुल की एक मूर्ति का उल्लेख मिलता है।

मतस्यपुराण में विष्णु की दो भुजाओं का वर्णन देखने को मिलता है। इसके साथ ही साथ अष्टभुजी और चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा का भी विस्तार से उल्लेख है। अष्टभुजी विष्णु के दाहिने भुजाओं में खड़ग, गदा, शर एवं कमल है और बांयी ओर धनुष, खड़ग, शंख और चक्र है। चतुर्भुजी विष्णु को दाहिने हाथों में गदा एवं कमल तथा बायी ओर शंख व चक्र धारण किये बताया गया है। विष्णु के दो चरणों के बीच में पृथ्वी दाहिनी ओर गरूड़ और बांयी ओ पदमहस्ता लक्ष्मी का वर्णन है। प्रतिमा की प्रभावली में सिंह व्याल कल्पलता आदि के अंकन को अनिवार्य कहा गया है।

महाभारत में आदि पर्व में नारायण को चक्रगदापाणि कहा गया है। यह कथन विष्णु के द्वि–भुजी प्रतिमा की ओर इंगित करता है पर विष्णु के प्रतिमा लक्षण विविध रूप विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्रस्तुत किया गया है। जहां पर विष्णु धर्मोत्तर पुराण में प्रस्तुत किया गया है। जहां पर विष्णु को एक मुख और दो भुजाओं वाला, गदा और चक्र धारण करने वाला कहा गया है। इसके समान्तार ही वासुदेव के रूप में विष्णु प्रतिमा का विस्तृत स्वरूप दिया है।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

इसके समानान्तर ही वासुदेव के रूप में विष्णु प्रतिमा का विस्तृत स्वरूप दिया है जिसमें वासुदेव को चतुर्भुज, सौंदर्यशाली, भव्य दर्शन, जलपूर्णमेघकांतियुक्त, शंख के सदृश्य शुभ्र, रेखायुक्त कण्ठ तथा कुण्डल, अंगद, केयूर, वनमाला, कौस्तुभमणि, किरीट आदि आभूषणों सहित निर्मित कहा गया है। कटिवस्त्र और वनमाला घुटनों तक तथा यज्ञोपवीत नाभि तक, उनके सिर के पीछे सुंदर कर्णिका युक्त कमल के रूप में सिरचक, भुजायें लम्बी और हाथों की अंगुलियों के नाखून पतले और लाल ऐसा वर्णन किया गया है। उनके चरणों के बीच में, उन चरणों को स्पर्श करती हुई त्रिवलीभंग से सुशोभित अत्यंत सुंदर कटिवाली स्त्री के रूप में पृथ्वी को प्रस्तुत किया जाय, उनके दोनों चरणों के बीच में एक ताल का अंतर हो और दक्षिण चरण कुछ आगे निकला होना चाहिए। देव स्वरूप के दर्शन मात्र से विस्मित पृथ्वी अंतदृष्टि से युक्त निर्मित हो। मूल प्रतिमा के दायें हाथ में विकसित कमल और बांये हाथ में शंख हो। उनके दायीं और क्षीणकटि सुंदर नेत्रों वाली, सभी आभूषणों से सज्जित मुग्धा स्त्री के रूप में चामरधारिणी गदादेवी को प्रस्तुत किया गया हो जो देवता को ओर देखती हुई दिखाई दे। देवता का दांया हाथ इन्हीं के सिर पर स्थित रहना चाहिए। देवता के बांयी ओर विस्फारित नेत्रों वाले सर्वाभरणसंयुक्त चक्र पुरूष की निर्मित हो जो चामरधारी हो और देव प्रतिमा को देखने में उत्सुक समर्पित प्रतीत होते हों। देवता का बांया हाथ इनके सिर पर रखा हो। बृहतसंहिता में विष्णु को दो भुजाओं के अतिरिक्त अष्टभुज, चतुर्भुज या द्विभुज बनावें। उनके वक्षः स्थल को श्रीवत्स चिंह और कौस्तंभु मणि से सुशोभित करे अतसी पुष्प के समान श्यामवर्ण, पीताम्बर पहने हुये प्रसन्न मुख, पुष्ठ कण्ठ, वक्षःस्थल विशाल, कंधे और भुजावाली, दाहिने तीनों हाथों में खड़ग, गदा और शंख को धारण किये हुए और चौथा हाथ अभय मुद्रा से युक्त प्रस्तुत करें। बांयी तरफ के चार हाथों में धनुष, ढाल, चक्र और शंख धारण किये हुये अष्ठ भुजाओं का निर्माण करना चाहिए। चतुर्भुज विष्णु की प्रतिमा के निर्माण के निर्माण में दाहिने तरफ के एक हाथ में गदा तथा दूसरे से अभय मुद्रा का भाव बांयी तरफ के तरफ हाथ में शंख सहित होना चाहिये। कालिदास से अपनी कृतियों में विष्णु का वर्णन उनके लक्षणों सहित किया है। इनमें विष्णु की मूर्ति की पूर्णता का स्पष्ट उल्लेख रघुवंश में है। विष्णु को मणियुक्त किरीट, शंख, चक्र, गदा और धनुष बाण धारण किये हुए कहा गया है। इस उल्लेख से स्पष्ट होता है कि कालिदास ने अष्टभुजी विष्णु की प्रतिमा को ध्यान में रख कर विष्णु के हाथों में रहने वाली वस्तुओं को उद्धृत किया है। शोध से ज्ञात होता है कि गुप्त कालीन शासक परम भागवत परम वैष्णव थे और भागवत के प्रति विशेष आस्थावान रहे है। अतः स्वभाविक रूप से विष्णु की मूर्तियों का निर्माण का निर्माण एवं इनकी पूजा पाठ में विशेष रूचि देखने को मिलती है। इस समय में विष्णु की मूर्तियां बनी है उनमें नवीनता के साथ–साथ सौंदर्यता का समावेश भी परीलक्षित होता है जिससे मूर्तियां आकर्षक व मनमोहक लगती है।

युग की भावना के अनुरूप विष्णु को पौरूष का प्रतीक मानकर उनमें शारीरिक सौंदर्य भव्य रूप में दिखाई देता है। गुप्तकालीन अनेक स्थानक प्रतिमाओं को प्राप्ति हुई जो द्विभुजी और चतुर्भुजी थी। इनकी तुलना में अष्टभुजी प्रतिमाओं की संख्या कम पाई गई। फतेहपुर सीकरी के समीप रूपवास से विष्णु की एक द्विभुजी प्रतिमा प्राप्त हुई परंतु कुछ इतिहासकारों का मानना यह कि काल के अनुसार मूर्ति कुषाणकालीन थी। शोध की इस श्रृंखला को सतत् जारी रखने पर अध्ययन के दौरान ज्ञात होता है कि पवाया ग्वालियर से विष्णु की कई प्रतिमाएं प्राप्त हुई। ग्वालियर संग्रहालय में रखी गई चतुर्भुजी प्रतिमाओं की चर्चा पूर्ण में की जा चुकी है पर इसी तरह की एक भूरे रंग की बालुये प्रस्तर की चतुर्भुजी (विष्णु) प्रतिमा एक मंदिर में देखने को मिलती है।

इसमें विष्णु के सामने के दाहिने हाथ को अभय मुद्रा में कंधे के ऊपर तक उठा रखा है जबकि पीछे का हाथ गदा पर स्थित है। शंख और चक्र भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे है। किरीट, धोती, यज्ञोपवीत व वनमाला आदि धारण किये हुए है। ग्वालियर के संग्रहालय में विष्णु के कई धड़ पड़े हुए है। जिनमें कमरा नं. 9, 6 व 9 के दो धड़ उल्लेखनीय है जिनमें वनमाला, हार, धोती आदि विशेष है।

जबलपुर से लगभग 70 किलोमीटर उत्तर में तथा बहोरीबंद से तीन किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम में सिंदूर्सी स्थित है। प्रसिद्ध पुरावतत्वविद् डॉ. एस. एन. मिश्र द्वारा उत्खनन में इस क्षेत्र में नरसिंह सिंदूरी की प्रतिमा प्राप्त हुई। यह प्रतिमा अपने आप में परिपूर्ण चतुर्भुजी है। इसमें सामने के दाहिने हाथ में फल पीछे का दाहिना हाथ नंदा देवी के सिर के ऊपर गदा को

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

मूठ पर रखे हुए है। शंख एवं चक्र की स्थिति भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मूर्ति की विशेषता एवं आकर्षण विष्णु द्वारा सभी आभूषणों को धारण किये हुये बनाये गये हैं। मुख पर शांति का भाव दिखाई देता है। विशेषज्ञों का ऐसा मत है कि प्रतिमा पांचवी सदी की हैं।

विदिशा (मध्यप्रदेश) के उदयगिरी गुफा क्र. 6 एवं तक्षशिला से प्राप्त विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा आपस में एक समान ही है। प्रतिमा को कानों में कुण्डल, गले में हार, कंगन आदि आभूषणों से सजाया गया है। कमर में धोती धारण किये हुए है। प्रतिमा में भुजाओं की स्थिति, कमल के फूल व शंख आदि भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शस्त्र के रूप में प्रतिमा में दाहिने हाथ में गदा और बांये हाथ में चक्र धारण है। विष्णु के दोनों पैरो के बीच में गरूड़ की मूर्ति है जिसका केवल सर स्पष्ट है गरूड़ का अंकित होना मूर्तिकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मध्यप्रदेश के ही एक अन्य स्थान सागर (एरण) में विष्णु की चतुर्भुजी प्रतिमा दिखाई देती है। प्रतिमा अत्यधिक प्राचीन व क्षतिग्रस्त है परंतु अपनी भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। प्रतिमा सीधी खड़ी हुई बनाई गई है। प्रतिमा को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि इसकी भुजायें टूट चुकी है। सामने की दोनों भुजायें कमर पर रखी हुई है। शेष दो भुजाओं के संबंध में अनुमान लगाना कठिन है। अलंकृत किरीट के बीच में सिंह मुख उकेरा गया है जो कि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

मध्यकालीन मूर्तिकला में दशावतार :– गुप्तकाल के पश्चात मध्यकालीन साहित्यिक, पुरातात्विक अभिलेख एवं मूर्तिशिल्प के उद्धरणों में दशावतारों के चित्रण का प्रचलन अधिक व्यापक हो गया था। इस काल में दशावतार की स्वतंत्र व सामूहिक दोनों प्रकार की दशावतार मूर्ति मिलती है। सभी अवतारों का प्रचलन होने के बावजूद इस काल में वराह, नरसिंह और वामन मूर्तियों की अधिकता दिखाई देती है।

कई शिल्प शास्त्रों के मतों में विभिन्नता दिखाई देती है जैसे – अपराजित पृच्छा, रूपमंडन एवं देवता मूर्तिद्रकरण में प्रतिमा लक्षण के आधार पर दशावतारों का अंकन है। अपराजितपृच्छा में विष्णु के अवतारों की संख्या दस बताई गई है एवं इनका वर्णन मतस्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम(भार्गव), राम(दशरथी), बुद्ध, कृष्ण और कतिक के रूप में मिलता है।

अपराजितपृच्छ में वर्णित इन अवतारों की सूची शिवपुराण, स्कंदपुराण और गरूणपुराण के समान है। जब रूपमंडन के दशावतारों का अध्ययन किया जाता है तो कृष्ण के स्थान पर बलराम का वर्णन मिलता है। एवं यह सूचीबद्ध अवतार अग्निपुराण में वर्णित अवतारों के समान परिलक्षित होती है देवमूर्ति प्रकरण में दशावतारों का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता है परंतु कुछ विशेष मूर्तियों में वग्मन, राम, वराह और नरसिंह स्वरूप में लक्षण दिखाई देते हैं।

मध्ययुगीन कला में लगभग सभी क्षेत्रों में दशावतार फलकों का निर्माण हुआ। विष्णु की दशावतार मूर्तियां सामान्यतः लक्षण–लांछनों की सीमा में जकड़ी है। किंतु कुछ के निर्माण में शिल्पी की स्वच्छंदता को प्रदर्शित की हुई है। इस दृष्टि से चौसठ भुजाओं से युक्त नरसिंह मूर्ति और शक्ति के साथ परशुराम की अलिगंत मूर्ति विशेष दर्शनीय है।

ये दोनों खुजराहों के शिल्पी की मौलिक रचनाएं है। इस प्रकार की मूर्तियों का वर्णन अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिलता हैं। मूर्तिकार ने विष्णु के सभी अवतारों को सम्मिलित कर एकादशमुखी प्रतिमा का निर्माण कर मौलिकता एवं कुशलता का परिचय दिया है।

इस अध्याय में दशावतारों के स्वतंत्र मूर्तियों के अंकन के रूप में कुषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक अनेक दशावतार विषयक मूर्तियों की रूपरेखा मतस्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम, कृष्ण, बलराम, बुद्ध एवं कल्कि अवतार के विविध रूपों एवं प्राप्त उद्धरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. अग्निपुराण 49–5.
2. स्कंदपुराण 2, 9, 27–28.
3. पदमसंहिता क्रियाखंड 27, 60–63.
4. रघुवंश–कालिदास 13, 5.
5. मेघदूत–कालिदास–''गोवावेषष्य विष्णोः'' 1, 15.
6. वही – ''राधा त्रिधानी हरि'' 13.
7. वराहपुराण – 4/2.
8. मतस्यपुराण – 47/46–50.
9. मध्यकालीन प्रतिमा लक्षण – डॉ.मारूति नंदन तिवारी एवं डॉ कमल गिरि पृ. 81.

10. प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान – नीलकण्ठ पुरूषोत्तम जोशी.
11. प्राचीन भारतीय प्रतिमाविज्ञान एवं मूर्तिकला – डॉ. बृजभूषण श्रीवास्तव पृ. 54.
12. अपरिजितापृच्छा 29, 1–3.
13. जोशी मथुरा की मूर्तिकला पृ. 23.
14. वही – 13, 8.
15. खुजराहो की देव प्रतिमाएं – रामाश्रय अवस्थी पृ. 94.
16. ऋग्वेद – 1/61/7.
17. शेषसंहिता 25, 5–6.
18. शिल्परत्न 2,25,111.
19. भागवतपुराण 9, 15, 28. मार्कण्डेयसंहिता 8.
20. मानसोल्लसा 2, 3, 1 71.
21. भारतीय मूर्तिकला में दशावतार अंकन पृ. 88.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

सीहोर की ताम्राश्मीय संस्कृति

ज्ञानप्रकाश सिंह यादव
शोध छात्र, इतिहास विभाग, शास. हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल

ताम्र पाषाण युगीन संस्कृति के पोषक वे लोग हैं जो गुफाओं से निकल कर मैदानों में कृषि करते थे। परंतु इस युग में लोहे का अविष्कार नही हुआ था केवल ताम्र का अविष्कार ही हो पाया था यह लोग तांबे की कुल्हाड़ियों का प्रयोग करते थे। पाषाण में बड़े हथियार न बनाकर छोटे–छोटे बहुमुल्य पाषाण के लघु उपकरण बनाकर उनसे कार्य करते थे। तीरों के फलक, मछली मारने, पशु पक्षियों को मारने के लिये लघु पाषाण उपकरणों का प्रयोग करते थे।

नदियों के तट पर इस संस्कृति के लोग निवास करते थे क्योंकि संसार में सभ्यताएं नदियों के किनारे ही पनपी हैं। हड़प्पा, मोहनजोदड़ों की संस्कृति के लोग मालवा में नदियों के तट पर बसे, मालवा के घने जंगलों को काटना शुरू किया और अपने छोटे–छोटे गांव बसाए। आज से चार हजार वर्ष पूर्व यह संस्कृति भोपाल, उज्जैन, सीहोर में फल फूल रही थी। इस संस्कृति के लोग (परवर्ती अहाड़ सभ्यता 4 हजार वर्ष से 3800 वर्ष पूर्व, मालव ताम्रश्मीय सभ्यता 3800 से 3500 वर्ष पूर्व) मालवा में विद्यमान थी, इनके अवशेष यहां नही मिले हैं। ऐसा लगता है कि इन दिनों अर्थात कायथा, आहड़ एवं व मालव ताम्राश्मीय सभ्यताओं के काल में माहिष्मती (महेश्वर) ही मालवा का प्रमुख केन्द्र रही है। लेखक को रायसेन जिले के सांचेत ग्राम में अहाड़ संस्कृति के अवशेष मिले हैं।

मालवा मे ताम्राश्मीय युग का श्री गणेश :– मालवा के क्षेत्र में आज से 4500 वर्ष से पूर्व से, मान्धाता के नेतृत्व में हेहैयों ने प्रवेश किया था। उनको यहां की प्राचीन वन्य जातियों के कर्कोटक नागों (संभतः कोरकू) से संघर्ष लेना पड़ा। यह संघर्ष संभवतः मध्याश्मीय वन्य जातियों व कृषिकार जातियों का था। कृषिकार जातियां यहाँ इसलिये निवास कर सकी थीं। क्योंकि उनके पास कांस्य एवं ताम्र के उपकरण थे। ये कृषिकार कायथा सभ्यता के उन्नायक थे। इनके अवशेष उज्जैन को छोड़कर उसके पास चारों तरफ काली सिंध के तट पर कायथा, दंगवाड़ा, मसवाड़िया, मक्सी, आजाद नगर, इन्दौर बांगड़, बिलावली, कपिलेश्वर आदि स्थानों पर मिले हैं।

परवर्ती आहड़ सभ्यता 4 हजार वर्ष पूर्व तथा मालवा ताम्राश्मीय सभ्यता 3800 से 3500 वर्ष के मध्य मालवा में विद्यमान थी। इनके अवशेष भी उज्जैन में नहीं मिले प्रतीत होता है कि इन दिनों कायथा, आहड़ व मालव ताम्राश्मीय सभ्यताओं के काल में माहिष्मती (महेश्वर) ही मालवा का प्रमुख केन्द्र रही है।

पुराण काल :– महाभारत का प्रसंग हड़प्पीय सभ्यता के अंतिम काल में हुआ है और इसके पश्चात् जो सांस्कृतिक शैथिल्य आया है वह ताम्राश्मीय सभ्यताओं के पश्चात के स्तरों में सर्वत्र दिखाई देता है। माहिष्मती के राजा अवंति अधिपति बिंद, अनुविंद के महाभारत के युद्ध में मारे जाने पर यह स्थिति आयी होगी। इस समय मौर्य पूर्व के काले लाल पात्रों का काल इस क्षेत्र में सर्वत्र दिखाई देते हैं। उज्जैन में सांदीपनी आश्रम क्षेत्र में धूसर तथा काले रजित पात्रों के पूर्व की बस्तियां पाई गई हैं। यही महाभारत का काल माना जाता है। उन दिनों उज्जैन महानगर नहीं था, अपितु सांदीपनी आश्रम का सहयोगी महाग्राम रहा होगा। यह वस्ती आश्रम में आस पास तथा ऋण मुक्तेश्वर तक रही। मालवा में आज से 4500 वर्ष से पूर्व से मांधाता के नेतृत्व में हैहयों ने प्रवेश किया। उनका यहां वन्य जातियों के कार्कोटक नागों (संभवतः कोरकू) से संघर्ष लेना पड़ा। यह संघर्ष संभवतः मध्याश्मीय वन्य जातियों व कृषिकार जातियों का था तथा कृषिकार आपने ताम्र कांस्य उपकरणे के कारण यहां स्थायी निवास कर पाये। यह कृषिकार कायथा सभ्यता के उन्नायक थे। इनकी सभ्यता के अवशेष उज्जैन में नहीं पाये गये। जबकि उज्जैन के आप पास कायथा, दंगबाड़ा, मसबड़िया, आजादनगर, इन्दौर, बांगड़, बिलाबली, कपिलेश्वर और मक्सी में मिलें। ये लोग मिट्टी के अति सुन्दर पात्र बनाते थे, उन पर अतिसुन्दर चित्रकारी भी करते थे। लेखक ने मालवा में इस संस्कृति की खोज की है। लेखन के गुरु डॉ. वी. श्री वाकणकर ने इस संस्कृति की खोज करने का दायित्व लेखक को प्रदान किया था। मालवा में सैकड़ों स्थानों पर इस संस्कृति की खोज डॉ. बांकणकर ने की। भोपाल, विदिशा, रायसेन, और सीहोर में इस संस्कृति के उजागर लेखक ने किया।

लेखक ने पार्वती नदी का सर्वेक्षण 1980 में किया। इस नदी के तट पर मालव ताम्राश्मीय संस्कृति आज से 4 हजार वर्ष पूर्व फल फूल रही थी। सीहोर वे निकट आष्टा में पार्वती नदी के तट पर किले या तहसील के टीले पर इसके अवशेष लेखक को प्राप्त हुए हैं। पार्वती के तट पर ही इस सभ्यता का अन्य केन्द्र पारासोन है। यह स्थान नदी के किनारे एक ऊंचे टीले पर बसा है। यहां पार्वती नदी अपने आंचल में बसाये कगारों के निर्माण की कहानी स्वंय कहती है। यहां हजारों साल की प्राचीन सभ्यताओं की कहानी यहां से प्राप्त अवशेषों से मुखर होती है। पंच मुख महादेव का मंदिर एवं मुगल सम्राट अकबर के द्वारा खुदवाये हुए शिलालेख यहां प्राप्त हुए हैं। खैराड़, बैराड़ भी इस सभ्यता के महान् केन्द्र पार्वती नदी तट पर हैं।

चंबल के तट पर रूनीजा, दंगवाड़ा, काली सिंध के तट पर कायथा इस संस्कृति के महान केन्द्र हैं जहां विक्रम विश्वविद्यालय ने डॉ. श्री वाकणकर के निर्देशन में उत्खनन करके इस संस्कृति को प्रकट किया है।

बेतवा नदी जिसका उद्गम स्थल कोलार डेम के निकट झिरी नामक स्थान है। भोजपुर के पास से बहकर विदिशा को निकल जाती है। बैतवा में भोपाल के बड़े तालाब से एक नदी निकलती है जो भद भदा केरवा डेम के निकट से बहकर भोजपुर में बेतवा से मिलती है, उसका नाम कालियासोत है। कालियासोत जब मंडीदीप के आगे बहती है, तो वह एक ग्राम को चारों तरफ से घेर कर आगे भोजपुर में मिलती है। यह ग्राम है "पिपलिया लोरका" यहां ताम्राश्मीय सभ्यता के अवशेष प्राप्त होते हैं। पुरातत्व विभाग, म.प्र., भोपाल ने पिपरिया लोरका का उत्खनन किया है। बेतवा के ही तट पर विदिशा में रंगई के पुल के पास आमखेड़ा में ताम्राश्मीय संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए हैं। रायसेन जिले के ग्राम सचेत में लेखक को ताम्रपाषाणयुगीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए है। बेरसिया तहसील के ग्राम खेजड़ा बब्बर, बुधोर में भी लेखक ने इस संस्कृति की खोज की है जो अब यह स्थान हलाली डेम में डूब गये हैं।

इस संस्कृति के लोग अपने मकान मिट्टी के बनाते थे और ईंटों का प्रयोग नहीं जानते थे। मकान के छत घांस फूस की होती थी। इनके मिट्टी के पात्र पके हुए तथा अतिसुन्दर एवं रंग के लेप द्वारा सुन्दर बनाये जाते थे। इन पर लाल रंग पर काले रंग से चटाई की डिजाइन, धार्मिक स्वस्तिक चिन्ह तथा पशुओं में हिरण इत्यादि के चित्र भी बने होते थे। चार हजार वर्ष बीतने के बाद भी उनका रंग रोगन डिजायन यथावत है, नष्ट नहीं हुई।

ये मनुष्य, सुअर, गाय, बैल, हिरण, खरगोश, गिलहरी, मछली, साम्भर, नीलगाय आदि पशुओं का मांस खाते थे, उत्खनन में जीरे के समान बारीक चावल, उड़द बेर, कबीट इत्यादी अनाज जले हुए प्राप्त हुए हैं। ये लोग यज्ञ करते थे। जली हुई हविषा भी प्राप्त हुई है। इनके हवन कुंड यज्ञशाला बीच ग्राम में बनी हुई मिली है। अतः यह लोग आर्य थे, प्रकृति के उपासक थे। उत्खनन में इनके शवागृह भी मिलें हैं। मृत्यु होने पर गाड़ते थे। गले में मनके या सुअर के दांत की माला तथा सर के पास समस्त भोजन सामग्री मिटटी के बर्तन में रख देते थे। ऊंकारेश्वर मान्धाता, महाराष्ट्र में डॉ. सांली को तथा भीम बेठका में डॉ. वाकणकर को उत्खनन में जो शवागृह मिले हैं उनमें सब के पैर दक्षिण दिशा में किये हुए मिले है तथा घुटने से उनके पैर काट दिये जाते थे क्योंकि ऐसा विश्वास था की यह मानव इसे पुनः इस संसार में लौट कर ना आ जाये।

इस संस्कृति के निवासियों द्वारा बनाये गये मिट्टी के पात्रों के टुकडे लेखक से पास सुरक्षित हैं जो कभी भी देखे जा सकते हैं।

इस संस्कृति के लोगों ने नदियों के तट पर छोटे–छोटे गाँव, जिनमें 10 से 20 घर होते थे बसाये और विशाल नगरों में लगभग 200 घर होते थे। कायथा–महेश्वर बड़े शहर थे, जबकि आजाद नगर इन्दौर गांव थे। मालव ताम्रश्मीय सभ्यता के ये कबीले मालवा में मनोटी से महेश्वर और जावरा होते हुए सीहोर जिले में आष्टा आये और आष्टा से भीमबैठका तक आए। जिस संस्कृति ने मालवा में आहड़ संस्कृति के विनाश के बाद लगभग 4 शताब्दी तक अपना प्रभुत्व बनाये रखा उसे मालवा ताम्राश्मीय संस्कृति की संज्ञा प्रदान की गई। आहड़ संस्कृति के वह लोग थे जिन्होने कायथा संस्कृति का विनाश किया था आहड़ संस्कृति के लोग अपने आप को कायथा में बसाने के बाद वे एरण की तरफ चले गये। लेखक को आहड़ संस्कृति अवशेष 1983 में रायसेन और सागर बीना के पास ऐरण के मध्य रायसेन जिले में सचेत मे प्राप्त हुए। डॉ. वाकणकर को सीहोर, बिलकीसगंज, झागरिया के पास

SRF

शहद करांड में उत्खनन में ताम्राश्मीय संस्कृति अवशेष प्राप्त हुए थे।

शहद करांड केरवा डेम के पास है। खरबई रायसेन के एक शैलाश्रय में भी इस संस्कृति के अवशेष मिले। डॉ. पाण्डेय ने तथा डॉ. जेरी जेकबसन (कोलम्बिया विश्वविद्यालय संयुक्त राज्य अमेरिका) ने भी इसी प्रकार का परीक्षण पुतली कराड़ा में किया। पुतली कराड सांचेत से लगभग 7–8 किलो मीटर का अंतर है। डॉ. वाकणकर ने आष्टा, सारंगपुर, पचौर में इस संस्कृति की खोज करने के पश्चात दंगवाड़ा, रूनिजा, आजाद नगर, एवं इन्दौर में उत्खनन किये जहां उनको यज्ञशाला में हवन पात्र, जले हुए जौ, उडद, गेंहू चावल, प्राप्त हुए। नवदाटोली–महेश्वर–मांधात में तथा विदिशा के उत्खनन में तथा दंगवाड़ा में वृषभ (टेराकोटा) के रूप में प्राप्त हुआ जो यह सिद्ध करते हैं कि यह लोग हड़प्पा, मोहनजोदडो की तरह वृषभ की पूजा करते थे। अग्नि की पूजा करते थे, वे आर्य थे, वे प्राकृतिक प्रकोप, नदियों में बाढ़ एवं अग्नि के प्रकोप तथा बाहरी आक्रमण से घबराकर गुजरात होते हुए दशार्ण क्षेत्र मालवा में ही नहीं अपितु गोदावरी के तट तक पहुंच गये।

सन्दर्भ सूची :–

1. इंडियन आर्कयेलाजी ऐ रिवयू, 1963–64, पृष्ठ, 80
2. निगम स्नेहलता, पर्यटकों का स्वर्ग मालवा, मालवा विशेषांक, 1990, पृष्ठ 7 जनधर्म, – खण्ड 2 (भोपाल)।
3. दि एज आफ एम्पीरियल यूनिटी, पृ. 12–94
4. आर.एस. त्रिपाठी, हिस्ट्री आफ एंशिष्ट इंडिया, पृ. 180
5. इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया, 1908, पृ. 268
6. रायसेन गजेटियर, प्रथम संस्करण, 1976, पृ. 342
7. गजेटियर आफ इंडिया भोपाल एवं सीहोर, पृ. 36

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

मासिक धर्म की समस्याओं पर योग का प्रभाव किशोरियों के संदर्भ में

डॉ. मनोज कुमार शर्मा
शोध निदेशक, योग विभाग, रविन्द्र नाथ टैगोर विश्वविद्यालय (म.प्र.)
लता पाटिल
शोधार्थी

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य मासिक धर्म की समस्याओं पर ''योग'' किस तरह प्रभावकारी हो सकता है व किशोरवय कैसे योग को अपना कर अपना संपूर्ण व्यक्तित्व निखार सकते है। इसकी चर्चा की गई है।

भूमिका :— यद्पि आज का युग सहशिक्षा और किशोरियों की प्रगति के सम्पूर्ण द्वारों को खोलने का है। आज हर किशोरवय, बालिका, महिला उच्च से उच्च शिखर पर विराजमान है, इसके बावजूद भी वे अपने स्वास्थ्य के प्रति पूर्ण सचेत नहीं है। विशेषकर ग्रामीण इलाकों व मध्यमवर्गीय परिवारों में यह ज्ञान एवं सही जानकारी न के बराबर है। इस शोध पत्र के माध्यम से किशोरियों के सम्पूर्ण जीवन काल में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों एवं सामान्य रोग व प्राकृतिक परिवर्तनों की चर्चा की जा रही है। जिस तरह एक उत्तम कार्य हेतु गुणी व्यक्ति की जरूरत होती है ठीक उसी प्रकार आगे आने वाली पीढ़ियों की आधारशीला यही किशोरी होगी, जिसके लिये उसका उत्तम स्वास्थ्य और निरोगी रहना परम आवश्यक है।

भारत जैसे विकासशील देश में मासिक धर्म व उस से जुडी समस्याओं पर बात करना सामाजिक व धार्मिक स्तर पर असहज रूप से महसूस किया जाता है। हमारे यह मासिक धर्म प्रक्रिया पर जानकारी तथा प्रबंधन के लिये उचित जरूरतों का अभाव है, पहली बार मासिक धर्म होने पर जानकारी के अभाव में लड़कियॉ बहुत डर जाती है उन्हें शर्म महसूस होती है और वे अपराध बोध से ग्रस्त हो जाती है जबकि ये एक शारीरिक प्रक्रिया है जो कि हार्मोन परिवर्तन के कारण होती है।

परिचय :— किशोरवय (बालिका/स्त्री) हमारे जीवन का अभिन्न अंग है, किसी भी समाज व देश की तरक्की के लिये जरूरी है कि उस समाज में बालिकाओं को भी उन्नति के बराबर अवसर मिले, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य मजबूत हो, तथा उनको भी परिवार के निर्णय में भागीदारी करने का अवसर मिले। शारीरिक व मानसिक एवं आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में किशोरियों (स्त्रियों) की भूमिका तो परिभाषित की गई, किन्तु आधुनिक संस्कृतियों में किशोरियों की स्थिति इससे बहुत भिन्न है। सम्पूर्ण विश्व में लोग अपने अपराध व पाप से लड़ रहे है। यदि किशोरियों की सम्मानीय अवस्था को पुनः जीवित करना चाहते है तो आपको अपनी मनोवृत्ति में पूर्ण परिवर्तन लाना होगा। वस्तुतः सामाजिक संरचना को धार्मिक वास्तविकताओं की नयी अवधारणा का ऐसा आधार देना होगा, जिससे मनुष्य के सम्पूर्ण विकास में किशोरियों की भूमिका को अच्छी तरह समझा और स्वीकार किया गया हो।

नये समाज की प्रगति व उन्नति के लिये यह अनिवार्य है एक किशोरी को अपने सम्पूर्ण शरीर की क्रियाओं व उसके बदलाव की जानकारी होनी चाहिए, विशेषकर ''मासिक धर्म संबंधी'' शारीरिक अंगों की आंतरिक स्थिति को जान लेना इतना सरल नही होता है। अनेक किशोरियॉ सर्वाधिक होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का अनुभव तो करती है किन्तु अनेक कारणों से अनभिज्ञ रहती है। किशोरियों में मासिक धर्म संबंधी बातों से जुडी रहस्यात्मकता लज्जा एवं अंधविश्वास ने उनके अज्ञान को और भी बढा दिया है। किशोरियों को अपने शरीर के प्रति अधिक संवेदनशील तथा जागरूक होने में सहायता करने के लिये इसे अपनी चर्चा में सम्मिलित किया है, यद्पि किशोरियों की व्यक्तिगत अनुभूतियॉ ही उसके अपने शरीर के ज्ञान का वास्तविक आधार है फिर भी प्रमाणिक शरीर क्रिया विज्ञान जो मात्र एक रूप रेखा है, उन अनुभूतियों के स्पष्टीकरण में सहायक होता है।

अपनी शरीर की क्रियाओं को समझते हुये उनके प्रति संवेदनशील होकर किशोरी भय का प्रतिकार कर सकती है, इससे उसमें आत्मविश्वास भी उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त शरीर की लयात्मकता और स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान के आधार पर शरीर में उत्पन्न होने वाले किसी रोग या विकार का जल्दी पता चल जाता है। इस प्रकार की सजगता प्रत्येक किशोरवय में होती

है। किन्तु उनमें से कुछ ने स्वयं को इतना संवेदनशील बना लिया है कि उन्हें मात्र शारीरिक परिवर्तन का नहीं बल्कि अंदर होने वाले सूक्ष्म शक्ति के प्रवाह का भान भी हो जाता है। अपने शरीर की शक्ति का ज्ञान तथा शक्ति का संवेग नियंत्रण प्रत्येक बालिका का जन्म सिद्ध अधिकार है।

शरीर रचना :– हमारा भौतिक शरीर प्रकृति की उत्कृष्ठ रचना है जो आश्चर्यजनक ढंग से सशक्त एवं कुशलपूर्वक समेकित है कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी यह बिना हमारे हस्तक्षेप के सुव्यवस्थित रूप से क्रियाशील रहता है। मानव शरीर एक आत्मनियंत्रित यंत्र के समान है जो अपनी आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार स्वयं को सामाजित करता है।

मासिक धर्म :– एक परिपक्व बालिका को प्रत्येक माह एक विशेष क्रम में ऋतुस्श्राव होता है जो रजोदर्शन से रजो निवृत्ति तक निरंतर मासिक आवर्तन के रूप में चलता है। प्रत्येक माह में ऋतुस्त्राव तीन से सात दिनों तक होता है इस अवधि में शरीर लगभग एक कप द्रव निकल जाता है। पहला ऋतुस्त्राव प्रायः दस से चौदह वर्ष की आयु में होता है यदपि संभव है कि यह सत्रह से अठारह वर्ष की आयु तक भी जाता है या कभी नही भी आता है। मासिक चक्र उम्र के 30 से 40 वर्षों तक चलता है।

मासिक धर्म की अनियमितताएँ :– किसी भी स्त्री का मासिक चक्र पूर्णतः नियमित नही होता, क्योंकि प्रकृति में होने वाली कोई भी दो घटनाएँ पूर्णतः समान नही होती। जिस प्रकार हर बालिका की संरचना अलग है ठीक उसी प्रकार प्रत्येक का ऋतुस्त्राव भी अलग है।

मासिक धर्म में होने वाला दर्द दो प्रकार का होता है।

प्राथमिक डिसमेनोरिया :– यह पेट के निचले हिस्से में होने वाला दर्द होता है इस का किसी भी प्रकार की शारीरिक बीमारी से कोई संबंध नही होता है। सामान्यतः यह दर्द आपको पहली बार मासिक धर्म शुरु होने के छह माह या साल भर के अंदर शुरूआत में होता है। कभी–कभी यह दर्द हर मासिक धर्म के शुरूआत में होता है और तीन से चार दिन में बंद भी हो जाता है। इस दौरान पेट के निचले हिस्से में और कभी जॉघों या कमर व पीठ में भी दर्द का अनुभव होता है।

सेकेण्ड्री डिसमेनोरिया :– इस प्रकार के मासिक धर्म के दर्द आपके स्वास्थ्य को प्रभावित करते है जैसे गर्भाशय फाइब्रॉइड, पेल्विक इफ्लेमेटरी डिजीस या एंड्रोगेड्रिओसिस आदि।

एंड्रोमेट्रिओसिस के कारण होने वाला दर्द आपकी मासिक चक्र के बीच महसूस होता है और महावारी होने के एक हप्ते पहले यह दर्द बढ जाता है। कभी–कभी इसकी वजह से कब्ज की शिकायत भी होती है। शरीर में प्रोजेस्टेरोन की अधिकता होने पर ऐठन के साथ दर्द होता है। जबकि ओएस्ट्रोजेन के आधिक्य से रक्ताधिक्य कृच्छार्तव की समस्या उत्पन्न होती है।

प्रोजेस्टेरोन की कमी अर्थात ओएस्ट्रोजेन की अधिकता के कारण भी शरीर की कोशिकाओं में सोडियम अवरूद्ध हो जाता है तथा पोटेशियम बाहर निकल जाता है जिस के गंभीर परिणाम होते है सम्पूर्ण स्नायुतंत्र एवं मस्तिष्क के संवेगों का संचार सोडियम पोटेशियम के सही अनुपात पर निर्भर करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋतुस्त्राव की अवधि में हमारी भावनात्मक दुर्बलता का मूल कारण हर्मोनों का असंतुलन है जो शरीर क्रिया विज्ञान का अंग है।

मासिक धर्म संबंधी अनियमितताओं पर योग का प्रभाव

हार्मोन तंत्र :– अंतस्त्रावी तंत्र स्नायु तंत्र के साथ साथ चलता है यह विभिन्न आंतरिक क्रियाओं में सामांजस्य स्थापित करता है इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के रसायन जिन्हें हार्मोन कहा जाता है विशेष नलिका विहीन गंन्थियों के द्वारा सीधे रक्तधारा में निःस्त्रावी हो जाते है तब से हार्मोन पूरे शरीर के सभी भागों में संचरित हो कर शरीर की वृद्धि उसके गठन और आकार पर अदभुत प्रभाव डालते है वे स्त्रियों की मनोदशा, मानसिक शक्तियों, जीवन के प्रति उनकी अभिवृत्ति ऊर्जा और व्यक्तित्व का निर्माण करते है।

मानव शरीर में निम्नलिखित ग्रंथियॉं है ये प्रायः सभी दो दो की संख्या में होती है प्रत्येक ग्रंथि की क्रियाओं का एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध होता है।

SRF

विभिन्न हार्मोनों की अंतःक्रियाएँ इस तंत्र का महत्वपूर्ण पक्ष है इस प्रकार किसी एक ग्रंथि में से कोई भी विकार उत्पन्न हो जाये तो स्त्री के सम्पूर्ण शरीर तथा उसके मनोभावों पर गंभीर प्रभाव पडता है।

पीयूषिका/ग्रंथि :– यह मटर के दाने के आकार की ग्रंथि है जो मस्तिष्क के नीचे स्थित होती है यह ऐसी प्रमुख ग्रंथि है जो विभिन्न हार्मोनों की सहायता से अन्य सभी ग्रंथियों पर नियंत्रण रखती है।

पीयूषिका ग्रंथि को अंतःस्त्रावी संख्यान की मास्टर ग्रंथी के रूप में माना जाता है। यह निम्न सात हार्मोन्स का निर्माणा करता है।

वृद्धि हार्मोन GH

प्रोलेक्टिन – यह हार्मोन इस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन हार्मोन के साथ मिल मासिक धर्म व गर्भावस्था के दौरान स्तनों में नालियों को विकसित करता है तथा प्रसव के उपरांत दुग्ध उत्पादन को प्रेरित करता है।

थाइरॉयड उद्दीपक हॉर्मोन TSH

एड्रीनोकॉर्टिकोट्रोपिक हॉर्मोन ACTH

ल्यूटीनाइजिंग हॉर्मोन LH – स्त्रियों में एक अस्थायी अंतस्त्रावी ऊतक का निर्माण होता है जो स्त्री में प्रोजेस्टेरोन एवं इस्ट्रोजन का स्त्रावण करता है।

फॉलिकल उद्दीपक हार्मोन FSH – यह भी एक गोनाडोट्रापिक हार्मोन है स्त्रियों में यह प्रत्येक मासिक चक्र के दौरान ओवेरियन फॉलिकल्स की वृद्धि एवं उनकी परिपक्वता को उद्दीपक करता है।

मेलेनोसाइट उद्दीपक हार्मोन MSH –

पीनियल ग्रंथि – यह ग्रंथि मटर के दाने की लाल से भूरे रंग की रचना है जो मस्तिष्क के प्रमस्तिएकीय अर्द्ध गोलार्द्धो के भीतर गहराई में तलीयवेन्ट्रिकल के पिछले छोर पर स्थित रहती है। बालक और बालिकाओं की शारीरिक परिपक्वता तथा व्यस्को में भावनात्मक स्थिरता इस ग्रंथि पर निर्भर रहती है।

सेरोटोनीन नामक एक पीनियल हार्मोन की अपर्याप्तता सभी आयु की स्त्रियों में अवसाद का कारण बनती जाती है यह समस्या सभी आयु वर्ग की स्त्रियों में होती है।

अवटु ग्रंथि – थॉयरायड द्वारा चयापचय शारीरिक वृद्धि और रक्त संरचना का नियंत्रण होता है यह विभिन्न अंगों एवं तंत्रों को सक्रिय या अवरूद्ध कर शरीर के अंदर की जैविक घडी का नियमन करती है।

परावटु ग्रंथि – यह मसूर के दाने के आकर की चार छोटी–छोटी ग्रंथियॉं होती है जो कि थाइरॉइड ग्रंथि के प्रत्येक खण्ड की पोस्टीरियर (पिछली) सतह में अवस्थित रहती है ये स्वतंत्र रूप से अस्थि वृद्धि एवं कैल्शियम और फास्फोरस के वितरण का नियंत्रण करती है।

थाइमस – यह वक्ष के बीच में स्थित होती है। बच्चों की वृद्धि के स्वरूप का नियंत्रण करने में इसका विशेष महत्व होता है एलर्जी तथा रोगो का संक्रमण होने पर प्रतिरक्षण प्रतिक्रियाओं में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका अब ज्ञात हो चुकी है। थाइमस के असंतुलित होने पर शरीर की प्रतिरोधकता एवं भावनात्मक स्थिरता कम हो जाती है। इस ग्रंथि से स्त्रावित स्त्राव का प्रभाव जननेन्द्रियों के विकास तथा यौवनारम्भ पर पडता है।

एड्रीनल ग्रंथि – यह प्रत्येक गुर्दे के ऊपरी सिरे से जुडी रहती है इनके बीच के भाग से एड्रिनेलिन एवं नारएड्रिनेलिन उत्पन्न होते है जो रक्चाप, श्वसन, आक्सीजन की खपत तथा 'लडो या भागो' जैसी प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करते है।

एड्रिनेलिन कॉर्टेक्स से ऐसे स्टेरॉयड उत्पन्न कर होते है जो यकृत, गुर्दो, प्रजनन अंगो, रक्चाप, प्रोट्रीन पाचन तथा शर्करा एवं वसा के चयापचय को प्रभावित करते है।

अग्नाश्य – इसमें लैंगर हैस की द्वीपिकाएँ होती है जिनमं पाचक रस और इन्सुलिन हार्मोन उत्पन्न होते है जो रक्त शर्करा को नियंत्रण में रखते है।

प्रजनन ग्रंथियॉं – स्त्रियों में डिम्ब ग्रंथियों से ओएस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रोन उत्पन्न होते है जो ऋतुस्त्राव को नियमित रखते है इन हार्मोनों के असंतुलित होने से प्रजनन संबंधी गडबडी भावनात्मक संवेदनशीलता, चिंता और विषाद उत्पन्न हो जाते है।

प्रोजेस्टेरोन नामक हार्मोन स्त्री जीवन में लम्बी अवधि तक डिम्ब क्षरण और ऋतुस्त्राव को संचालित रखता है यह चक्र स्त्री के शरीर क्रिया विज्ञान का अत्यंत नाटकीय पक्ष है जो स्त्री एवं पुरूष शरीर के बीच का महत्वपूर्ण अंतर है। ऋतुस्त्राव के कारण केवल अंतस्त्रावी संतुलन परिवर्तनशील नही रहता, बल्कि सभी अंतस्त्रावी ग्रंथियॉं घनिष्ठ रूप से एक दूसरे से जुडी रहती है जिससे निरंतर होते रहने वाले इस परिवर्तन

का प्रभाव स्त्री के शरीर और उसकी भावनाओं पर देखा जा सकता है। अतः स्त्री को ग्रंथि तंत्र एवं उसकी कार्यप्रणालियों की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

यौगिक युक्ति – ऋतुस्त्राव की अवधि में कोई भी कठिन आसानों का अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, किन्तु वज्रासन, शशांकासन, मार्जरिआसन एवं शवासन में उदर श्वसन लाभप्रद है जो ऐठन दूर करने में मदद करते है। मूलबंध विशेष रूप से लाभप्रद होगा। मासिक चक्र की शेष अवधि के लिये आसनों का एक संतुलित कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए, जो ग्रंथियों के सुक्ष्म नियंत्रण के द्वारा हार्मोन उत्पन्न को सुव्यवस्थित और संतुलित कर सकता है। आसन ग्रंथियों एवं आंतरिक अंगों की मालिश करते है और उन पर दबाव डालते है जिससे जमा हुआ रक्त अशुद्ध रक्त बाहर चला जाता है तथा शुद्ध रक्त को संचरण का अवसर मिलता है। ध्यान के अभ्यास, विशेषकर योगनिद्रा एवं अन्तर्मोन शारीरिक एवं भावनात्मक सामंजस्य को भंग करने वाले तनाव से मुक्त करने के लिये उतम रहेंगे।

निम्नलिखित कार्यक्रम नियमित रूप से करते रहना मासिक चक्र को सुचारू रखने में अत्यंत सहायक होगा।

सूर्य नमस्कार – इससे प्राणशक्ति का स्तर ऊपर उठेगा तथा स्नायविक अंतस्त्रावी क्रियाओं में संतुलन आयेगा। क्षमतानुसार अभ्यास को बढ़ाकर 12 चक्रो तक ले जाया जायेगा।

आसन – श्रेणि प्रदेश से ऊर्जा अवरोधो को दूर करने का सबसे प्रभावी उपाय है। शक्ति बंध समूह के आसन – वज्रासन, ऊष्ट्रासन, मार्जारिआसन, शशांकासन, सुप्तवज्रासन।

पीछेझुकने वाले आसन – भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, चक्रासन, कंधरासन।

सिर नीचे झुकाकर करने वाले आसन विशेष लाभदायी है, क्योंकि उनसे प्रजनन अंगो से रक्त का प्रभाव उल्टी दिशा में होता है एवं अवरोधक मलो का निष्कासन होता है। इन आसनों के अभ्याससे पीयूष ग्रंथि (च्पजनपजमतल हसंदक) पर भी सकारात्मक प्रभाव पडता है। इन आसनों का अभ्यास रजःस्त्राव काल मे नहीं करना चाहिए।

प्राणायाम – नाड़ी शोधन, उज्जायी एवं भ्रामरी प्राणायाम मासिक धर्म में हो रहे सिर दर्द, माइग्रेन तथा तनावपूर्ण परिस्थितियों को दूर करने के लिये प्रभावकारी है।प्रणायाम द्वारा गहरे स्तर तक के तनाव दूर हो जाते है तथा मानसिक शंति व स्थिरता प्राप्त होती है। भस्त्रिका प्राणायाम द्वारा जीवनी शक्ति बढ़ती है एवं शरीर के विषाक्त तत्व साफ होते है।

शिथलीकरण – योग निद्रा एक अति महत्वपूर्ण अभ्यास है, विशेषतः मासिक धर्म शुरू होने के पहले बढ़ती हुई तनाव की स्थिति को नियंत्रित करने के लिये। इससे मानसिक तनाव, निराशा, चिड़चिडापन एवं भारीपन दूर होते है।

इस के अलावा मुद्रा एवं बंध षट्क्रियाओं व ध्यान का अभ्यास भी अतिमहत्वपूर्ण है जो आसानों के कुछ अभ्यासों के बाद करवाया जायेगा।

मूल्यांकन

''नास्ति योगात्परं बलम''

योग के बराबर कोई शक्ति नही है। योग के माध्यम से हम जीवन की सभी कमियों को दूर कर सकते है। शक्ति इसलिये माना है कि इसके द्वारा शरीर, मन, वुद्धि, विचार, व्यवहार, जीवन, सबको नियंत्रण में लाया जा सकता है। संयत और संतुलित बनाया जा सकता है। संभवतः दुनिया में ऐसा कोई विज्ञान नही है जो शरीर, मन और चेतना के विकास के लिये एक साथ कार्य करे।

योग के माध्यम से व्यक्तिव का सर्वागीण विकास हो सकता है। शारीरिक रोग सरल तरीके से दूर किये जा सकते है। मानसिक स्तर का विकास किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

''नव योगिनी तंत्र'' स्वामी मुक्तानंद, बिहार योग विद्यालय संशोधित संस्करण 2000
''योग एवं रोग'' स्वामी कर्मानंद, बिहार योग विद्यालय 1998
मानव शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान, प्रो. डॉ. अनन्त प्रकाश गुप्ता 2005
''घेरण्ड संहिता'' स्वामी निरंजानानंद सरस्वती ''बिहार योग भारती 1997''
''स्वात्माराम कृत हठ प्रदीपिका'' स्वामी दिगम्बरजी 14 फरवरी 1980

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

स्वस्थ गर्भस्थ शिशु : योग ग्रामीण महिलाओं के संदर्भ में

डॉ. मनोज शर्मा
शोध निर्देशक, योग विभाग, रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय (म.प्र.)
रूबी श्रीवास्तव
शोद्यार्थी

भूमिका :— स्वस्थ गर्भस्थ शिशु के लिए प्रसव पूर्व योग, ग्रामीण महिलाओं में तनाव, और चिन्ता को कम कर महिलाओं में नींद को बढ़ावा देना जिससे शिशुजन्म के लिए मांसपेशियों को ताकतवर और लचीलापन बनाये रखना, मिचली, सिर दर्द, और सांस की तकलीफ, और कर्पलटनल सिंड्रोम को कम करने मे मदद करना, उच्च रक्तचाप और अन्तःगर्भाशायी विकास में होने वाली जोखिम को कम करना क्योंकि गर्भाशय मांस पेशियों का आवरण है जो प्रजनन परिस्थिति तंत्र के भीतर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

लैमेज :— जो एक सरल सांस लेने की योग प्रक्रिया है यह क्रिया पहली तिमाही मे काफी कारगर होती है योग शारीरिक व मानसिक व्यायाम की एक वैज्ञानिक प्रणाली है। शिशु को गर्भ मे धारण करने वाली शाश्वत माता अन्नत काल से उर्वरता प्रचुरता और उत्पादकता की प्रतिरूप रही है तथा गर्भावस्था सृजनात्मक चेतना एवं आशावदिता का मौलिक प्रतीक है यद्यपि गर्भावस्था एक सामान्य स्थिति है फिर भी यह अपने आप मे एक सम्पूर्णता का अनुभव है।

गर्भाशय महिलाओं के प्रजनन तंत्र का एक महत्वपूर्ण भाग है आंकड़ों की माने तो हर चार मे से तीन महिला गर्भाशय की किसी किसी समस्या से ग्रस्त होती है लेकिन अधिकांश महिलाओं को पता ही नही चलता कि उनके गर्भाशय मे कोई समस्या है क्योंकि 10 प्रतिशत महिलाओं मे ही इसकी असामन्यता के लक्षण दिखाई देते है।

आज का युग सहशिक्षा और स्त्रियों के प्रगति के सम्पूर्ण द्वारों को खोलने का है तथा स्त्री हर क्षेत्र मे उच्च शिखर पर विराजमान भी है विशेषकर ग्रामीण इलाकों एवं माध्यम वर्गीय परिवारों मे यह ज्ञान एवं स्त्री जानकारी न के बराबर है जिसके कारण बाल मृत्यु दर तथा प्रसूता मृत्यु दर नियंत्रित नही हो पा रहा है। योग न केवल आंतरिक अपितु बाह्य शुद्धता का भी शास्त्र है। गर्भावस्था के आवश्यकता की पूर्ति के लिए हम योग को विकल्प के रूप मे देख सकते है भारत एवं वैश्विक रूप से हम गर्भवती महिलाओं का गर्भावस्था के समय योग के माध्यम से उनका निराकरण कर सकते है।

परिचय :— गर्भावस्था शारीरिक और भावनात्मक रूप से अच्छा ख्याल रखने का आदर्श समय है। महिलाओं के स्वास्थ्य को ध्यान मे रखते हुए उन्हे गर्भावस्था से पूर्व व उस समय योगभ्यास इसलिए कराना है जिससे उनका सामान्य प्रसव होने के साथ साथ शिशु भी सकुशल रहे प्रसव पूर्व अच्छी देखभाल व संतुलित आहार का सेवन शिशु के स्वास्थ के लिए आवश्यक है।

शिशु को जन्म देना एक स्वाभविक प्रक्रिया है, जो गर्भावस्था के अन्त मे स्वतः और सहज ढंग से होती है लेकिन सामन्यताः गर्भावस्था को रोगावस्था माना जाता है। जिसका अन्त बच्चे को जन्म देने के भी कुछ समय बाद ही होता है। आधुनिक प्रसूति विज्ञान का आरम्भ 19वी सदी मे फ्रांस मे हुआ, जब फ्रांस्वा मारीजियु ने अभिजात्य वर्ग के सम्मुख विचार रखा कि महिलाओं को लेट कर बच्चे को जन्म देना चाहिए।

इसके साथ ही अविश्कार हुआ प्रसूति मे काम आने वाले **फोरसेप** और उपकरणो की मदद से बच्चों को जन्म देने की विधि का।

धीरे—धीरे आधुनिक प्रसूति तकनीकों मे और भी परिवर्तन आते जा रहे है प्रसव पूर्व योग मे ऐसे आसन और मुद्राएँ शामिल होती है जिनका अभ्यास गर्भवती महिलाओं के लिए सुरक्षित माना जाता है

आसनों के अभ्यास से मांसपेशियों के खिचांव और शरीर को सुगमता प्रदान करने मे मदद मिलती है गर्भावस्था के दौरान मांसपेशिया ज्यादा खिंच जाती है यह प्रसव और शिशु के जन्म मे सहायक होती है जिस प्रकार स्वस्थ शरीर मे स्वस्थ मन का वास होता है ठीक उसी प्रकार योगाभ्यास द्वारा गर्भवती महिलाओं के गर्भ से एक स्वस्थ बालक जन्म लेता है गर्भावस्था के दौरान

ISSN : 2394-3580 **Swadeshi Research Foundation** Vol. – 6, No. - 9 July 2019

A Monthly Journal of Multidisciplinary

International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

गर्भवती स्त्री का शरीर की प्रक्रिया हर हफ्ते बदलती रहती है ऐसे मे योग का अभ्यास उन्हे सही दिशा की ओर अग्रसर करता है।

अध्ययन की आवश्यकता :— आधुनिक युग मे महिलाओं की व्यस्त दिनचर्या उनके स्वास्थ को गलत दिशा की ओर ले जा रही है, ऐसी अवस्था मे जब वह गर्भधारण करती है तो उनकी जिम्मेदारीयॉ स्वास्थ के प्रति अधिक बढ़ जाती है।

महिलाओं को सिजेरियन से शिशु जन्म से रोकते हुए उनके प्रसव को सामान्य प्रसव मे परिवर्तित करना है, जिससे महिला का स्वास्थ व शिशु का स्वास्थ दोनों ही किसी समस्या मे न आ पायें।

समस्याऐं :— भारत की जनसंख्या का 40 प्रतिशत चौदह साल से कम के बच्चों का है। उसमे हर 100 बच्चों मे से लगभग 12 बच्चे असल मे 5 साल से कम उम्र के है। बच्चों मे बड़े स्तर पर बिमारियॉं होने के बावजूद यहॉं बच्चों के सेवाओं का अभाव है ग्रामीण इलाकों के अधिकांश स्वास्थ कार्यकर्ता और निजी चिकित्साकर्मी बच्चों की स्वास्थ सेवाओं के लिए प्रशिक्षित नही है।

भारत में 30 प्रतिशत बच्चों के जन्म के समय वजन कम होता है और उन्हे जिंदा रखने के काफी संघर्ष करना पड़ता है इस सब का प्रमुख कारण मॉं के अस्वस्थ गर्भ से शिशु का जन्म लेना।

गर्भाशय समस्याः गर्भाशय ग्रीवा समस्या या गर्भाशय ग्रीवा स्पॉडोलाईसिस एक आम स्थिति है जो जोड़ों के आस पास गर्दन मे डिस्क को प्रभावित करती है।

मोलर गर्भधारण गर्भावस्था की एक दुलर्भ बीमारी है यह समस्या गर्भाधान निशेचन मे किसी प्रकार की त्रुटि होने पर उत्पन्न होती है और नाल का निर्माण करने वाली कोशिकाओं मे खराबी आ जाती है।

दवाईयॉ और गर्भावस्था :— गर्भवती महिला द्वारा ली गयी दवॉईया भ्रूण तक मुख्यतया अपरा को पार करके उसी मार्ग से पहुॅचती है जिससे आक्सीजन और पोशक पदार्थ पहुॅचते और ये भ्रूण के विकास और वृद्धि के लिए जरूरी होती है गर्भवती महिला द्वारा गर्भवस्था मे ली गयी दवॉइयॉ भ्रूण पर कई प्रकार के असर डाल सकती है।

- ❖ वे भ्रूण पर सीधा असर कर सकती है जिससे नुकसान, असमान्य विकास (जिससे जन्मजात विकार हो जाते है यह मृत्यु हो सकती है)।
- ❖ वे सामान्य तौर पर रक्त वहिनियों को सकरा करती है और इस प्रकार से माता के भ्रूण को आक्सीजन और पोशक पदार्थो की अपूर्ति कम करके अपरा के कार्य को बधिक कर सकती है कभ कभी इसके परिणाम स्वरूप शिशु कम वजन वाला और कम विकसित रह जाता है।
- ❖ उनके कारण गर्भाशय की पेशियों का बल पूर्वक संकुचन हो सकता है जिससे रक्त प्रवाह मे कमी होने जाने से भ्रूण को क्षति हो सकत है या समय पूर्व प्रसव क्रिया और संतान जन्म हो सकता है।

प्रसव पश्चात् अवसाद :— प्रसव— पश्चात् अवसाद क्या होता है?

प्रसव के उपरांत पहले कुछ हफ्तो या महीनों मे होने वाली अत्यंत दुखः और सम्बन्धित मानसिक विचलताओं की अनुभूति को प्रसव पश्चात् अवसाद कहते है।

शिशु जन्म के उपरांत तीन दिनों के भीतर दुखः या बेबसी का अनुभव होना आम है स्त्रीयों को इन अनुभूतियों के बारे मे बहुत अधिक चिंता नही करनी चाहिए क्योंकि यह अनुभूतियॉं सामान्यतया 2 हफ्तों मे समाप्त हो जाती है लगभग 10 से 15 प्रतिशत स्त्रीयॉं इससे प्रभावित होती है यदा कदा एक और भी गंभीर विकार प्रसव पश्चात् मनोविक्षिप्तता भी उत्पन्न होता है।

- ❖ जिन स्त्रियों को पहले कभी अवसाद हुआ हो उनमे प्रसव पश्चात् अवसाद होने की संभावना अधिक होती है।
- ❖ स्त्रियॉं अधिक दुखी महसूस करती है चिडचिडी और मूडी हो जाती है तथा दैनिक गतिविधियों और शिशु मे रूचि खो सकती है।
- ❖ परामर्श के साथ अवसाद रोधी दवाओं का प्रयोग इसके प्रयोग व उपचार मे मददगार हो सकता है।

निदान :— शीघ्र निदान और उपचार स्त्रियों और उनके शिशुओं के लिए महत्वपूर्ण है प्रसव के बाद 2 हफ्तों से अधिक तक लगातार दुखी महसूस करने और अपनी

सामान्य गतिविधियों को करने मे कठिनाई होने पर या स्वंय को शिशु को हानि पहुचॉने के विचार आने पर स्त्रियों को योगाभ्यास व ध्यान का निरंतर अभ्यास करते रहना चाहिए।

आहार चिकित्सा :– महिलाओं के शरीर मे गर्भाशय एक अहम अंग होता है क्योंकि यह होने वाले बच्चें का पालन पोशण के करने के साथ साथ उसकी सुरक्षा का भी काम करता है।

स्वस्थ गर्भाशय स्वस्थ प्रेग्नेंसी के लिए जरूरी है नही तो कई सारी समस्याएँ जैसे – PCOS (पॉलिसिस्टिक ओवेरियन सिंड्रोम) फाइब्रोइटस आदि को गर्भाशय को प्रभावित कर सकती है। गर्भाशय और ओवरी को स्वस्थ रखने के लिए पौश्टिक आहार का सेवन करना चाहिए।

गर्भवती महिला जो खाती है वो उनके जनन तंत्र को प्रभावित करता है इसलिए गर्भवती महिलाओं को विटामीन डी, एंटी आक्सीडेंट और ओमेगा 3 फैटी एसिड आदि को अपने आहार मे शामिल करना चाहिए।

एक गर्भवती मॉ को उसकी आखिरी तिमाही मे प्रतिदिन केवल दो सौ अतिरिक्त कैलोरी की आवश्यकता होती है कितनी कैलोरी की आवश्यकता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि गर्भावस्था से पहले गर्भवती महिला का वजन कितना था, और गर्भ में कितने शिशु पल रहे है और उन्हे कितनी कैलोरी की आवश्यकता होनी चाहिए।

गर्भवती महिलाओं के लिए स्वस्थ एवं प्राकृतिक आहार का सुझाव :–

- ❖ एक संतुलित और स्वस्थ आहार खाना महत्वपूर्ण है हो सकता है कुछ खाद्य पदार्थ पसंद नही आये, मगर उनके बदले उतने ही पोषण वाले अन्य खाद्य पदार्थो का सेवन गर्भवती महिलायें कर सकती है।
- ❖ प्रर्याप्त मात्रा मे सब्जियों व फलों और कुछ कार्बोहाइड्रेट्स (साबूत आनाज को प्राथमिकता) से भरपूर आहार लेने का प्रयास करना है।
- ❖ रोजाना 8–10 गिलास पानी पीकर स्वंय को अच्छी तरह जलनियोजित रखना है, कैफिन युक्त और कृत्रिम स्वाद वाले पेय से बचना है ताजा फलों का रस, सूप और दूध पीना है यह पौष्टिक और स्फूर्तिदायक है।
- ❖ गर्भवती महिलाओं को कैल्सियम युक्त स्त्रोत वाले भोजन को लेते रहना क्योंकि उससे उनकी ऊर्जा का स्तर बना रहता है।

खाने की स्वच्छता :– कुछ ऐसे खाद्य पदार्थ है जिन्हे गर्भवस्था मे खाना सुरक्षित नही है क्योंकि ये गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ के लिए हानिकारक है।

लिस्टीरिया :– लिस्टिरियोसिज लिस्टीरिया किटाणुओं से होने वाला संक्रमण है यह दुलर्भ है और आमतौर पर यह गर्भवती महिला के स्वस्थ के लिए खतरा पैदा नही करता इससे गर्भावस्था के दौरान यह शिशु के जन्म समय जटिलताएँ पैदा हो सकती है। लिस्टिरियोसिज गर्भपात और नवजात शिशुओं मे गम्भीर बिमारी का कारण बन सकता है।

टोक्सोप्लासमोसिज :– टोक्सोप्लासमोसिज एक परजीवी है यह दुर्लभ है मगर अजन्मे शिशु को गम्भीर रूप से प्रभावित कर सकता है।

सल्मोनेला :– सल्मोनेला भोजन को विशाक्त करने वाला कीटाणु है यह शिशु को नुकसान नही पहुचाता है मगर गर्भवती महिला को अस्वस्थ महसूस करा सकता है।

गर्भावस्था के दौरान गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य को ध्यान मे रखते हुए खाद्य स्वच्छता का पूरा ख्याल रखना है।

आयरन का स्तर ऊँचा रखना है :– भारतीय महिलाओं में आयरन की कमी वाला एनीमिया सबसे ज्यादा है हमारे देश मे बहुत सी महिलाओं मे गर्भवती होने से पहले ही आयरन की कमी होती है। हीमोग्लोबीन लाल रक्त कोशिकाओं मे पाया जाने वाला प्रोटीन है जो शरीर के विभिन्न अंगो तथा ऊतकों मे आक्सीजन पहुँचाने का कार्य करता है।

गर्भवती महिलाओं को आयरन भरपूर मात्रा मे लेना चाहिए जिससे गर्भस्थ शिशु एनीमिया का शिकार न हो।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

स्वस्थ गर्भस्थ शिशु का विकास 4 सप्ताह से लेकर 40 सप्ताह तक का अध्ययन होना चाहिए –

4 से 40 सप्ताह के दौरान गर्भस्थ शिशु का विकास										
8 वें सप्ताह से लेकर 40 वें सप्ताह तक (शिशु भ्रूण) की लम्बाई 20 गुना एवं वजन 1700 गुना बढ़ती है										
सप्ताह	4	8	12	16	20	24	28	32	36	40
लम्बाई	1 सेमी0	2.5 सेमी0	7.5 सेमी0	16 सेमी0	25 सेमी	33 सेमी	37 सेमी	40.5 सेमी	46 सेमी	51 सेमी
वजन	1 मि0ग्रा0	2 ग्राम	18 ग्राम	135 ग्राम	340 ग्राम	570 ग्राम	900 ग्राम	1.6 कि0ग्रा0	2.5 कि0ग्रा0	3.4 कि0ग्रा0

शोध विधि :– शोध को दो व्यापक श्रेणियों मे विभाजित किया जायेगा।

परिणात्मक
गुणात्मक

शोध कार्य प्रमुख यौगिक क्रियाएं करायी जायेगी।

- आसन
- प्राणायाम
- षठ्क्रियाएँ

इनके प्रभाव की विवेचना की जायेगी।

- प्रश्नावली द्वारा उनके स्वस्थ मे होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव को देखा जायेगा।
- महिलाओं के समूहो को दो श्रेणियों मे विभाजित किया जायेगा एक समूह सामान्य दिनचर्या मे रहेगा तथा दूसरा प्रयोगात्मक समूह होगा।
- प्रसव के पश्चात माँ व बच्चे की जानकारी प्रश्नावली द्वारा ली जायेगी।
- प्राप्त निष्कर्ष का चिकित्सा के रूप मे प्रयोग किया जा सकेगा।

यौगिक चिकित्सा :– गर्भवती महिलाओं के लिए यौगिक चिकित्सा के अनेक फायदे है।

शोध से यह ज्ञात हुआ है कि प्रसव पूर्व योग तनाव और चिंता को कम करता है गर्भावस्था के दौरान बच्चे के बढ़ने के साथ साथ श्रोणि की मांस पेशियों को कमजोर कर कोख की सतह पर खिचांव पैदा कर सकती है। इससे बचने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि गर्भावस्था के दौरान इन मांस पेशियों को मजबूत किया जाए।

प्रसव पूर्व योग अभ्यास भी प्रसव के बाद गर्भधारण से पहले वाले शरीर को पुनः प्राप्त करने मे मदद करता है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली एवं यौगिक चिकित्सा प्रणाली द्वारा शारीरिक, मानसिक सामाजिक, एवं आध्यात्मिक सभी स्तरो पर संतुलन ही स्वास्थ्य है।

ध्यान और गर्भावस्था :– ''ध्यान एक ऐसी प्रक्रिया है जो पुरी गर्भावस्था के दौरान गर्भवती महिला को ऊर्जा प्रदान करता है।''

गर्भावस्था किसी भी स्त्री के जीवन मे महत्वपूर्ण चरण है।

यह एक ऐसा समय हे जिससे किसी भी स्त्री की भविष्य से बहुत सारी उम्मीदे जुड़ी हुई होती है।

गर्भावस्था की प्रत्येक तिमाही में होने वाले विकास :–

पहली तिमाही :– बच्चे के कानों की मांसपेशियॉ पहली तिमाही मे विकसित होती है इसलिए उस समय मधुर संगीत व मंत्रो का उच्चारण जो कि यौगिक चिकित्सा के अन्तर्गत आता है, यह सुनना अच्छा होता है।

इससे बच्चे के तंत्रिका तंत्र पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

दूसरी तिमाही :– इस तिमाही मे बच्चा पेट के अंदर घूमने लगता है व हिचकियॉ तथा उबासी भी लेना लगता है इस समय गर्भवती महिला के मन मे बहुत सारे उतार चढ़ाव होने लगते है।

तीसरी तिमाही :– यह गर्भावस्था का सबसे चुनौतीपूर्ण समय होता है इस समय गर्भवती महिला का वजन बढ़ जाने के कारण उनको असहजता होती हैं। बच्चा अपना स्थान बदलता रहता है तथा बाहर आने की तैयारी करता है जिसके कारण श्रोणि क्षेत्र (पेल्विक एरिया) मे तथा पेल्विक बोन मे खिचांव महसूस होगा।

योगासन गर्भावस्था के दारान :– निम्नलिखित योगासन गर्भावस्था मे होने वाली समस्याओं से दूर रखते है और सामान्य प्रसव का आश्वासन देते है।

1. सुखासन
2. मार्जरि आसन
3. उज्जयी भवास के साथ वज्रासन
4. ताड़ासन
5. कोनासन
6. त्रिकोनासन
7. वीरभद्रासन
8. विपरीतकर्णी

प्राणायाम जो गर्भावस्था के दौरान किया जा सकता है–

उज्जीय प्राणायाम
पूर्णयौगिक भवास
ब्राह्मरी प्राणायाम
योग निद्रा
नाड़ी शोधा प्रणायान

इन सभी प्राणायामों को अभ्यास करने के पश्चात् कुछ समय ध्यान कर सकते है जो कि एक गर्भवती महिला को पूरी तरह विश्राम का अनुभव करायेगा।

कुछ योगासन जो गर्भवस्था के दौरान नही करने चाहिए–

नौकासन
चक्रासन
अर्धमत्स्येन्द्रासन
भुंजगासन
हलासन

गर्भावस्था के दौरान योगाभ्यास की प्रक्रिया को आरम्भ करने से पहले श्री योगा प्रशिक्षक की राय लेना अत्यंत आवश्यक है।

यौगिक चिकित्सा यह एक ऐसी अनूठी प्रणाली है जिसमे जीवन के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यत्मिक तलों के रचनात्मक सिद्धांतों के साथ व्यक्ति के सद्भाव का निर्माण होता है।

जिससे की गर्भ मे पल रहा शिशु स्वस्थ और मजबूत होता है। स्वस्थ के प्रोत्सहन रोग निवारक और उपचारत्मक के साथ – साथ मजबूती प्रदान करने की भी अपार संभावनाएं है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

नवयोगिनी तन्त्र – स्वामी मुक्तानन्द, योग पब्लिकेशन, मुंगेर बिहार, बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रथम प्रकाशन, 1977 द्वितीय प्रकाशन – 1982
आयुर्वेदीय गर्भ संस्कार – डा0 श्री बाला जी तांबे प्रकाशन – सकल प्रकाशन, 1 जनवरी 2015
गर्भ का भाव – विश्व श्री गजानन केलकर जनवरी 2010 मनःशक्ति प्रयोग केन्द्र, लोनावला
गर्भ ध्यान – गर्भ संवाद श्री हर्षद प्र0 शाह– 2013 चिल्ड्रन यूनिवर्सिटी गॉधी नगर।
श्री काशी आर्युवेद ग्रंथमाला, योगेन्द्र स्वामी स्वात्माराम कृता हठयोग प्रदीपिका आलोक व्याख्या सहित व्याख्याता परम हंस स्वामी अनंत भारती सम्पादिका, श्रीमती सीमा सागर।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका

डॉ. सुभाष कुमार सोनी
अतिथि संकाय, शासकीय महाविद्यालय, हर्रई छिंदवाड़ा

प्रस्तावना :– भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को पुरूषों के समान राजनैतिक अधिकार, समानताएं और स्वतंत्रताएं प्रदान की गयी है। भारत के प्रत्येक स्त्री पुरूष की सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने तथा देश की विधान निर्मात्री सभाओं का सदस्य बनकर नीति निर्माता के रूप में अपनी सेवाओं से देश को लाभान्वित करने की स्वतंत्रता है।

हमारे संवैधानिक विकास के क्रम में देश की आधी आबादी की भागीदारी केवल कुछ सम्पन्न वर्ग की महिलाओं अथवा राजवंशो की महिलाओं तक ही सीमित है। यदि किसी आम स्त्री ने अपने संवैधानिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए सक्रिय राजनीति में कदम बढ़ाने का दुःसाहस किया है तो उसे अवश्य अपने परिवार के किसी पुरूष के सहारे की बैसाखी को साथ में लेकर चलना पड़ा है।

आज भी सक्रिय राजनीति में तथा विधान मण्डलों में महिलाओं का प्रवेश उनकी स्वयं की इच्छा तथा निर्णय पर कम निर्भर करता है। उन्हें या तो उनके राजनीतिक व्यक्तित्व रखने वाले पिता या पति की मृत्यु के पश्चात् सहानुभूति के वोट बटोरने के लिए राजनीति में लाया जाता है। मध्यप्रदेश की राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी बांटने के उद्देश्य से पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गये।

उसे पंचायत स्तर पर महिलाओं के राजनैतिक व्यक्तित्व के विकास का कारण नहीं बन पाई। अधिकांश पंच, सरपंच तथा जिला पंचायतो की पदाधिकारी बनी महिलाऐं घूंघट में रहकर अपने पति, पिता या पुत्र द्वारा लिये गये निर्णयों पर अंगूठा लगाती रही। देश एवं प्रदेश स्तर पर विधानमंडलो तथा संसद के चुनावों में महिलाओं की 33 प्रतिशत आरक्षण देने का मुद्दा आजकल बहुत चर्चा में है, परंतु महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के बिना तथा भारतीय समाज में स्त्रियों के संबंध में जो पारंपरिक मध्यकालीन विचारधारा व्याप्त है। उसमें परिवर्तन के बिना उन्हें आरक्षित करके भी सभा में उनकी स्वतंत्र तथा नि पक्ष भागीदारी संभव नहीं है।

मध्यप्रदेश विधानसभा में महिला प्रतिनिधित्व का स्वरूप :– मध्यप्रदेश देश के हृदय स्थल पर स्थित एक पिछड़ा राज्य है यहां की सामाजिक विचारधारा में नारियों को पुरूषों के समझ अधिकार प्रदान करने को बात स्वीकार नहीं है यद्यपि इस प्रदेश ने देश की राजनीति को रानी दुर्गावती व महारानी लक्ष्मीबाई से लेकर विमला वर्मा, उमा भारती, सुमित्रा महाजन तथा विजया राजे सिंधियां जैसी कुशल प्रशासक वीरांगनायें तथा राजनेता प्रदान की है। परंतु शिक्षा के निम्न स्तर तथा स्त्री साक्षरता के अत्यंत निम्न प्रतिशत होने के कारण यहां पर आम स्त्रियों की सामाजिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। विशे कर ग्रामीण स्त्रियां तो आज भी स्वतंत्रता समानता और अधिकार जैसे शब्दों से अपरिचित है। यही कारण है कि देश की स्वतंत्रता के पचास वर्ष तथा मध्यप्रदेश की स्थापना के 40 वर्ष बीत जाने के बाद भी महिला प्रतिनिधियों की संख्या में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है। मध्यप्रदेश की कुल जनसंख्या 6,61,81,170 (1991) है जिनमें से 3,19,13,877 महिलायें है अर्थात् मध्यप्रदेश में महिला पुरूष अनुपात प्रति हजार पुरूषों पर 932 महिलाओं का है। पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की कम संख्या होने का मुख्य कारण कन्याओं की हत्या तथा कुपोषण एवं उत्पीड़न वशोषण के कारण महिलाओं की अल्पायु में मृत्यु हो जाती है। यहां आज की आम परिवारों में कन्या के जन्म को अच्छा नहीं समझा जाता।

मध्यप्रदेश में साक्षरता की दर कुल 44.20 प्रतिशत है जिसमें से 58.42 प्रतिशत पुरूष साक्षर है तथा 28.85 प्रतिशत महिलाएं साक्षर है।

मध्यप्रदेश विधानसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का प्रतिशत सर्वाधिक 1957 के प्रथम आम चुनाव में रहा उस समय कुल विधान सभा सदस्यों का 10.7 प्रतिशत प्रतिनिधित्व महिलाओं के द्वारा किया गया। उसके पश्चात् कभी भी 10 प्रतिशत से अधिक महिलाएं चुनकर विधानसभा में नहीं गई। यद्यपि 1985

की भांति महिला विधायकों की संख्या 31 थी परंतु 1957 में कुल विधान सभा सीट 288 थी जो 1985 में बढ़कर 320 हो गई। अतः महिलाओं के प्रतिनिधित्व का प्रतिशत 9.1 प्रतिशत ही रहा है।

प्रदेश की स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्रियों की शिक्षा में व्यापक प्रसार हुआ है तथा उससे स्त्रियों की साक्षरता के प्रतिशत में धीमी ही सही परंतु वृद्धि हुई है। स्त्रियों में जागरूकता बढ़ाने तथा उन्हें स्वावलंबी व शिक्षित करने की दिशा में व उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए सरकार द्वारा अनेक कानून व कल्याणकारी योजनाएं बनाई गई परंतु इन सबके बावजूद प्रदेश की सक्रिय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई।

विधानमंडल लोकतंत्र का आधार स्तंभ होता है। उसमें अपने प्रतिनिधित्व की पहचान बनाने तथा अपनी संख्या में वृद्धि करने में आज भी प्रदेश की आधी आबादी जागरूक उत्सुक तथा प्रयासरत नहीं दिखाई देती।

विधानसभा में महिलाओं के अल्प प्रतिनिधित्व के कारण :– देश की विकास क्रम पर यदि गौर किया जाये तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्रत्येक वह क्षेत्र जो कभी केवल पुरूष वर्चस्व का क्षेत्र माना जाता था वहां महिलाओं ने प्रवेश कर अपने कार्यों व उत्तरदायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह कर अपनी कार्यक्षमता का लोहा मनवाया है, परंतु राजनीति के क्षेत्र में निर्णायक, सजग, कर्मठ और जागरूक महिला नेतृत्व अपवाद, स्वरूप ही है। लोकतांत्रिक संस्थाएं स्त्रियों की कार्यकुशलता क्षमता तथा धर्म के लाभ से क्यों वंचित है। विधानसभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की वृद्धि के कार्य की प्रमुख बाधायें है। इन कारणों को मुख्य रूप से 5 भागों में बांटा जा सकता है –

1. **मनोवैज्ञानिक कारण** :–महिलाओं में बचपन से ही असुरक्षा एवं हीन भावना का विकास किया जाता है। इनके मन मस्ति क में यह बात बिठा दी जाती है कि बिना पुरूष के संरक्षण के वह कोई भी कार्य करने में असमर्थ है। उम्र बढ़ने के साथ–साथ महिलाओं में हीनता की भावना बढ़ती जाती है।

2. **सामाजिक कारण** :– भारतीय समाज एक परम्परावादी समाज है। यहां महिलाओं की स्वतंत्रता व समानता के अधिकारों की बाते तो बहुत होती है परंतु अधिकांश पुरूष एवं महिलाएं भी महिलाओं की परम्परावादी घरेलू छवि की ही अधिक पक्षधर होते है। यही कारण है कि सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों के राजनैतिक जीवन में प्रवेश को बहुत अच्छा नहीं माना जाता इसलिए जब महिलाएं चुनाव में खड़ी होती है तो उन्हें मतदाताओं का यहां तक कि महिला मतदाताओं का भी वांछित समर्थन प्राप्त नहीं होता। लिंगभेद हमारी सामाजिक व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। परिवार में लड़की के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है। यही कारण है कि राजनीति में महिलाओं का प्रवेश संयोगवश ही हुआ है कभी अपने नेता पति की मृत्यु के बाद या फिर किसी विशेष वर्ग या समुदाय की प्रतिनिधि होने के कारण यह निर्णय भी महिलाओं का अपना नहीं होता। इसलिए वे विधान सभाओं में पहुंचकर भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं बना पाती।

3. **आर्थिक कारण** :– महिलाओं में आर्थिक निर्भरता का अभाव रहता है। वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने परिवार के पुरूषों पर निर्भर रहती है। यहां तक की जो महिलाएं कामकाजी है वे भी अपनी आय को व्यय करने में स्वतंत्र नहीं होती कुछ समय पहले तक के उत्तराधिकार से भी महिलाओं को वंचित रखा गया था। आज निर्वाचन में भाग लेना एक व्यय साध्य कार्य है सामान्य तौर पर विधायकों को चुनाव में जीतने के लिए 3 प्रकार के व्यय करने पड़ते है :–

अ. एक उम्मीदवार द्वार स्वयं व्यय किया गया धन।
ब. समर्थकों द्वारा व्यय किया गया धन।
स. उनके राजनैतिक दल द्वारा व्यय किया गया धन।

महिलाएं तीनों ही प्रकार के धन जुटानें में असमर्थ रहती है। स्वयं आर्थिक रूप से स्वावलंबी न होने के कारण वे अपना स्वयं का व्यय करने के लिए धन प्राप्त करने हेतु परिवार पर आश्रित होती है। महिलाओं का सार्वजनिक जीवन अधिक व्यापक नहीं होने के कारण उनके समर्थकों की संख्या भी कम होती है। जो समर्थक होते भी है उन्हें महिला उम्मीदवारों पर विश्वास नहीं होता यही कारण है कि मध्यप्रदेश की विधानसभा में अधिकांश महिला विधायक या तो राजवंश से संबंधित है या उच्च धनाड्य परिवारों से आम स्त्रियों के विधानसभा में प्रवेश अपवाद स्वरूप ही है।

4. **राजनैतिक कारण** :– वर्तमान स्त्री प्रतिनिध्यात्मक प्रजातंत्र में राजनैतिक दल निर्वाचन व्यवस्था की रीढ़ है। राजनीतिक दलों के समर्थन के अभाव में किसी भी प्रत्यासी का निर्वाचन में विजयी होना अत्यंत कठिन होता

है महिला उम्मीदवार भी उसका अपवाद नहीं है। प्रायः हम देखते है कि हमारे समाज में राजनैतिक दल महिलाओं को अपना उम्मीदवार नहीं बनाते प्रत्येक राजनीतिक दलों के शीर्ष पदों पर प्रायः पुरूष विराजमान है, वे महिलाओं की सक्रिय राजनीति में सफलता को शंका की दृष्टि से देखते है। इसलिये वे महिलाओं को टिकट नहीं देते।

राजनीति में निरंतर बढ़ती जा रही हिंसा अपराधीकरण चरित्र हनन, वंशवाद, भ्र टाचार आदि के कारण भी आम शिक्षित तथा संभ्रान्त परिवारों की महिलायें सक्रिय राजनीति को अपना कार्यक्षेत्र बनाने में संकोच करती है।

5. शैक्षणिक कारण :– शिक्षा का सीधा संबंध जागरूकता से होता है। शिक्षा मनु य के अंदर स्वतंत्र निर्णय लेने का भाव तथा अपने अधिकारों के प्रति सजगता की भावना का विकास करती है। मध्यप्रदेश में महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति बहुत दयनीय है। प्रदेश की लगभग 71 प्रतिशत महिलायें निरक्षर है। उन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त अपने अधिकारों का कोई ज्ञान नहीं है उनका यह अज्ञान उन्हें पराधीन और आश्रित बनाता है। अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों का शोषण व उत्पीड़न को वह अपनी नियति समझती है तथा उनके खिलाफ बनाये गये कानूनों का वैधानिक प्रावधानों से वह बेखबर रहती है। हिंसा, भ्रष्टाचार, अपराधीकरण और छल के दलदल में आकंठ डूबी राजनीति को वे अपना कार्यक्षेत्र नहीं बनाना चाहती।

मध्यप्रदेश की राजनीति में महिला प्रतिनिधित्व की संभावनायें यद्यपि वर्तमान समय में विधानसभा में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अत्यंत कम है तथा सक्रिय राजनीति में उनके प्रवेश का क्रम अत्यंत मध्यम गति से आगे बढ़ रहा है परंतु इक्कीसवीं सदी के आने वाले वर्ष निश्चित रूप से स्त्रियों के चतुर्मुखी विकास का संदेश लेकर आयेंगे।

यदि पिछले विधानसभा चुनावों में महिला प्रत्याशियों की संख्या को देखा जाये तो उसमें निस्तर वृद्धि हो रही है। 1967 में कुल 19 महिलायें ही विधानसभा चुनाव के लिए खड़ी हुई थी। 1990 में उनकी संख्या बढ़कर 150 हो गई और 1993 के चुनाव में उनकी संख्या 167 हो गई। यह इस बात का प्रभाव है कि अब स्त्रियों की सक्रिय राजनीति में रूचि बढ़ रही है और वे विधान निर्मात्री संस्थाओं में प्रवेशकर स्वयं देश के नीति निर्माण में सहयोग देना चाहती है।

स्वतंत्रता आंदोलन के पूर्व राजनीति में महिलाओं की भूमिका :– आज महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। कुछ क्षेत्र तो ऐसे है जिनमें महिलाओं की कामयाबी अलग से रेखांकित करने योग्य है कुछ लोग महिलाओं को इस 'सक्रियता' को आधुनिकता की देन मानते है, लेकिन इतिहास गवाह है कि महिलाओं ने हमेशा से ही प्रत्येक सामाजिक घटना में सक्रियता के साथ अपनी भागीदारी की है।

इतिहास के पन्ने पलटने पर पता चलता है कि भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में भी महिलाओं ने अपनी अहम भूमिका निभाई थी। सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से लेकर 1942 की जनक्रान्ति और फिर आजादी मिलने तक महिलाओं का स्वाधीनता आंदोलन में अमूल्य व सक्रिय योगदान रहा है। महिलाओं ने न सिर्फ पुरूषों के साथ अपितु कई मोर्चो पर उन्होंने स्वयं अंग्रेजो से लोहा लिया और सीने पर गोलिया खायी, गुलामी के दौर में कस्तूरबा जैसी महिला भी थी जिसके कारण मोहनदास करमचंद नामक बैरिस्टर 'गांधी' बने तो, लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना भी थी जिसने अकेले अपने बल पर अंग्रेजो को लोहे के चने चबवा दिए थे। महिलाओं ने तब हर मोर्चे पर अपने तरीके से अपना योगदान दिया और उन्होंने मार्चे पर सशस्त्र संघर्ष में भी हिस्सा लिया था।

अंग्रेजो से आजादी की लड़ाई कई मोर्चो पर लड़ी गयी थी एक ओर जहां सशस्त्र संघर्ष का सहारा लिया गया तो दूसरी ओर लड़ाई का मैदान राजनीति में थी। स्वाधीनता संग्राम का अर्थ राजनैतिक क्षेत्र में विदशी साम्राज्य से टक्कर लेना ही नहीं अपितु जनसाधारण को इस संग्राम के लिए प्रेरित करना भी था और इसी काम को अंजाम दिया था। उस दौर की महिला राजनीतिज्ञों ने अरूणा आसफ अली, सरोजनी नायडू, एनी बेसेंट, मैडम भीकाजी कामा, कमला नेहरू, विजय लक्ष्मी पंडित, सिस्टर निवोदिया, कस्तूरबा गांधी, सुचेता कृपलानी और कमला देवी चट्टोपाध्याय जैसे ढेरो नाम है, जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व की राजनीति में सक्रियता के साथ भाग लिया था। 18वीं सदी के अंतिम दशकों से और उसी समय से महिलाओं ने इस महायज्ञ में अपनी शिरकत शुरू कर दी थी। उस समय हमारा समाज रूढ़िवादी परम्पराओं से बंधा हुआ था और सामाजिक रीति–रिवाज के कारण महिलाओं की स्थिति दोयम दर्जे की थी। लेकिन फिर भी वे घर परिवार छोड़कर आगे आयी और त्याग व बलिदान के साथ उन्होंने आजादी की लड़ाई में अपना योगदान दिया। प्रारंभिक दौर में भारतीयों ने

पोलीगर विद्रोह रानी चेन्नमा संघर्ष बुन्देला विद्रोह और संथाल में महिलाओं ने पूरी शिद्दत के साथ अपनी शिरकत दी। संथाल विद्रोह के समय क्षेत्र के स्थानीय अंग्रेज प्रशासक ने भारत सरकार के गृह सचिव को वस्तुस्थिति बताते हुये लिखा था कि ''यह पुनर्जागरण पृथ्वी के उच्छवास की तरह उत्पन्न हुआ कोई दूरदर्शी भी इसका पूर्वानुमान नहीं लगा सकता था क्योंकि यह एक अप्रत्याशित घटना थी।'' किरायों की अत्याधिक मांग राजस्व कर्मचारियों की कठोरता तथा रेलवे प्राधिकारियों द्वारा उनके वेतन का भुगतान न करने के कारण यह कटु रोष उत्पन्न हुआ था और इसलिए 1855 में संस्थालों ने विद्रोह कर दिया। केवल कमान और तीरो से शस्त्रयुक्त ये संथाल बन्दूको एवं तोपो का मुकाबला कर रहे थे।

इन सभी उपरोक्त विद्रोहो में हजारों की संख्या में महिलाओं ने भी भाग लिया। उस समय भीमाबाई ने कर्नल मालकम के साथ बड़ी वीरता के साथ युद्ध किया और उसे गुरिल्ला युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। 1824 में पुनः किन्तूर की रानी चेन्नमा ने इस संग्राम का श्रीगणेश किया और ईस्ट इंडिया कंपनी की सशस्त्र सेना का बहादुरी के साथ मुकाबला किया। सन् 1857 क्रांति, वर्षो की छटपटाहट विस्फोट के रूप में हमारे सामने आई और उसने भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के पैर उखाड़ने और संवैधानिक तरीके से स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त्र करने का बीड़ा उठाया।

1857 की क्रांति से पूर्व, 1757 की प्लासी की लड़ाई से लेकर 1856 तक जंगल महाल का विद्रोह संयासी विद्रोह, चुआड़, किन्टूर विद्रोह, बहाबी विद्रोह और संथाल विद्रोह आदि विद्रोह घटित हो चुके बैरकपुर के सैनिक तथा बहाबी विद्रोह में महिलाओं ने भाग नहीं लिया। परंतु इनके अतिरिक्त सभी विद्रोहों में महिलाओं ने नेतृत्व किया था।

संदर्भ :–

1. स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, डॉ. शैलेन्द्र श्रीवास्तव, साहित्य निधि प्रकाशन, दिल्ली वर्ष 1994
2. भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, निर्मल कुमार, समानांतर प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 1990
3. भारतीय शिक्षा और साक्षरता, राजेन्द्र मोहन भटनागर कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली, वर्ष 1998
4. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास ताराचन्द्र प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, वर्ष 1969
5. शिक्षा में बदलाव का सवाल, अनिल सदगोपाल, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली वर्ष 2000
6. एक युग का अंत : इंदिरा गांधी, चन्द्रशेखर पंडित अनुवादक – वेणी माधव शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 1977

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारत में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलन

सुभाष कुमार
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

विश्व के अनेक देशों में धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों को देखा गया है। यूरोप में मध्ययुग में समाज पर अन्धविश्वास ओर रूढ़ियों का प्रकोप हो गया था, आर्थिक, सामाजिक ओर राजनीतिक व्यवस्था विश्रृंखल हो गयी थी तथा चर्च में भ्रष्टाचारिता ओर अनैतिकता घुस आई थी। इसके प्रतिक्रियास्वरूप सुधार–आन्दोलन हुए जिसे धर्म–सुधार या रिफार्मेशन के नाम से पुकारा जाता है। इसी भाँति भारत में भी 19वीं शताब्दी में धर्म और समाज सुधार की लहर दौड़ पड़ी थी। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसाफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज आदि अनेक धर्म–सुधार आन्दोलनों ने भारतीय संस्कृति और सभ्याता का रूप बदल दिया तथा अनेक धार्मिक और सामाजिक कुप्रथाओं के विरूद्ध जेहाद बोला।

इस सुधार आन्दोलन की एक सबसे बड़ी विशेषता देखी गयी है कि इसका रूप धार्मिक और सामाजिक दोनों होता है। यूरोप में सुधार आन्दोलन की उत्पत्ति चर्च के विरूद्ध प्रतिक्रियास्वरूप हुई। भारत में भी धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन का स्वरूप एक ही रहा है। इन दोनों को अलग नहीं किया जा सकत है। इसका कारण यह है कि धर्म और समाज का सदा से अटूट सम्बन्ध रहा है। हमारे जीवन का कोई ऐसा भाग नहीं जो धर्म से अछूता है। खासकर भारत में सामाजिक जीवन में धर्म का सर्वोपरि स्थान है। भारतीयों के जीवन से धर्म को अलग नहीं किया जा सकता है। हमारे रीति–रिवाज, सामाजिक सम्बन्ध, पर्व–त्यौहार आदि धार्मिक भावना पर ही आधारित हैं। अतः जो भी सुधार के प्रयत्न किये गये है, वे एक साथ धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न हैं। फलस्वरूप बड़े–बड़े धार्मिक संत तथा व्यक्ति समाज–सुधारक के रूप में सामने आते है।

सुधार आन्दोलनों के कारण :– भारत में सुधारवादी आन्दोलन चौदहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हो चुका था। लेकिन यह असफल रहा। देश की सामाजिक ओर धार्मिक स्थिति दिन–प्रतिदिन बिगड़ती गयी। धर्म के नाम पर समाज में अनेक रूढ़ियाँ तथा अन्धविश्वास घुस आये, अनेक कुप्रथाओं और बुराइयों का प्रचलन हो गया। सती–प्रथा, बाल–हत्या, बाल–विवाह, बहु–विवाह, पर्दा–प्रथा आदि अनेक कुप्रथाएं प्रचलित हो गयी। धर्म के ठेकेदार इन बुराइयों को प्रोत्साहन देते थे। मर्ति–पूजा तथा बाह्य आडम्बरों पर अधिक बल दिया जाने लगा। धर्म में ज्ञान का स्थान नही ंके बराबर रह गया। ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म की चक्की में हिन्दू धर्म पिसने लगा और उसका ह्रास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। 18वीं सदी तक ह्रास इस सीमा पर पहुंच गया कि भारत के इतिहास में इसे अन्धकार युग कहा जा सकता है।

अन्धकार के विरूद्ध पुनर्जागरण का युग प्रारम्भ हुआ। भारत में नई चेतना और जागरण की लहर दौड़ गयी। ''विवके और ज्ञान ने विश्वास का स्थान ले लिया, अन्धविश्वास ने विज्ञान के सम्मुख घुटने टेक दिये, रूढ़िवाद की श्रृंखलाएँ एक–एक कर टूटने लगीं और पुरानी विचारधाराओं की आलोचनाएँ प्रारम्भ हुई''। राजा राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि सुधारकों ने हिन्दू धर्म, समाज तथा संस्कृति में सुधार लाने का सराहनीय प्रयत्न किया।

19वीं शताब्दी के समाज तथा धर्म सुधार आन्दोलन के अनेक कारण थे जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं –

- पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीयों ने पाश्चात्य साहित्य, दर्शन एवं इतिहास का अध्ययन किया। इस अध्ययन ने उनके मस्तिष्क की संकीर्णता एवं संकुचितता का अन्त कर उनके दृष्टिकोण को विशाल एवं व्यापक बनाया। उनका मानसिक क्षितिज बहुत विस्तृत हो गया।
- भारतीय संस्कृति क पाश्चात्य संस्कृति से सम्पर्क हुआ तथा विचारों का आदान–प्रदान हुआ। फलतः भारतीयों पर यूरोपीय नवजागरण तथा धर्म–सुधार का प्रभाव पड़ा ओर उनमें एक नवीन दृष्टिकोण पैदा हुआ जिसमें अन्धविश्वास का स्थान चिन्तन–प्रणाली ने लिया।

- ईसाई मिशनरियों ने सोते हु हिन्दुओं को जगाया। उन्होंने काफी तेजी से हिन्दुओं का धर्म–परिवर्तन आरम्भ कर दिया। हिन्दुओं का सजग होना तथा अपनी खोई प्रतिष्ठा को वापस लाने का प्रयत्न करना स्वाभाविक ही था।
- भारतीयों को अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की महानता तथा वैभव का ज्ञान हुआ। सर विलियम जोन्स, मेक्समूलर, मोनियर विलियम्स, विल्सन आदि यूरोपीय विद्वानों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला का उद्घाटन कर विश्व के समक्ष भारत की प्राचीन महत्ता को उपस्थित कियां इसने सोये हुए भारतीयों को जगा दिया।
- बाहरी शक्तियों के प्रभाव तथा आध्यात्मिक परम्परा से प्रभावित होकर अनेक सुधारकों, सन्तों तथा विद्वानों ने हिन्दू धर्म के विशुद्ध रूप का विवेचन किया तथा उसके बाह्य आडम्बर की भर्त्सना की। उन्होंने धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध नारा दिया। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज :– राजा राममोहन राय को पुनर्जागरण का ''सुबह का तारा'' कहा जाता है। जकारिया की राय में इन्हें सुधारकों का ''आध्यात्मिक पिता'' कहा जा सकता है। बहुत–से विद्वानों ने तो उन्हें ''आधुनिक भारत के पिता'' तथा ''नये युग का अग्रदूत'' कहा है। एम.सी. सरकार तथा के.के. दत्त के शब्दों में

''आधुनिक भारतवर्ष में राजनीतिक जागृति और धर्म–सुधार का आध्यात्मिक आरम्भ राजा राममोहन राय के जन्म से होता है। वे एक युग के प्रवर्त्तक के रूप में आये।''

राजा राममोहन राय का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में सन् 1774 में हुआ। उन्हें अरबी, फारसी, लैटिन और ग्रीक जैसी भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान था। उन्होंने वेद, उपनिषद् आदि का गहरा अध्ययन किया। उन्होंने बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मो का गहरा अध्ययन किया। मोनियर विलियम्स के शब्दों में ''वे तुलनात्मक धर्म विज्ञान के संसार में कदाचित प्रथम जिज्ञासु थे।'' उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति का अध्ययन किया तथा उसके गुणों का समावेश हिन्दू धर्म में करना चाहा। वे अंग्रेजी शिक्षा के कट्टर समर्थक थे। उनका विश्वास था कि पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान एवं दर्शन द्वारा भारतीयों का नैतिक सुधार हो सकता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधार पर एक विश्व–धर्म की स्थापना करना अपना लक्ष्य बनाया। वे हिन्दू धर्म में फैली कुप्रथाओं के कट्टर विरोधी थे। सती–प्रथा तथा बाल–विवाह का उन्होंने विरोध किया तथा विधवा–विवाह और स्त्री–शिक्षा का समर्थन किया। इसके लिए उन्होंने समस्त देश का भ्रमण किया। वे मूर्ति–पूजा के विरोधी थे। उन्होंने सभी धर्मो को मूलतः एक ही बतलाया। श्री ब्रजेन्द्र शील के शब्दों में, ''वे व्यापक मानवता के जनक थे।''

सन् 1828 में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की। इस समाज का उद्देश्य भारतीय संस्कृति और हिन्दू–धर्म में सुधार लाकर उसके खाये हुए गौरव को पुनः वापस लाना था। ब्रह्म समाज में निम्नलिखित धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया –

(1) ईश्वर एक है। उसी की पूजा होनी चाहिए।

(2) ईश्वर निराकार है। वह शाश्वत, अदृश्य तथा सत्य है।

(3) ईश्वर की पूजा सबके लिए है। उसमें वर्ण अथवा जाति सम्बन्ध का विभेद नहीं है। ईश्वर पूजा, सन्यास, मूर्ति–पूजा और कर्मकाण्ड के द्वारा नहीं बल्कि आध्यात्मिक रूप से की जानी चाहिए। धर्म का कोई बाह्य आडम्बर नहीं।

(4) प्रार्थना की जानी चाहिए लेकिन मूर्ति पूजा नहीं।

ब्रह्म समाज ने समाज में निम्नलिखित सुधारों को लाना चाहा –

(1) समाज में प्रचलित जाति भेद–भाव की समाप्ति।
(2) छुआछुत की समाप्ति।
(3) बाल–विवाह, बहु–विवाह तथा बाल–हत्या का अन्त।
(4) विधवा–विवाह का प्रचलन।
(5) अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता की समाप्ति।

इस प्रकार ब्रह्म समाज एक धार्मिक आन्दोलन नहीं बल्कि एक सामाजिक आन्दोलन था। यह

आन्दोलन काफी व्यवहारिक तथा उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके प्रयत्नों के फलस्वरूप अनेक समाजिक कुरीतियों से हिन्दू समाज का छुटकारा मिला। राजा राममोहन राय की मृत्यु के बाद महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने इसकी बागडोर सम्भाली। महर्षि ठाकुर के बाद केशव चन्द्र सेन का इस आन्दोलन में पदार्पण हुआ।

श्री केशव चन्द्र सेन :– श्री केशव चन्द्र सेन ब्रह्म समाज के एक प्रमुख नेता हुए। वे विश्वव्यापी धर्म के पक्के समर्थक थे। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप शुरू में ब्रह्म समाज काफी पनपा उन्होंने ब्रह्म विद्यालय तथा संगीत सभा की स्थापना की तथा ''इण्डियन मिरर'' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। ब्रह्म समाज में पारस्परिक फूट के कारण उन्होंने नवीन ब्रह्म समाज की स्थापना की। उन्होंने विधवा–विवाह और अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया। वे सभी धर्मो का मूल एक मानते थे। अतः उन्होंने धर्मो के पारस्परिक मतभेद तथा वैमनस्यता का विरोध किया। उनके नेतृत्व में ब्रह्म समाज को काफी प्रगति हुई। उनकी मृत्यु 1884 में हुई।

पार्थना सभा :– ब्रह्म माज के अतिरिक्त देश में अन्य धर्म–सुधारक संगठन भी कायम हुए। महाराष्ट्र में 1849 में परमहंस नामक एक आस्तिक समाज कायम हुआ लेकिन वह शीघ्र ही समाप्त हो गया। 1867 में डॉ. आत्माराम पाण्डुरंग ने संगठन की स्थापना की जिसे प्रार्थना समाज कहते है। इसके प्रमुख नेता पाण्डुरंग, गोपाल भण्डारकर तथा गोविन्द रानाडे हुए। यह संगठन ब्रह्म समाज का ही एक रूप था। यह संगठन एक आस्तिकवादी समाज की स्थापना करना चाहता था। उसने विवेकपूर्ण पूजा और समाज–सुधार पर जोर दिया। इसने जाति प्रथा का अन्त, विधवा–विवाह के प्रचलन, बाल–विवाह के निषेध तथा स्त्री शिक्षा के प्रसार को अपना उद्देश्य बनाया। अछूतों के उद्धार के लिए भी उसने कई स्थानों पर अनाथालय, विधवा आश्रम तथा रात्रि–पाठशाला की स्थापना की। गोविन्द रानाडे के प्रयत्नों के फलस्वरूप विधवा–विवाह संघ तथा डेकन एडुकेशन सोसायटी की नींव पड़ी। उन्होंने समाज सुधार के अलावा राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लिया। गोखले, तिलक, गणेश आगरकर जैसे प्रार्थना–समाज के सदस्य इन्हीं के शिष्य थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज :– सुधार आन्दोलन में सबसे अधिक प्रभावशाली आन्दोलन आर्य–समाज का हुआ। आज भी यह संगठन सर्वाधिक लोकप्रिय है। इस संगठन के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। उनका जन्म काठियावाड़ में 1824 में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने संस्कृत, व्याकरण और वेदों में विद्वत्ता प्राप्त की। 21 वर्ष की उम्र में उन्होंने घर त्याग कर सन्यास ले लिया। वे घम–घूम कर वैदिक धर्म और संस्कृति का प्रचार करते रहे। उन्होंने –सत्यार्थ प्रकाश'' में अपने विचारों की व्याख्या की। उन्होंने ''वेदों की ओर लौटने'' का नारा दिया। उन्हें पुराणों की धार्मिक व्यवस्था में विश्वास नहीं था। वे मूर्तिपूजा, जाति–पात की प्रथ, यज्ञों, बाल–विवाह आदि प्रथाओं के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने वर्णाव्यवस्था का खण्डन किया तथा ब्राम्हणों के एकाधिकार का विरोध किया। उन्होंने विधवा–विवाह के प्रचलन तथा नारी–शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया। उन्होंने 'स्वराज्य' क नारा दिया। वे राष्ट्रीय एकता में विश्वास रखते थे। उन्होंने एक भाषा, एक धर्म, एक संस्कृति का प्रचार किया। कर्नल ओलकोट ने लिखा है कि, ''दयानन्द ने अपने अनुयायियों पर अति गम्भीर प्रभाव डाला।'' ऐनी बेसेन्ट के शब्दों में, ''दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कहा कि भारत भारतीयों के लिए हैं।'' 1883 में स्वामी जी की मृत्यु हो गयी।

स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की। यह संगठन निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित था –

(1) ईश्वर एक है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, अनन्त, निर्विकार, र्वाधार, सर्वव्यापक, अमर, सर्वेश्वर, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता हैं।

(2) वेद सत्य विधाओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना और सुनना–सुनाना सब आर्यो का परमधर्म है।

(3) सत्य को ग्रहण करने और असत्य का त्याग करने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

(4) समस्त कार्यो को धर्म के अनुसार करना चाहिए।

(5) सबसे प्रीतिपूर्वक और धर्मानुसार तथा योग्य बर्ताव करना चाहिए।

(6) सबकी शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति होनी चाहिए।

(7) अज्ञान का नाश तथा ज्ञान का प्रचार होना चाहिए।

(8) प्रत्येक मनुष्य को केवल अपनी उन्नति से ही संतुष्ट नहीं रहना चाहिए बल्कि सबकी उन्नति में उसे अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(9) हितकारी नियम के पालन में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है। लेकिन सामाजिक सर्वहितकारी नियम के पालन में वह परतन्त्र है।

आर्य समाज ने धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्र में काफी सुधार किया। उसने ब्रह्मणों के एकाधिकार का विरोध किया और 'शुद्धि आन्दोलन'' चलाकर अन्य धर्मावलम्बियों के लिए हिन्दू धर्म का द्वार खोल दिया। इसने सामाजिक क्षेत्र में मूर्तिपूजा, छुआछूत, जाति–पाति, बाल–विवाह, अन्तर्जातीय–विवाह आदि कुरीतियों का घोर विरोध किया। साथ ही, इसने विधवा–विवाह, अन्तर्जातीय–विवाह तथा स्त्री–शिक्षा का पूर्ण समर्थन किया। अछूतों के उद्धार की दिश में भी इसने सराहनीय कार्य किया। शिक्षा के क्षेत्र में भी आर्य समाज का कार्य सराहनीय रहा है। हरिद्वार में गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना की गयी है। आज सारे उत्तर तथा पश्चिम भारत में दयानन्द ऐंगलो–वेदिक स्कूल तथा कॉलेज स्थापित किये गये है। स्त्री–शिक्षा के लिए आर्य समाज के अधीन कई कन्या पाठशालाएँ स्थापित की गयी हैं। यह जनता में आत्मसम्मान, एकता और मातृभूमि के इज्जत और भक्ति की भावना भरने की दिशा में काफी सफल रहा है। स्वतन्त्रता–प्रेम तथा विदेशियों के विरोध की नीति को अपनाकर इसने राष्ट्रीय संस्था का रूप ले लिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती के बाद लाला लाजपत राय तथा स्वामी श्रद्धानन्द जैसे महान् नेताओं ने आर्य समाज की बागडोर सम्भाली। आज भी यह संगठन एक महत्वपूर्ण धर्म–सुधारक संस्था का काम कर रहा है।

थियोसोफिकल सोसायटी :– भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन में थियोसोफिकल सोसायटी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसकी स्थापना सन् 1857 में न्यूयार्क में हुई थी। इसके संस्थापक एक रूसी महिला ब्लैवटस्की तथा अमेरिकन सेना अधिकारी कर्नल हेनरी बालकाट थे। सोसायटी का प्रारम्भिक उद्देश्य सृष्टि, मनुष्य की प्रकृति आदि का पता लगाना तथा उसके अनुसार जीवन प्रणाली का प्रचार करना था। इसका सम्बन्ध हिन्दू धर्म से नहीं था बल्कि यह एक विश्व–धर्म था जिसका आदर्श विश्व–बन्धुत्व था। यह संस्था सभी धर्मो का मूल–स्रोत एक ही मानती थी। इसने वर्ण, जाति, नस्ल, रंग, राष्ट्रीयता आदि विभेदों का विरोध कियां इसका मूल लक्ष्य प्रकृति के गूढ़ तत्वों की खोज करना था। विचारों की विशालता तथा उदारता के कारण यह संस्था भारत में काफी लोकप्रिय हुई। इससे ईसाई धर्म के प्रचारकों को गहरा धक्का लगा।

श्रीमती ऐनी बेसेण्ट :– भारत में थियासोफिकल आन्दोलन को सफल बनाने का श्रेय श्रीमती ऐनी बेसेण्ट को है। उनका जन्म एक आयरिश परिवार में 1847 में हुआ था। उनका विवाह एक ईसाई पादरी से हुआ लेकिन धर्म मतभेद के कारण उन्हें तलाक दे दिया। 1889 में बल्वैटस्की से प्रभावित होकर वे थियोसोफिकल सोसाइटी की सदस्या बनी। 1893 में भारत चली आई। उन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि स्वीकार किया तथा हिन्दू धर्म को ग्रहण कर लिया। उन्होंने हिन्दू धर्म की प्राचीन रूढ़ियों विश्वासों तथा कर्मकाण्ड का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने वेदों और उपनिषदों में अपना विश्वास प्रकट किया और हिन्दू–संस्कृति को पश्चिमी सभ्यता के मुकाबले में श्रेष्ठ घाषित किया और मूर्ति पूजा का समर्थन किया।

प्राचीन भारत के आदर्शो तथा परम्पराओं को पुनर्जीवित करने की दिशा में उन्होंने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कुल की स्थापना की जिसने बाद में चलकर हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण किया। श्रीमती बेसेण्ट ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लिया। उन्होंने भारतीय ''होम रूप आन्दोलन'' चलाया। इनका कहना था कि ''होमरूल'' भारतवर्ष का मौलिक अधिकार है, इसे प्राप्त करना ही है। आन्दोलन के सिलसिले में उन्हें जेल भी जाना पड़ा। तिलक उनके विचारों से काफी प्रभावित हुए और ''होमरूल आन्दोलन'' में हाथ बटाया। 1917 में श्रीमती बेसेण्ट कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षा चुनी गयीं। इस प्रकार भारत के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन पर श्रीमती बेसेण्ट का गहरा प्रभाव पड़ा।

रामकृष्ण परमहंस और राकृष्ण मिशन :– रामकृष्ण परमहंस का जन्म 1834 ई. में हुगली के गरीब ब्राम्हण परिवार में हुआ था। बचपन से ही उनका धर्म–ज्ञान अनुपम था और उनकी प्रवृत्ति धार्मिक। उन्होंने अनेक धर्मो का अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी धर्म समाजन हैं, सबका ध्येय एक है और उस ध्येय तक पहुँचने के रास्ते अलग–अलग हैं। वे बहुत

बड़े धर्मात्मा, संत तथा साधक थे। वे दक्षिणेश्वर काली मन्दिर के पुजारी भी थे।

रामकृष्ण परमहंस के पूर्ववर्ती धर्म सुधारकों ने केवल हिन्दू–धर्म की कुप्रथाओं को दूर कर उसे ईसाई धर्म और पाश्चात्य विचारों से बचाने का प्रयास किया था। उन्होंने भक्ति और श्रद्धा को कोई महत्व नहीं दिया जबकि हिन्दू धर्म में इनका बहुत स्थान है। इसका परिणाम यह हुआ कि ''वे न हिन्दू महर्षियों द्वारा सैकड़ों सदियों में विकसित किये धार्मिक विचारों और आदर्शो की विशाल और शानदान परम्परा की महत्ता का अन्दाज लगा सके और न उसे विस्तार से देख ही सके।'' श्री रामकृष्ण परमहंस ने इस कमी को दूर किया। उन्होंने हिन्दू समाज को एक गहरी आध्यात्मिकता से परिपूर्ण आदर्श जीवन तथा उदार एवं समन्वित दृष्टिकोण दिया। उन्होंने हिन्दू धर्म को पूर्ण और श्रेष्ठ घोषित तथा इसकी परम्पराओं में आस्था व्यक्त कर इसे पुनर्जागृत किया। वे एक महान् मानवतावादी भी थे। उन्होंने दरिद्रों और अपाहिजों की सेवा में अपना सरा जीवन बिताया। उनके शिष्यों ने राम कृष्ण मिशन की स्थापना कर उनके संदेश का प्रचार तथा मानवता की सेवा की। आज भी यह मिशन आध्यात्मिक चिंतन तथा गरीबों की सेवा में लगा हुआ है।

स्वामी विवेकानन्द :– स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के महान् शिष्य थे। उनका जन्म 1863 में हुआ था। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे। वे अत्यन्त तेजस्वी व्यक्ति थे तथा भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति थी। उनपर रामकृष्ण परमहंस का काफी प्रभाव पड़ा। उन्होंने गूढ़ रहस्यों का चिंतन किया। उन्होंने 1893 में शिकागो के धर्म–सम्मेलन में सक्रिया भाग लिया और अपने पांडित्य का परिचय दिया। उन्होंने सम्मेलन में घोषणा की कि ''वेदान्त संसार का भव्य, व्यापक तथा सर्वश्रेष्ठ धर्म है।'' अमेरिका में उन्होंने अनेक शिष्य बनाये। वे पेरिस में धर्म–सम्मेलन की दूसरी कांग्रेस में भी सम्मिलित हुए। इन सम्मेलनों में उनका बहुत प्रभाव पड़ा। सिस्टर निवेदिता का उनके भाषण के सम्बन्ध में कहना है कि वहाँ स्वामी जी ने जब बोलना शुरू किया तब वे हिन्दू धर्म के विचारों के विषय में बोले। लेकिन जब भाषण समाप्त हुआ तो ऐसा लगा कि उन्होंने हिन्दू धर्म की सृष्टि कर दी है। इस प्रकार उन्होंने अमेरिका तथा यूरोप में हिन्दू धर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने वैंगलूर में रामकृष्णमठ की स्थापना की जो आज भी रामकृष्ण मिशन का प्रधान केन्द्र माना जाता है। उन्होंने समाज सेवा के भी कार्यो में भाग लिया। 1902 में उनका देहावसान हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस संस्था का प्रधान उद्देश्य रामकृष्ण परमहंस के सिद्धांतों को चारों ओर फैलाना है। इसकी शाखाएँ भारत में जाल–सी बिछी हुई है। विदेश में भी इसकी शाखाएँ खुली हुई है। यह संस्था सेवा तथा परोपकार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। देश के विभिन्न भागों में इसने पाठशालाएँ, अस्पताल तथा अन्य प्रकार के परोपकारी संस्थाएँ स्थापित की है। संकटकालीन परिस्थितियों में, जैसे – बाढ़, भूकम्प इत्यादि में यह संस्था जनता की अपूर्व सेवा करती है।

रामकृष्ण मिशन का आधार परमहंस के विद्धान्त हैं जिन्हें स्वामी विवेकानन्द ने विकसित किया। इसके सिद्धान्त है, सब धर्म सच्चे और अच्छे हैं। ईश्वर निर्गुण, अज्ञेय तथा नैतिकता से परे है, मूर्ति पूजा आध्यात्मिक पूजा का रूप है, भारत आध्यात्मिक क्षेत्र में विश्व का गुरू है। हिन्दू संस्कृति को पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति से बचना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस का अपने को अनन्य शिष्य सिद्ध किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया। उन्होंने देश–भक्ति का भी महान परिचय दिया। मानवता की सेवा के क्षेत्र में उनके सराहनीय कार्य हैं।

अन्य सम्प्रदायों में सुधार आन्दोलन

मुसलमानों में सुधार आन्दोलन :– हिन्दू धर्म की भाँति मुस्लिम धर्म का भी 19वीं शताब्दी में ह्रास हो चुका था। उनके समाज में भी अंधविश्वास तथा पाखण्ड का बोलबाला हो गया था। अतः मुस्लिम समाज धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से कई आन्दोलन शुरू हुए। इन आन्दोलनों में बहाबी तथा अहमदी आन्दोलन महत्वपूर्ण है। सैयद अहमद और इस्माइल हाजी, मौलवी मुहम्मद भारतीय बहावी आन्दोलन के प्रमुख नेता थे। इस आन्दोलन में इसलाम की परित्रता तथा इस्लाम की एकता पर जोर दिया गया। इसने मुस्लिम समाज की कुरतियों को दूर करने की चेष्टा की। रूढ़िवादी होने होने के कारण यह

आन्दोलन सफल न हो सका। सर सैयद अहमद खाँ मुस्लिम समाज के महान् सुधारक समझे जाते हैं। वे अंग्रेजी शिक्षा, स्त्री तथा विदेश भ्रमण के बड़े समर्थक थे। इन्होंने पर्दा–प्रथा, बहु–विवाह तथा दास–प्रथा का कड़ा विरोध किया। उन्होंने अलीगढ़ में एक कॉलेज की स्थापना कर मुस्लिम विश्वविद्यालयों की नींव डाली। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया।

अहमदिया आन्दोलन मिर्जा गुलाम अहमद कादिमी के नेतृत्व में शुरू हुआ। उन्होंने कादियानी सम्प्रदाय की नींव डाली तथा सभी धर्मो में सुधार का अपना लक्ष्य बनाया। इस आन्दोलन का प्रभाव पंजाब में अधिक पड़ा। सन् 1885 में अंजुमन–ए–हिमयत–इस्लाम की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य मुसलमानों की सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक तरक्की करनी थी। सन् 1894 में इसी प्रकार की एक अन्य संस्था की स्थापना हुई जिसका नाम नदवाद–उल–उलेमा कहा जाता था। इन सुधार आन्दोलनों का प्रभाव बीसवीं सदी की राजनीति पर पड़ा। खाँ अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व में खिदमदगार आन्दोलन चलाया गया। मुस्लिम लीग ने मुसलमानों में एकता, जागृति और सुधार लाने का सबसे अधिक प्रचार किया। इसकी स्थापना 1926 में हुई थी। इसने मुसलमानों को लग राष्ट्र की मांग के लिए प्रोत्साहित किया। इसके नेतृत्व में मुसलमानों में धार्मिक और राजनीतिक जागृति आयी जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान की स्थापना हुई।

सिख धर्म में सुधार आन्दोलन :– हिन्दू तथा मुस्लिम धर्म की भाँति सिख धर्म में भी बुराइयाँ घुस आयी थीं। गुरूद्वारों में भ्रष्टाचार घुस आया था। इसे दूर करने के लिए शिरोमणी गुरूद्वारा प्रबन्धक समिति की स्थापना की गयी। सिखों में शिक्षा के प्रचार के लिए देश भर में स्कूल तथा कॉलेज खोले गये। अमृतसर का खालसा कॉलेज विख्यात है।

पारसी धर्म–सुधार आन्दोलन :– पारसी धर्म भी सुधारवादी आन्दोलनों से अछूता न रहा। इसके धर्म–सुधारकों में दादा भाई नौरोजी, जे.बी. बाचा, एच. जी. बंगाली तथा करशेद जी रूस्तम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् 1851 में पारसियों की रहनुमाई में मजदयसीनन सभा नामक संगठन की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य पारसी धर्म को पुनर्जीवित तथा उनके समाज में सुधार लाना था। सन् 1900 में धर्म–सुधार के उद्देश्य से पारसियों का एक सम्मेलन हुआ। पारसी सुधारकों ने जरथ्रुष्ट धर्म को पुनर्जागृत किया तथा इसमें अनेक सुधार लाये।

ईसाई धर्म का प्रचार :– अन्य धर्मो की भाँति ईसाई धर्म में सुधार आन्दोलन नही चलाया गया। कारण यह है कि भारत में ईसाई पादरियों का ध्यान धर्म के प्रचार की ओर था। यूरोपीय देशों से बहुत–से धर्म–प्रचारक भारत आये तथा व्यापार के साथ–साथ उन्होंने धर्म का प्रचार भी किया। पिछड़ी जातियों तथा आदिवासियों में उन्होंने अपना कार्य–क्षेत्र विशेष रूप से फैलाया धर्म–प्रचार के साथ उन्होंने अनेक सामाजिक सुधार भी किए। शिक्षा के क्षेत्र में उनके कार्य विशेष उल्लखनीय हैं। अनेक स्कूलों, कॉलेजों की स्थापना की गयी। पादरियों ने जगह–जगह पर अस्पताल और शिक्षालय भी खोले। आज भी मिशनरी धर्म–प्रचार तथा समाज–सुधार के कार्य में संलग्न है। कुछ लोग उनके कार्यो को शंका की दृष्टि से देखते हैं तथा राष्ट्र–विरोधी समझते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. राम जोशी एण्ड कीर्तिदेव देसाई – दुवर्डस ए मोर कम्पेटीटिव सिस्टम इन इण्डिया, एसियन सर्वे, नवम्बर, 1978।
2. महेन्द्र प्रसाद सिंह – दि कांग्रेस सेंटेनियल, इण्डियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, अक्टूबर–दिसम्बर, 1985।
3. जेम्स मैनर – एनामी इन इण्डियन पालिटिक्स, इकॉनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, ऐनुअल नम्बर, मई 1983।
4. डॉ. ओम नागपाल – भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन, संवैधानिक विकास और संविधान, पृष्ठ, 86
5. डॉ. शैलेन्द्र श्रीवास्तव – स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, साहित्य निधि प्रकाशन, दिल्ली वर्ष 1994
6. निर्मल कुमार – भारतीय स्वाधीनता का इतिहास, समानांतर प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 1990
7. राजेन्द्र मोहन भटनागर – भारतीय शिक्षा और साक्षरता, कल्याणी शिक्षा परिषद, दिल्ली, वर्ष 1998
8. भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास ताराचन्द्र प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली, वर्ष 1969
9. डॉ. एस.पी. साठे : जवाहर लाल नेहरू तथा मौलिक अधिकार : 'संसदीय पत्रिका', पृष्ठ 10

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

10. डॉ. कैलाश रवन्ना – आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009।
11- डॉ. जी. आर. गांगले, डॉ. राजरानी खुराना, डॉ. जे. के. नायर, डॉ. बी. के. त्यागी – आधुनिक भारत निर्माण, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पर्यावरण, अध्ययन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014।
12. मिश्र डी.पी., ''मध्य प्रांत में स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास'', संस्कृति विभाग, भोपाल, पृष्ठ–422
13. पट्टाभि सीतारमैया – हिस्ट्री ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग–2, पृष्ठ–53
14. रायपुर डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटी कार्यवाही, रजिस्टर नं. 101, पृष्ठ–71
15. श्री पन्नालाल बल्दुआ शुक्ल– अभिनंदन ग्रंथ, विविध खंड, के लेख से उद्धृत, पृष्ठ–25
16. मध्यप्रदेश के स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक, खण्ड 2, भाषा संचालनालय, मध्य प्रदेश शासन 1983
17. भगवानदास श्रीवास्तव – 1857 की क्रांति और विद्रोही राजा बखतवली, शांति प्रकाशन, भोपाल, 1995
18. डॉ. भरत शुक्ल, डॉ. त्रिभुवन मोहन शुक्ल – प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, 2010

विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों का भारतीय कृषि पर प्रभाव एवं उभरती चुनौतियाँ

डॉ. प्रियंका दुबे
एम.ए. पी.एच.डी. अर्थशास्त्र, लॉ विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की केन्द्र बिन्दु व भारतीय जीवन की धुरी है। आर्थिक जीवन का आधार, रोजगार का प्रमुख स्त्रोत तथा विदेशी मुद्रा अर्जन का माध्यम होने के कारण कृषि को देश की आधारशिला कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। देश की कुल श्रम शक्ति का लगभग 52 प्रतिशत भाग कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित क्षेत्रों से ही अपना जीविकोपार्जन कर रही है। अतः यह कहना समीचीन होगा कि कृषि के विकास, समृद्धि व उत्पादकता पर ही देश का विकास व सम्पन्नता निर्भर है।

कृषि का विकास व सम्पन्नता कृषि उत्पादन वृद्धि के साथ ही उत्पादित उपज के उचित मूल्य प्राप्ति पर निर्भर है। गौरतलब है कि देश के अधिकांश छोटे किसान गरीबी के दुष्चक्र में जकड़े हुए है। गरीबी तथा ऋणग्रस्तता के कारण किसान अपनी उपज कम कीमतों पर बिचौलियों को बेचने के लिए बाध्य है। इन बिचौलियों के जाल से किसानों को मुक्त करवाने तथा विपणन व्यवस्था में सुधार लाने हेतु सरकार ने नियन्त्रित मण्डियों के विस्तार, कृषि उपज के श्रेणीकरण व प्रभावीकरण, माल गोदामों की व्यवस्था, बाजार एवं मूल्य सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसारण व सहकारी विपणन व्यवस्था का प्रबन्धन जैसे महत्वपूर्ण कदम उठाए है। राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान की स्थापना भी इसी दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम है। यह संस्थान कृषि विपणन में विशिष्ट शिक्षण, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान की सेवाएँ प्रदान करते हुए कृषि विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों का भारतीय कृषि पर प्रभाव :– अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और खाद्य सुरक्षा स्थिति में उदारीकरण के प्रभावों के संबंध पर आधारित है । इस चर्चा से पता चलता है कि खादय सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए व्यापार पर अधिक निर्भरता आपूर्ति और कीमतों के मामले मे जोखिम पैदा करता है और अध्याय का दूसरा चरण इस बात का अध्ययन करता है कि कैसे व्यापार में उदारीकरण उत्पादन को बढ़ाने में, कषि में रोजगार उत्पन्न करने में और सामान्य लोगों का पोषण स्तर उठाने में विफल रहा है।

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। इसकी लगभग 55 प्रतिशत जनसंख्या इस क्षेत्र में कार्यरत है। पर आधारित है, कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 14 प्रतिशत योगदान है। लेकिन लगातार हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान घट रहा है। 1950 के दशक में हमारी अर्थव्यवस्था में कृषि का योगदान 53 प्रतिशत था, जो वर्तमान में करीब 14 प्रतिशत रह गया है। देश के निर्यात के क्षेत्र में कृषि का 10 प्रतिशत हिस्सा है। देश की 1.26 अरब आबादी की खाद्य सुरक्षा कृषि पर निर्भर है।

कृषिगत आगतों की बढ़ती कीमतें, गिरते भू–जल स्तर एवं भूमि की घटती उर्वरता के कारण कृषि घाटे का सौदा बन गई है। इसी कारण खेती से किसानों का मोहभंग हो रहा है, खेती के प्रति किसानों की उदासीनता बढ़ती जा रही है जो कि देश की खाद्य सुरक्षा के लिए खतरे का संकेत है।

वैश्वीकरण का प्रभाव :– यह वर्तमान परिस्थितियों के अध्ययन पर केन्द्रित है अर्थात भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत एक मुक्त और उदार व्यापार परम्परा की स्थापनाने भारतीय अर्थव्यवस्था के भाग्य को किस तरह से प्रभावित किया है। इस विषय पर हुई सार्वजनिक बहस में कृषि क्षेत्र में उदारीकरण के आयात के हानि कर प्रभावों से जुड़े भय की प्रधानता है और ऐसा इसलिए भी क्योंकि WTO और उरूग्वे दौर में हुई वार्ता जो अपने आप में एक राजनैतिक रंग ली हुई थी, को लेकर बहुत ज्यादा बहसें हुई है।

कृषि के संबंध में प्रावधानों (AOA) में कृषकों के ऊपर अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष : दोनों तरह के प्रभाव शामिल है। प्रत्यक्ष प्रभावों का निर्धारण इस बात का आकलन करके किया जा सकता है कि समझौते के प्रावधानों ने कृषि के विकास और रोजगार को किस सीमा तक प्रभावित किया है और इसके द्वारा किसानों के जीवन–स्तर पर कितना प्रभाव पड़ा हैं, परन्तु ज्यादा

महत्वपूर्ण बात यह है –कि आर्थिक उदारीकरण ने व्यापक आर्थिक नीति के ढांचे में एक महत्वपूर्ण बदलाव लाया है जो कि समग्र और क्षेत्रीय विकास पैटर्न को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।

वर्तमान में यह देखा गया कि भारत की घरेलू समर्थन और निर्यात सब्सिडी में कमी को लेकर कोई प्रतिबद्धता नहीं है। भारत में घरेलू समर्थन इतना विस्तृत नहीं है कि जिसमें कमी की आवश्यकता हो पर घर घरेलू. समर्थन के मामले में, दोनों तरह के समर्थन चाहे वो उत्पाद विशिष्ट समर्थन हो या फिर गैर उत्पाद विशिष्ट समर्थ में De-Minimus सीमा की 10 प्रतिशत की छूट, कमी की प्रतिबद्धता को लेकर दी गई है। वर्तमान में उत्पाद विशिष्ट समर्थन ज्यादातर वस्तुओं के लिए सकारात्मक है।

जहाँ तक भारत का सवाल है, इसका बुनियादी दायित्व, प्राथमिक वस्तुओं के लिए 100 प्रतिशत प्रसंस्करित वस्तुओं के लिए 150 प्रतिशत और निश्चित तरह के खाद्य तेलों के लिए 300 प्रतिशत तक सीमा आबन्धन (Ceiling Gindings) तय करने को लेकर है। ज्यादातर कृषि वस्तुओं के लिए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए लागू टेरिफ दर 35 प्रतिशत है, और सीमा आबन्धन (Cciling Gindings) भारतीय कृषि को पर्याप्त सुरक्षा उपलब्ध कराते हैं। कुछ ऐसी वस्तुऐं भी है जिन पर GATT वार्ताओं के शुरूआती दौरों के अन्तर्गत टैरिफ स्तर को कम स्तर पर बढ़ा दिया गया था। भारत को विकसित देशों के कृषि बाजारों तक पहुँच से कुछ लाभ मिलने की आशा थी पर इन देशों के द्वारा आरोपित अत्याधिक टैरिफ सीमा और टैरिफ वृद्धि के कारण कुछ मूल्यवान दुग्ध उत्पादों और माँस के उत्पादों के लिए यह लाभ पाना मुश्किल हो गया ।

AOA भी नियात सब्सिडी को प्रतिबद्धता के अन्तर्गत रखता है। वर्तमान में भारत ने कृषि से सम्बन्धित किसी भी निर्यात सब्सिडी का विस्तार नहीं किया है। जो कि समझौते की निदर्शी सूची के अन्तर्गत निबिद्ध है। यह समझौता विकासशील देशों को कुछ तरह की सब्सिड़ियाँ जैसे निर्यात विपणन लागत, आंतरिक और अंतर्राष्ट्रीय परिवहन और माल भाड़े की लागत में कमी के रूप में प्रदान करने की अनुमति देता है। भारत इन प्रावधानों का चयनात्मक उपयोग करता है। AOA के अनुच्छेद 20 ने सुधार प्रक्रिया को जारी रखने के लिए कुछ और वार्ताओं को करने के लिए आदेशित किया हैं। यह वार्ताएँ पहले से ही शुरू हो चुकी हैं और घरेलू समर्थन में कमी, बढ़ोत्तरी, निर्यात सब्सिडी और बाजार में पहुंच को लेकर केंद्रित हैं। पर कृषकों के लिए यह एक स्पष्ट संदेश है कि यदि वे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपने उत्पाद को प्रतियोगिता की दौड़ में देखना चाहते हैं तो, बढ़ी हुई सब्सिडी पर निर्भर न रहकर बल्कि बढ़े हुई उत्पादन क्षमता के द्वारा उन्हें आगे बढ़ना चाहिए।

AOA के कार्यान्वयन के बाद से, भारत के द्वारा जो परिणाम जैसे कि आशा की गई थी उस अनुरूप लाभदायी नहीं रहे। हालांकि नाममात्र टैरिफों के मामले में बाजार पर पहुंच संबंधी कुछ सुधार तो हुए हैं पर विकसित राष्ट्र में भारी–भरकम सब्सिडी के जारी रहने से कृषि–व्यापार लगातार विकृत रूप लेता जा रहा है।

कृषि वस्तुओं के लिए औसत के लिए टैरिफ 40 प्रतिशत के आसपास है, जबकि औद्योगिक वस्तुओं के लिए दर 10 प्रतिशत से भी कम है। इसके अलावा विभिन्न तरहों के गैर–टैरिफ प्रतिबंध विशेषकर स्वास्थ्य और पादप–व्यवस्था संबंधी उपायों के कारण देश का कृषि निर्यात बुरी तरह प्रभावित हुआ है। उदाहरण के लिए, मुक्त व्यापार के बाद से, खाद्य तेलों का आयात कुछ ज्यादा तेजी से बढ़ गया जिसने तेल के किसानों के लिए भीषण परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं।

1995 से व्यापार में प्रदर्शन :– यह अध्याय 1995 के बाद के परिदृश्य का जायजा लेता है। इस वर्ष को चुनने का कारण यह भी है क्योंकि सन् 1995 वैश्विक कृषि व्यापार नीति के इतिहास में एक विभाजन की रेखा का प्रतिनिधित्व करता है। उरूग्वे दौर के अंतर्गत कृषि पर हुआ समझौता 1995 को अस्तित्व में आया।

कृषि में भविष्य की वार्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र बाजार तक पहुंच से संबंधित है जो नाममात्र टैरिफ उपायो को अनिवार्य रूप से कवर करता है। ये गैर टैरिफ उपाय कृषि आयात को प्रभावित करते है। MFN टैरिफ के वर्तमान स्तर और साथ ही साथ मुख्य आयातक देशों में महत्वपूर्ण निर्यात की जानी वाली वस्तुएं के लिए मौजूदा गैर टैरिफ उपायो को पहचान के लिए एक प्रयोग चलाया गया।

चुनौतियाँ – भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रमुख चुनौतियों में विमुद्रीकरण, मौद्रिक नीति का नया ढाचाँ, मुद्रास्फीति नियोजन, वित्तीय संघवाद और बाहरी क्षेत्रों के बदलाव के साथ–साथ जीएसटी के कार्यान्वयन के चलते पिछले कुछ समय में भारतीय अर्थव्यवस्था को चुनौतियों का

सामना करना पड़ा है। इन सबका असर औद्योगिक उत्पादन, निवेभा, उपभोग और कारोबरी माहौल पर पड़ा, जो अब धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। इसके अलावा लम्बे समय से राज्यों का असमान आर्थिक विकास भी देश की अर्थव्यवस्था के लिये एक बड़ी चुनौती बना रहा है।

कृषि क्षेत्र की चुनौतियाँ –

- वर्तमान में राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान बहुत अधिक नही है, फिर भी कृषि उत्पादन में गिरावट विकास दर को निभिचत ही प्रभावित करती है।
- स्वतंत्रता के समय देश में जीडीपी में कृषि का हिस्सा लगभग 50 प्रतिभात था, जो अब घटकर 14 प्रतिभात रह गया है।
- सर्वाधिक उत्पादकता वाले इस क्षेत्र पर देभा की लगभग 58 प्रतिभात जनसंख्या निर्भर करती है।
- घटी हुई विकास दर न केवल कृषि पर देभा के 14 करोड़ से अधिक हो जाता है।
- चुँकि देश की बहुत बड़ी आबादी रोजगार के लिये खेती किसानी से जुड़ी हुई है, इसलिये कृषि में भी किसी भी प्रकार की गिरावट रोजगार संकट को भी बढ़ा देती है

भारत में कृषि की स्थिति – कृषि उत्पादकता कई कारकों पर निर्भर करती है। इनमें कृषि इनपुट्स, जैसे जमीन, पानी, बीज एवं उर्वरकों की उपलब्धता और गुणवत्ता, कृषि ऋण एवं फसल बीमा की सुविधा, कृषि उत्पाद के लिए लाभकारी मूल्यों का आश्वासन और स्टोरेज एवं मार्केटिंग इंफ्रास्ट्रक्चर इत्यादि शामिल है।

वर्ष 2009–10 तक देश की आधी से अधिक श्रम शक्ति (53%), यानि 243 मिलियन लोग कृषि क्षेत्र में कार्यरत थे। इस क्षेत्र में अपनी आजीविका कमाने वाले लोगो में भू–स्वामी, का तकार, जो कि जमीन के एक टुकड़े में खेती करतें है, और खेत मजदूर, जो इन खेतों में मजदूरी करते है, शामिल है। पिछले 10 वर्षो के दौरान कृषि उत्पादन अस्थिर रहा है, इसकी वार्षिक वृद्धि 2010–11 में 8.6% , 2014–15 में –0.2%, और 2015–16 में 0.8% थी। पिछले 10 वर्षो में कृषि क्षेत्र में वृद्धि की प्रवृतियों को प्रदर्षित किया गया है–

रेखाचित्र 1: कृषि में वृद्धि (x)

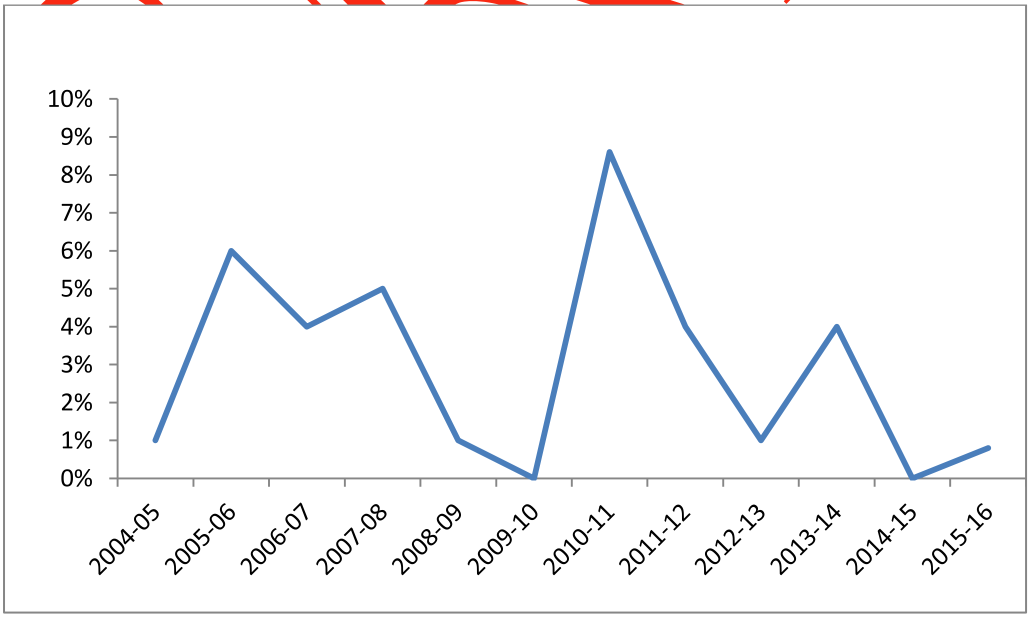

स्त्रोतः कृषि सांख्यिकी, 2015, कृषि मंत्रालय; पीआरएस।

रेखाचित्र 2: विभिन्न क्षेत्रों का जीडीपी में योगदान (x)

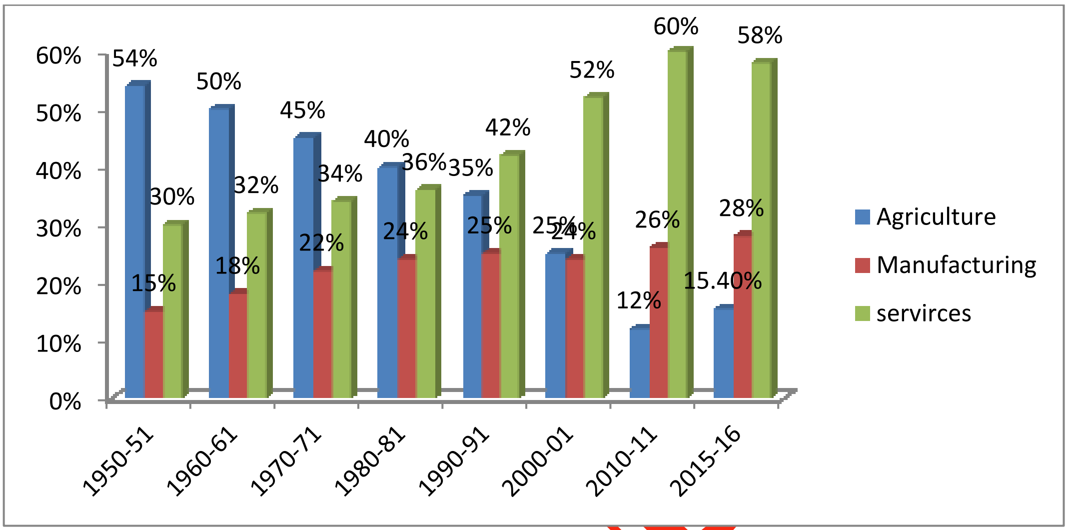

स्त्रोतः सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय; पीआरएस।

जैसा कि रेखाचित्र 2 में प्रदर्शित किया गया है, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि क्षेत्र का योगदान कम हुआ है। यह 1950–51 में 54% से गिरकर 2015–16 में 15.4% हो गया, जबकि सेवा क्षेत्र 30% से बढ़कर 53% हो गया। जहां जीडीपी में कृषि क्षेत्र के योगदान में पिछले कुछ दशकों में गिरावट हुई है, मैन्यूफैक्चरिंग (10.5% आबादी कार्यरत) और सेवा (24. 4% आबादी कार्यरत) क्षेत्रों का योगदान बढ़ा है।

कृषि उत्पादन – पिछले कुछ दशकों में फसल उत्पादन के आकड़े प्रदर्षित किए गए है। प्रस्तुत तालिका द्वारा पिछले कुछ दशकों के दौरान मुख्य फसलों के उत्पादन को प्रदर्षित करती है।

तालिका 1: फसलों का उत्पादन (मिलियन टन में)

वर्ष	चावल	गेहूं	मोटे अनाज	दालें	कुल खाद्यान्न	तिलहन	कपास	चीनी
1950–51	21	6	15	8	51	5	3	57
1960–61	35	11	24	13	82	7	6	110
1970–71	42	24	31	12	108	10	5	126
1980–81	54	36	29	11	130	9	7	154
1990–91	74	55	33	14	176	19	10	241
2000–01	85	70	31	11	197	18	10	296
2010–11	96	87	43	18	244	32	33	342
2014–15	105	87	43	17	252	28	35	362
2015–16	104	94	38	16	252	25	30	352

नोटः कपास उत्पादन 170 किलोग्राम प्रति गांठ में है।
स्त्रोतः कृषि सांख्यिकी,2015, कृषि मंत्रालय; पीआरएस।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

रेखाचित्र 3: कृषि उत्पादन (मिलियन टन में)

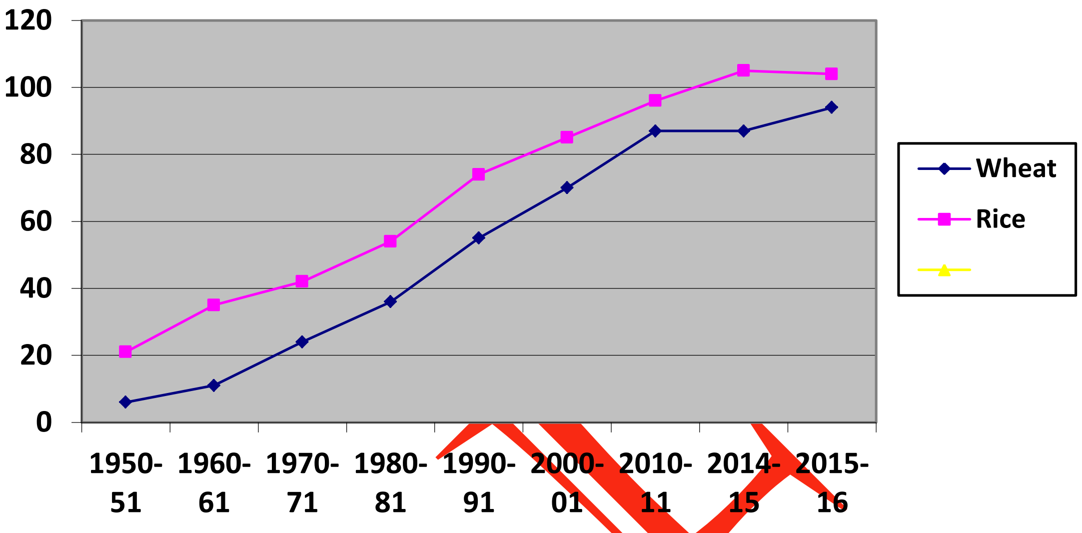

स्त्रोतः कृषि मंत्रालय; पीआरएस।

खाद्यान्नों का कुल उत्पादन 1950–51 में 51 मिलियन टन से बढ़कर 2015–16 में 252 मिलियन टन हो गया।

सुझाव – संक्षेप में यह कहा जा सकता है, कि भारतीय कृषि एकीकृत कार्यक्रमों को अपनाकर ही चुनौतियों का सामना कर सकती है। कृषि विस्तार, बाजार, साधनों की प्रभावी पूर्ति, सेवाएं या फिर कृषि सम्बन्धों जैसे पहलुओं में किसी एक या दो पर ही जोर देने से हमारे लक्ष्य की पूर्ति अधूरी रहेगी। कृषि से जुड़े विभिन्न वर्गों के कम उत्पादकता और निवेश व प्रयासों के उचित प्रतिफल की समस्याओं से निपटने के लिये आवश्यक है कि किसी विशिष्ट क्षेत्र में अपनाए गए विभिन्न उपायों पर जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, ध्यान दिया जाए और उपायों के कियान्वयन के लिये उचित प्रयास किया जाए। चुनौतियों का सामना सिर्फ अभियान चला कर नहीं किया जा सकता है। बल्कि किसानों को मद्दे नजर रखते हुए रास्ते में आने वाली बाधाओं का निरन्तर मूल्यांकन और नीतियों व कार्यक्रमों में उपयुक्त व अपेक्षित परिवर्तन करके किया जा सकता है। इन उपायों को निरन्तर चलने वाली प्रकिया के रुप में देखा जाना चाहिए जिसके तहत किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिये उठाए गए हर उपाय को मजबूती प्रदान करने की जरुरत है।

निष्कर्ष – सर्वाधिक तेज विकास दर के बावजूद विश्व के अन्य कई देशों की तरह ही भारत की अर्थव्यवस्था भी कई मोर्चो पर चुनौतियों का सामना कर रही है। कृषिगत, ग्रामीण अर्थव्यवस्था की चिंताजनक स्थिति, रोजगार सृजन की चुनौतियाँ और कई आर्थिक क्षेत्रों में कमजोर प्रदर्शन भारत की मुख्य समस्याएँ है आर्थिक वृद्धि की राह पर तेजी से आगे बढ़ते भारत के कदमों को कई बार ये तीनों ही चुनौतियाँ एक साथ या बारी–बारी से जकड़ लेती हैं। अर्थव्यवस्था, रोजगार और कृषि क्षेत्र तीनों ही एक–दूसरे से कुछ इस प्रकार से जुड़े हुए हैं कि किसी एक में लाया गया बदलाव औरों को प्रभावित करता है। किसी भी तंत्र द्वारा बेहतर कार्य निष्पादन क्षमता के लिये यह आवश्यक है कि इसके सभी अंग एक–दूसरे से समन्वित ढंग से जुड़े हों। जिस प्रकार मानव शरीर में हृदय, रक्त और धमनियों के मध्य आपसी समन्वय से शरीर के प्रत्येक कोने में रक्त का संचार होता है, ठीक उसी प्रकार से अर्थव्यवस्था, समाज और कृषि को एक साथ मिलाकर ही हम वास्तविक संवृद्धि पा सकते हैं। समस्या यह भी है कि आर्थिक विकास के इन घटकों का हम अलग–अलग अध्ययन करते हैं, अर्थशास्त्री केवल अर्थव्यवस्था की चिंता करता है और समाजशास्त्री सामाजिक चिंताओं की बात करता है। विकास की गति बनाए रखने के लिये प्रचलित तरीकों में बदलाव लाते हुए एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने की आवश्यकता है जो इन्हें एक–दूसरे के प्रति उत्तरदायी बना सके।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

- दत्त एवं महाजन, (2012), भारतीय अर्थव्यवस्था, 49वा संस्करण, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमि. नई दिल्ली
- कृषि विकास की समस्याएँ, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- त्रैमासिक शोध पत्रिका, भोपाल
- योजना पत्रिका, नई दिल्ली
- भारद्वाज रामदेव, भारत और अंतर्राष्ट्रीय संबंध, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2003, पृष्ठ–134
- भारत और अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध, हिन्दी ग्रंथ अकादमीः भोपाल, 2003, पृष्ठ–21
- डा. श्याम सुंदर सिंह : "विश्व व्यापार संगठन तथा भारतीय कृषि", कुरूक्षेत्र
- गमीण विकास मंत्रालय भारत सरकार नई दिल्ली दिसम्बर, 2003
- समाचार 10–16 दिसम्बर 2005, भारत सरकार नई दिल्ली मध्यप्रदेश में कृषि –

SRF

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

मध्यप्रदेश के विभिन्न जिलों में महिलाओं की स्थिति

डॉ. मंगलेश्वरी जोशी
निर्देशक, (प्राध्यापक) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रतलाम
चाँदनी जैन
शोधार्थी

मध्यप्रदेश अपने नाम के अनुरूप हीं हैं। देश के मध्य में स्थित होने कारण इसे हिन्दुस्थान का हृदय राज्य भी कहा जाता हैं। इसकी भौंगोलिक स्थिति 18^0–26^0 30′ उत्तर अंक्षाश एवं 74^0–80^0 30′ पूर्वी देशांतर 1 नवम्बर, 1956 को स्थापित मध्यप्रदेश भौगोलिक तौर पर देश का सबसे बड़ा राज्य था, लेकिन 44वीं वर्षगांठ पर वह बंट गया। 1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ़ राज्य बनने के साथ ही मध्यप्रदश दूसरी पायदान पर खिसक गया। यह जनसंख्या के पैमाने पर देश का सातवा राज्य है। 2011 की जनगणना के अनुसार मध्यप्रदेश की जनसंख्या 7 करोड़ 25 लाख 97 हजार 565 हो गई है। राज्य की कुल जनसंख्या में 3,76,12,900 पुरूष एवं 3,49,84,645 महिलाएॅ हैं। राज्य की कुल जनसंख्या देश की आबादी का 6 प्रतिशत है। जनसंख्या की दृष्टि से राज्य जनगणना 2001 के सांतवे स्थान से जनगणना 2011 में छठवें स्थान पर आ गया। पिछले एक दशक में मध्यप्रदेश की जनसंख्या वृद्धि दर 24.34 फीसदी से कम होकर 20.30 फीसदी हो गई हैं। इस तरह जनसंख्या वृद्धि में बीते एक दशक में 3.96 फीसदी की कमी दर्ज की गई।

मध्यप्रदेश में महिलाएॅ भले ही शिक्षा, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी रही हों, पर राज्य में उनका शासन भी रहा है। चार सौ साल पहले रानी अवंती बाई के शासन काल से लेकर इंदौर और भोपाल पर महिला शासकों ने राज किया। भोपाल में कोई डेढ़ सौ साल तक बेगमों ने राज किया, तो इंदौर में अहिल्या बाई होल्कर के सुशासन को आज भी याद किया जाता है। स्वतंत्रता के बाद 31 मार्च, 1989 को सरला ग्रेवाल राज्य की पहली महिला राज्यपाल बनीं। वे इस पद पर 6 फरवरी 1990 तक रहीं। 8 दिसम्बर 2003 को उमा भारती ने राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री के तौर पर शासन की बागड़ोर संभाली। वे इस पद पर 23 अगस्त 2004 तक रहीं। इसी तरह 1991 में श्रीमती निर्मला बुच राज्य की पहली महिला मुख्य सचिव बनीं वे 19 दिसम्बर 1991 से 1 जनवरी 1993 तक इस पद पर रहीं और वर्तमान में अभी मध्य प्रदेश की राज्यपाल आनंदी बेन पटेल 27 अप्रैल 2018 से अब तक राज्य में राज्यपाल के रूप में अपनी सेवायें दे रही हैं।

संविधान निर्माण में योगदान देने वाली सरोजनी नायडू का कहना था कि 'प्रत्येक नारी राष्ट्रीय आदर्शो की निर्मात्री हैं, मैं चाहती हूँ कि भारत की प्रत्येक नारी देश में जागृति का संचार कर देश को महान बनाने में अपना योगदान दें।........और हम संविधान में यह सुनिश्चित करेंगे कि जन्म के आधार पर सभी को न्याय और समानता का अधिकार मिले।'

देश के राजनीतिक परिदृश्य में प्रारम्भ से ही महिलाओं की उपस्थिति चाहे कम रही हो, परंतु आज यह भी सच हैं कि महिलाओं में राजनीतिक चेतना का विकास तेजी से हो रहा हैं, यह तथ्य मध्यप्रदेश की पिछली दो विधान सभाओं के चुनावों से परिलक्षित होता हैं।

मध्यप्रदेश में महिलाएँ भले ही शिक्षा, सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी रही हों, पर राज्य में उनका शासन भी रहा है। चार सौ साल पहले रानी अवंती बाई के शासन से लेकर इन्दौर और भोपाल पर बाई होल्कर के सुशासन को आज भी याद किया जाता है। स्वतंत्रता के बाद 31 मार्च, 1989 को सरला ग्रेवाल राज्य की पहली महिला राज्यपाल बनीं। वे इस पद पर 6 फरवरी 1990 तक रहीं। इसी तरह 1991 में श्रीमती निर्मला बुच राज्य की पहली महिला मुख्य सचिव बनीं वे 19 दिसंबर, 1991 से 1 जनवरी 1993 तक इस पद पर रही। 8 दिसम्बर, 2003 को उमा भारती ने राज्य की पहली महिला मुख्यमंत्री के तौर पर शासन की बागडोर संभाली। वे इस पद पर 23 अगस्त, 2004 तक रहीं। इन जानी–पहचानी महिलाओं के अलावा राज्य के विभिन्न प्रशासनिक पुलिस नगरीय व सरकारी संस्थाओं में महिलाओं ने महत्वपूर्ण पदों का दायित्व संभाला।

पूरे देश की तरह ही मध्यप्रदेश भी लिंगानुपात के बड़े अंतर की समस्या से जूझ रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल जनसंख्या 72597565 में स्त्रियों की आबादी 34984645 हैं। वहीं पुरूषों की आबादी 37612920 हैं। इस तरह देखा जाए तो राज्य में प्रति 1000 पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या 930 है। 2001 की जनगणना के समय यह अनुपात 919 था। इस तरह स्त्रियों की आबादी में 11 अंकों की बढ़ोत्तरी हुई है। राज्य का स्त्री–पुरूष अनुपात 1901 में 972 था, जो कि 1911 में घटकर 967, 1921 में 949, 1931 में 947, 1941 में 946, 1951 में 945, 1961 में 932 एवं 1971, 920 दर्ज किया गया हैं। इन दशकों में स्त्री–पुरूष अनुपात में निरंतर कमी हुई है। 1981 में इसमें आंशिक वृद्धि के साथ 921 दर्ज हुई परन्तु आगे 1991 में यह घटकर 912 दर्ज किया गया। 2001 में स्त्री पुरूष अनुपात बढ़कर 919 एवं तत्पश्चात् 2011 में आंशिक वृद्धि के साथ 930 दर्ज किया गया है।

जिला स्तर पर स्त्री–पुरूष का अनुपात देखने पर हम पाते हैं कि 1911 में 17 जिलों में स्त्री–पुरूष अनुपात 1000 से अधिक दर्ज किया गया था जो कि 1921 में घटकर 10 जिलों में तथा 1931 में घटकर 7 जिलों में रह गया था। यह प्रवृत्ति 1941 में भी देखने में आई जब 1000 से अधिक स्त्री–पुरूष अनुपात मात्र 5 जिलों तक सीमित हो गया। यह 1951 में 3 जिलों में, 1961 में 4 जिलों, 1971 में 1 जिले में, 1981 में 2 जिलों में, 1991 एवं 2001 में 1 जिले में दर्ज किया गया। जनगणना 2011 में 4 जिलों में 1000 से अधिक स्त्री–पुरूष अनपात दर्ज किया गया। जनगणना 2011 के जिलेवार स्त्री–पुरूष अनुपात के विश्लेषण करने पर यह सर्वाधिक बालाघाट (1021), तत्प चात् अलीराजपुर (1009), मण्डला (1005) डिण्डोरी (1004) तथा झाबुआ (989), तथा शिवपुरी (877) में न्यूनतम स्त्री–पुरूष अनुपात दर्ज किया गया है। जनगणना 2001 की तुलना में जनगणना 2011 में राज्य के 50 जिलों में से 47 जिलों में स्त्री–पुरूष अनुपात में वृद्धि हुई है तथा यह केवल 3 जिलों में कम हुआ हैं। रीवा जिले में 2001 में 941 की तुलना में 2011 में 930, बालाघाट में 1022, की तुलना में 1021 एवं सिंगरौली जिले में 922 की तुलना में 916 स्त्री पुरूष अनुपात दर्ज किया गया है।

राज्य के औसत अनुपात (930), से कम स्त्री–पुरूष अनुपात, सतना, जबलपुर, इन्दौर, सीहोर, नरसिंहपुर, सिंगरौली, दमोह, होशंगाबाद, भोपाल, गुना, पन्ना, श्योपुर, टीकमगढ़, अशोक नगर, रायसेन, विदिशा, सागर, छतरपुर, शिवपुरी, दतिया ग्वालियर, मुरैना एवं भिण्ड में दर्ज किया गया। इसके विपरीत राज्य के औसत स्त्री–पुरूष अनुपात (930) की तुलना में अधिक स्त्री–पुरूष अनुपात बालाघाट, अलीराजपुर, मण्डला, डिण्डोरी, झाबुआ, सिवनी, बड़वानी, अनुपपुर, रतलाम, बैतूल, शहडोल, मंदसौर, छिंदवाड़ा, खरगोन, (पश्चिमी निमाड़) धार, नीमच, राजगढ़, उज्जैन, उमरिया, सीधी, बुरहानपुर, कटनी, खण्डवा (पूर्व निमाड़) देवास, शाजापुर, एवं हरदा में दर्ज किया गया। रीवा जिले में स्त्री–पुरूष अनुपात, राज्य के स्त्रीपुरूष अनुपात के बराबर दर्ज किया गया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्रा, ''भारतीय राजनीति : समस्याएँ और समाधान'' आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 2008. पृ. सं. 45 46, 47
2. मिनाक्षी चतुर्वेदी व सीमा अग्रवाल, ''महिला नेतृत्व एवं राजनीतिक सहभागिता'', आविश्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2010 पृ. सं. 121
3. डॉ. एस.एम. जोशी, डॉ. एस.एस. बग्गा एवं प्रो. जयदेव सिंहपाल, ''राजनीति विज्ञान'', श्री सुनिता प्रकाशन इंदौर, 1986, पृ. सं. 85
4. डॉ. आर.पी.तिवारी एवं डॉ. पी. शुक्ला, ''भारतीय नारी : वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान'', ए. पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरशन दरियागंज, नई दिल्ली 110002, पृ. सं. 79
5. डॉ. शैलेन्द्र मौर्य, ''महिला राजनैतिक नेतृत्व एवं महिला विकास'', पोइन्टर्स पब्लिशर्स, जयपुर 302003, 2011, पृ. सं. 22

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

73 वें संविधान में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका

डॉ. राधिकेश जोशी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, शासकीय महाविद्यालय, सतवास जिला देवास

स्वतंत्रता के पश्चात् जनजातीय समाज ने संवैधानिक भावनाओं के अनुरूप शासन द्वारा निरूपित पंचायत राज व्यवस्था में अपनी व्यापक सहभागिता का निर्वहन किया है। 73 वें पंचायत राज संवैधानिक अधिनियम एवं इसके अनुपालन में मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रस्थापित पंचायत राज अधिनियम 1993 के अंतर्गत जनजातीय महिला प्रतिनिधियों को एक विशिष्ट स्थिति प्रदान करने का प्रयास किया गया है अर्थात् जनजातीय क्षेत्रों में पंचायत के तीनों स्तरों में जनसंख्या के अनुपात में जनजातीय प्रतिनिधि पदस्थ हैं। जनजातीय क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया आदिवासी समाज को एक ओर छोड़ती हुई अग्रसर हो रही है। वह उनकी नई चुनौतियों से असम्बद्ध है। अधिकांश आदिवासी इस तीव्र परिवर्तन का लाभ उठाने के लिए तैयार नहीं है क्योंकि नई व्यवस्था को समझने के लिए आव यक शिक्षा से वंचित रहे हैं।

जनजातीय समाज स्वाभिमानी होता है। उसके सदस्य उच्च कौशल से युक्त होते है और ये कौशल उनकी अपनी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में भी सार्थक होते है। विकास की परिवर्तित व्यवस्था के व्योम–विहारी नियंता जब आदिवासी परिदृष्य को सातवें आसमान से देखते है तो वे ऐसे 'अज्ञान एवं असभ्य' जैसे विशेषण देने में भी नहीं हिचकते जबकि उन्हें गर्व है, औसत व्यक्ति का ''स्वकौशल'' लगभग नगण्य होता है।

व्यस्क मताधिकारी के माध्यम से भारतीय संविधान में राजनीतिक समानता का वचन दिया गया है तथा अनुच्छेद 15 अन्य बातों के साथ–साथ लिंगभेद के आधार पर भी किसी प्रकार का अंतर करने का निषेध करता है। महिलाओं के लिए इस प्रकार की राजनैतिक समानता भारत जैसे रूढ़िवादी देश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानदंडों में से हटकर नहीं है, अपितु इस समय के सर्वाधिक प्रगतिशील देशों के राजनीतिक उत्थान के संदर्भ में अनोखी है। समाजवादी देशों को छोड़कर विश्व के किसी देश ने वास्तव में महिलाओं की समानता को स्वीकार नहीं किया था।

महिलाओं के लिए विभिन्न निकायों की कुछ सीटों के आरक्षण से स्त्रियों और राजनीतिक दलों दोनो को प्रोत्साहन मिला है। सरकार की विभिन्न इकाईयों से आधी जनसंख्या के प्रति अधिक न्यायसंगत व्यवहार की आशा की गई है। यदि इन निकायों में अधिक संख्या में महिलाऐं पहुँचती है तो इसका परिणाम यह हुआ है कि वे अपनी अल्पसंख्यता के कारण वर्तमान हीनभाव को जल्दी दूर करने में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने में अधिक स्वतंत्रता का अनुभव करती हैं।

सरकार ने पंचायत चुनाव में इनके लिए 33 प्रतिशत सीट आरक्षित की है, लेकिन इस आरक्षण का भी कोई ज्यादा लाभ महिलाओं को नही मिला है, इसके संबंध में एक आयोग 1990 में बना जिसका नाम महिला आयोग है। आयोग ने महिलाओं के अधिकारों के बारे में प्रतिवर्ष संस्तुतियाँ सरकार के समक्ष रखी, लेकिन वे सभी सरकारी फाइलों में ही दबी रह गई, जिससे कागजों में ही इसका निर्वाह किया जाता रहा है।

संपूर्ण भारत वर्ष में समान रूप से एक जैसी पंचायत राज व्यवस्था लागू करने के लिए लोकसभा में तिहत्तरवां संविधान संशोधित पारित हुआ। इस पर देश के आधे से अधिक विधान मंडलों द्वारा अनुमोदन प्राप्त होने पर महामहिम राष्ट्रपति जी ने दिनांक 20 अप्रैल 1993 को राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित करवायी जिसके अनुसार एक वर्ष की समय सीमा में 73 वें संविधान संशोधन के अनुरूप राज्यों से अपेक्षा की गई कि वे अपने–अपने पंचायत राज कानून बना ले। संविधान के 73 वें संविधान संशोधन के अनुसार पंचायत राज व्यवस्था कानून के रूप में पूरे देश में 24 अप्रैल 1994 से एक साथ लागू हो गई।

पंचायत राज संबंधी संविधान (तिहत्तरवां संशोधन) संशोधन अधिनियम 1992 के संदर्भ में नए परिवर्तनों का विशेष उल्लेख किया गया है। इस संबंध में महत्वपूर्ण बात है कि पहले ग्राम पंचायत चार वार्डो में बांटा गया है और हर वार्ड से दो सदस्य सीधे निर्वाचित करने का प्रावधान किया गया है। इसके साथ ही प्रत्येक पंचायत में 30 प्रतिशत स्थान महिला एवं

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्यो के लिए जनसंख्या के आधार पर आरक्षित किये गये हैं। मुखिया का निर्वाचन संपूर्ण पंचायत द्वारा होगा और मुखिया सहित कार्यपालिका के सदस्यों की कुल संख्या 17 होगी।

महिलाओं की राजनीतिक एवं सत्ता में भागीदारी का प्रयास निरंतर किया जाता रहा है। प्रजातांत्रिक देश में आबादी के इस आधे भाग की भागीदारी को सुनिश्चित करने के भी प्रयास किये जा रहे हैं। इस दिशा में उस समय ठोस कदम उठाया गया। जब 1992 में 73 वें संविधान संशोधन विधेयक के द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए तिहाई स्थान आरक्षित कर दिये गये।

73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को न केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए बल्कि वित्तीय संसाधनों की गांरटी भी प्राप्त हुई है जिससे ग्रामीण विकास में सहायता प्राप्त हो सकी है। इस तरह नया सशोधित पंचायत राज कानून पूर्णतः लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, चुनावों की वैधानिक अनिवार्यता, आनुपातिक प्रतिनिधित्व, उर्ध्वगामी नियोजन प्रक्रिया के साथ समायोजन की विशेषता रखता है। 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा दिया जाना लोकतान्त्रिक प्रक्रिया के द्वारा शक्तियों का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण करने का प्रयत्न है। यह योजना ग्रामीण जनता को अपने मामलों का प्रबंध करने की जिम्मेदारी देने की दिशा में साहसिक कदम है। ग्रामीण जनता को लोकतंत्र में सक्रिय सहभागिता प्रदान करना महत्वपूर्ण कार्य है। यह कदम उसी पुरानी व्यवस्था की तुलना में अधिक व्यापक अर्थ में प्रभावकारी है। जिसके अंतर्गत जनता से विकास योजनाओं को अधिक सहयोग देने की आशा की जाती थी।

देश की अधिकांश जनसंख्या का निवास गाँवों से है। जिससे सत्ता व व्यवस्था के साथ उनके निकट संबंध स्थापित नहीं होते – प्रस्थापित व्यवस्था वास्तविक लोकतंत्र नही हो सकती। सत्ता के विकेन्द्रीकरण से केन्द्र निर्बल नहीं बल्कि अधिक सशक्त होगा। पंचायत राज के माध्यम से सत्ता के विकेन्द्रीकरण के कारण–राज्य के साथ जब सामान्य जन की सक्रियता जुड़ेगी तो उसकी सजीवता व सक्षमता मे वृद्धि होगी। ग्रामीण जनजीवन की राजनीतिक चेतना का प्रस्फुटन होगा, जो संपूर्ण राष्ट्र को शक्ति प्रतिभा व बल प्रदान करेगा। भारत में शक्तिशाली केन्द्र के साथ यह भी आवश्यक है कि विकास योजनाओं के साथ स्थानीय हितों व दृष्टिकोणों को जोड़ा जाये। कुछ वर्षो पूर्व गांव के लोगों में अपने सूखे कुओं और धूल से भरी पगडंडियों को देखकर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती थी किंतु आज ये सब बातें गांव में चर्चित विषय है। गांव वासियों में यह प्रवृत्ति पनपने लगी है कि उन्हें अपनी स्थिति से जनता में चेतना जागृत करती है और जो समस्याऐं उनसे गहन संबंध रखती हैं उससे ग्रामीण जनता की रूचि उसके प्रति जागृत करती है, साथ ही यह भावना जागृत करती है कि देश की प्रशासकीय मशीनरी से वे सक्रिय रूप से जुड़े हुए है।

पंचायतीराज संस्थाओं के माध्यम से ही संपर्क सूत्र की राजनीति का विकास हुआ है और गांव जिलों व राज्यों के मुख्यालयों से जुड़ने लगे। पिछड़ी जातियों में नवीन चेतना का विकास हुआ। उच्च जातियों की स्थिति में ह्रास हुआ और निम्न व मध्यमवर्गीय जातियाँ भी राजनीति में भागीदारी अदा करने लगी। 73 वें संविधान संशोधन के द्वारा ग्राम पंचायतों में अनुसूचित जातियों व जनजातियों को राज्य की जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण के प्रावधान से इन जनजातियों की राजनीतिक सहभागिता में निश्चय रूप से ही वृद्धि होगी।

73 वें संविधान संशोधन का अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू राजनीतिक सत्ता व प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता को प्राप्त करने के संदर्भ में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थानों में भी एक तिहाई स्थान इन जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित रखना प्रशंसनीय है। शिक्षा व जागरूकता के अभाव के कारण महिलाऐं पुरूषों में पिछड़ी रही है। भारतीय संविधान में महिलाओं व पुरूषों को समान स्थान प्रदान किया गया है। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे पुरूषों के समान स्थान की अधिकारी है। पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ने से उनमें अधिकारों के प्रति जागरूकता तथा आत्मविश्वास में वृद्धि होगी एवं महिलाओं के उत्पीड़न शोषण में कमी आयेगी। वर्तमान समय में अनेक लोगों की धारणा है कि पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण दिया जाना उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ हैं – क्योंकि वे पुरूष पराधीनता की इतनी अभ्यस्त है कि पति की इच्छा से ही कोई कार्य कर सकती है। यह निराशा केवल जल्दबाजी की परिचायक है। ग्रामीण महिलाओं की

राजनीति में भागीदारी की यह प्रारम्भिक एवं संक्रमणकालीन स्थिति हैं – वह समय अब दूर नहीं है जब महिलायें स्वयं अपने दायित्व को पूरी तरह समझकर स्वतंत्र रूप से कार्य करेगी। पंचायतों की महिला प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण हेतु आयोजित सम्मेलनों में महिलाओं की उपस्थिति व रूचि इसके प्रमाण है।

संदर्भ सूची :–

1. कुंवरसिंह तिलाश – ग्रामीण समाजशास्त्र, पृष्ठ 272.
2. मथुराप्रसाद दुबे – पंचायतीराज समिति प्रतिवेदन, 1972, पृष्ठ 32.
3. कुंवरसिंह तिलाश – ग्रामीण समाजशास्त्र, पृष्ठ 272.
4. विनायक शंकर चरारे – प्रजातांत्रिक विकेन्द्रकीरण, पृष्ठ 5.
5. मुकर्जी राधाकुमुद, लोकल गवर्नमेंट इन एनसिएण्ट इंडिया, ऑक्सफोर्ड क्लेरेण्डन प्रेस, 1920, पृष्ठ –2

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

बाल अपराध के प्रमुख कारण

डॉ. विश्वास चौहान
निर्देशक, (सहायक प्राध्यापक) शासकीय राज्य स्तरीय विधि महाविद्यालय, भोपाल
गीता परतती
शोद्यार्थी

बाल अपराध जन्म से ही अपराधिकता के लक्षणों से युक्त होता है जिन्हे उनकी शारीरिक बनावट से जाना जा सकता है। वह इस रूप में जन्म ही लेता है बनाया नहीं जाता है। अपराधी की कुछ विशेष आकृतियां होती है तथा इन्हीं विशेषताओं के कारण वह सामान्य मनुष्यों से भिन्न होता है सामान्यतः अपराधी व्यक्तियों को मुखाकृति एवं कपालकृति में विकृतियाँ रहती है। गाल धसे हुए होते है। कपाल अस्थि उठी हुई होती है। आंखे वक्र होती है। भौंहे घनी, नाक टेड़ी, कान बड़े–बड़े, ठोड़ी निकली हुई या अन्दर की ओर धसी हुई, दाढ़ी विखरी हुई तथा बांहे लम्बी होती है। अपराधी व्यक्तियों का नैतिक विकास नहीं होता है। इसमें अंहकार जल्दी ही पनप जाता है। तथा दया नाम की चीज इनके पास नहीं होती है। तथा इन्हें किसी का दर्द नहीं होता है। तथा इनमें मृत्यु के प्रति भी किसी प्रकार की संवेदना जागृत नहीं होती है। इनकी पद्धति आदि मानव की होती है। तथा इनमें पशु तथा आदिमानव जाति के तत्व इनमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान होते है। कुछ मनुष्य मानसिक विक्षिप्तता तथा पागलपन के कारण भी स्वभावता ही अपराधी प्रवृत्ति के होते है। मानसिक न्यूनता के कारण भी मनुष्य अपने आप को समाज में समायोजित नहीं कर पाता है। तथा अपराध कर बैठता है। लेवी तथा बोनस्टीन के अनुसार भी अपराधी बच्चों के स्पाइनल फ्लूइड में अन्तर पाया जाता है। कई बच्चों की मौलिक आवश्यकतायें पूरी नहीं होने के कारण भी बच्चों में असन्तुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। तथा वे बुरे कार्यो से अपनी अपूर्ण इच्छाओं को पूरा करने का प्रयास करते हैं। जिससे वे बाल–अपराधी बन जाते है।[3]

मनोवैज्ञानिक कारण :– मनोवैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक कारणों को अपराध एवं बाल–अपराध का प्रमुख कारण मानते है। मनोवैज्ञानिक कारणों के अन्तर्गत, मानसिक हीनता तथा मनोवैज्ञानिक तत्वो को सम्मिलित किया गया है। मनोवैज्ञानिक तत्वों को निम्न रूप में अपराधिकता का कारण माना गया है। अधिकांश बाल–अपराधियों में बुद्धि की कमी होती है। चूंकि बुद्धिहीन बालक पर्याप्त बुद्धि के अभाव में कानून उल्लंघन के परिणाम को समझने में असमर्थ होते है। इस कारण वह आपराधिक कार्य करने से अपने आप को रोक नहीं पाते है। अतः बुद्धिहीन बालकों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण करना कठिन ही नहीं असम्भव कार्य लगता हैं और उन्हें जो अच्छा लगता है। अर्थात वह अपने इच्छा के अनुकूल कार्य करते रहते है। चाहे उस कार्य से कानून का उल्लंघन ही क्यों न होता हो। कभी–कभी मन्दबुद्धि या बुद्धिहीन बालकों से चालाक प्रवृत्ति के लोग विभिन्न प्रकार के आपराधिक कार्य करवाते है। तथा उन्हें अपराधोन्मुखी बना देते है। मानसिक हीनता मन्दबुद्धि के कारण आती है। तथा इसे जन्मजात भी माना जाता है। कभी–कभी मानसिक चोट के कारण भी ऐसा हो जाता है। मानसिक हीनता के कारण व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होते है। और उनकी चिन्तन शक्ति भी ठीक तरह से काम नहीं करती है। इस प्रकार के बच्चें स्कूलों में निर्देशों का पालन करने तथा शिक्षा को उचित रूप में ग्रहण करने में असमर्थ होते है। गिलिन एण्ड गिलिन, बर्ट, शैल्डन एवं ग्लूक आदि विद्वानों ने मानसिक हीनता को बाल अपराध का मुख्य कारण माना है। मानसिक असमर्थता संवेगात्मक संघर्ष को भी जन्म देती है। जिससे बालक अपराध करने के लिए प्रेरित होता है। इस सम्बन्ध में हीले एवं ब्रोनर ने 105 अपराधी बच्चों का तथा 105 साधारण बच्चों का अध्ययन करके यह पता लगाया कि बाल–अपराध के कारणों में विदेशी माता–पिता टूटे हुए घर, अनैतिक बच्चे, और कई कारण है। उनमें 39 बच्चे बड़ें घरों के थे, जिनका अपराधी बनने का कारण संवेगात्मक संघर्ष था तथा उनमें से 17 बच्चों का अपराधी बनने का कारण मानसिक असुरक्षा थी। अधिकांश बाल–अपराधियों के साथ संवेगात्मक संघर्ष किसी न किसी रूप में अवश्य मौजूद होता है। इसमें इच्छा के विरूद्ध स्कूल जाना, अपने साथियों के साथ मतभेद होना, परिवार में बच्चों के साथ भेदभाव आदि कारण हो सकते है।

SRF

भौगोलिक कारण :– अपराध शास्त्रियों का एक समुदाय ऐसा भी है। जो अपराध तथा बाल अपराध के उत्तरदायी कारणों को भौगोलिक परिस्थितियों में ढूंढता है। क्वेटलेट, लोम्ब्रोसो, फेरी, न्यूरो, बैग्नर, मोरसेली, डेक्सटर, वानवायर आदि अनेक यूरोपीय लेखकों ने कुछ यूरोपीय तथा गैर यूरोपीय देशों में होने वाले अपराधों एवं बाल–अपराधों में एक निश्चित मौसम के तौर पर उतार–चढ़ाव पाया है इस समुदाय ने न केवल सामान्य अपराध की दरों के वितरण का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। बल्कि उन्होनें बाल–अपराध तथा वृत्तिमूलक अपराधों का एक विशिष्ट रूप से अध्ययन किया है। इस प्रकार सन् 1830 से 1880 ई. तक इन अध्ययन परिणामों को अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान माना जाता रहा जबकि अपराधशास्त्री सिद्धान्त का कोई स्वरूप विकसित नहीं हो पाया था। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है। कि वर्तमान समय में इस सम्प्रदाय का कोई अस्तित्व नहीं है। वास्तव में इस सम्प्रदाय के समर्थक आज भी है। और ये आज भी अपराध एवं बाल अपराध के कारण भौगोलिक परिस्थितियों में ढूंढने का प्रयास करते है। अनेक अपराधशास्त्रियों ने भौगोलिक परिस्थितियों जैसे :– जलवायु, तापमान एवं ऋतुओं आदि तथा विभिन्न प्रकार के अपराधों के बीच एक सह–सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार सम्पत्ति और व्यक्तियों के विरूद्ध किये गये अपराधों में एक विशेष मौसमी परिवर्तन देखा जाता है। जो निर्विवाद रूप से अपराधों पर जलवायु के प्रभाव को सूचित करता है। इस विषय पर इतना ही कहना पर्याप्त है। कि विभिन्न देशों और एक ही देश के स्थानो में विभिन्न प्रकार के अपराधों की संख्या उसके हेर–फेर, गांवों और नगरो, विभिन्न आर्थिक, पेशेवर, धार्मिक, प्रजातीय, सांस्कृतिक या राष्ट्रीय समूहों में इतने अधिक हैं कि उन्हें हम भौगोलिक परिस्थितियों के प्रभाव द्वारा नहीं समझा सकते। वास्तव में अनेक भौगोलिक कारण ही अपराध की दशा को निर्धारित करते है। हमारे देश में ही अगर देखा जाए, तो विभिन्न राज्यों में, भिन्न–भिन्न प्रकार के अपराध पाये जाते है। कुछ राज्यों में कुछ जिले ऐसे है। कि उनके अपराधिकता के आधार पर ही लोग वहाँ आने–जाने से डरते है। जैसे–भिण्ड, मुरैना आदि जिलो में अपराधिकता का प्रतिशत इतना अधिक है। कि सरकारी अधिकारी भी वहाँ जाने से कतराते है।

पारिवारिक कारण :– परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला मानी जाती बच्चा सबसे पहले अगर कुछ सीखता है। तो वह अपने माता–पिता तथा परिवार से ही सीखता है। बच्चे के बिगड़ने में परिवार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्योंकि बच्चों पर बड़ों का काफी प्रभाव होता है। परिवार में अनेक ऐसे कारण हो सकते है। जैसे बच्चे की ठीक से देख–रेख न करना, बच्चे को उसके अनुकूल वातावरण में न रखना, परिवार का उसके प्रति शून्य रहना इत्यादि कारण है। जो कि बच्चे पर बुरा प्रभाव डालते है। ऐसे परिवार में बच्चों को सुरक्षा नहीं मिलती तथा वह अपराधी बन जाते है। मानव सभ्यता के विकास से वर्तमान वैज्ञानिक युग तक परिवार समाज की प्रथम ईकाई के रूप में माना जाता रहा है। मानव जंगली जीवन को त्याग कर प्रथम बार पारिवारिक ईकाई के रूप में जीवन यापन प्रारम्भ किया था, परिवारवाद, समाज, समाज के बाद राज्य और वर्तमान में देश विश्व बन्धुत्व की भावना में जीवन यापन कर रहा है। परिवार का बालक के साथ जन्म से ही सम्बन्ध रहता है। जिसका अधिकार सम्पूर्ण जीवन के कार्यकलापों पर होता है। इनका अधिकार व नियन्त्रण सम्पूर्ण जीवन में रहता है। केवल क्षेत्र व सीमायें बदल जाती है। बालक व्यवहारिक जीवन व जीने के तरीके परिवार से ही सीखता है। वह बोलने खाने, रहने शिक्षा से लेकर समाज के लिए व राज्य के लिए कर्तव्य व अधिकारों का ज्ञान भी उसे परिवार से होता है। इसलिए परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला मानी जाती है। सबसे पहले बच्चा अगर कुछ सीखता है। तो वह परिवार से सीखता है। किसी बालक को किस प्रकार का जीवन यापन करना है। उस पर सीधा प्रभाव परिवार का होता है। क्योंकि परिवार से जीवन यापन करने का तरीका सीखता है। परिवार से यह अपेक्षा की जाती है। कि वह अपने बालकों को इस प्रकार प्रशिक्षत करे कि वह अपराधी न बने। हालांकि प्रत्येक व्यक्ति अपने बालक को एक सभ्य नागरिक बनाने का लिए प्रयासरत रहता है। तथा उसी प्रकार से उनका पालन–पोषण तथा शिक्षा आदि देता है।

घर की भौतिक स्थिति :– सामान्य रूप से एक क्षेत्र के अनेक मकानों की भौतिक स्थिति रचना तथा उपभोग एवं उपयोग की दृष्टि से समानता नहीं होती है। ऐसे घर जिनकी हालत गन्दी रहती है, तथा वह टूटे–फूटे तथा गिरने की हालत में होते है। ऐसे घरों में अपराधी बालक रहते है। गुलुक ने अपने अध्ययन में ऐसे पालकों का अध्ययन किया जिनके बालक अपराधी होते है। उन्होंने पाया कि इनके घरों में पाखाना, स्नानगृह तथा पानी के नलों की कमी होती है। या फिर होती नहीं है। इनके घर अव्यवस्थित ढंग से बने होते है। तथा उनका

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

रख–रखाव भी उचित नहीं होता है। जिनके आवागमन के मार्ग अवरुद्व या बहुत सकरे होते है। इन घरों में आधुनिक सुविधाओं की कमी होती है। इस कारण बच्चों को अपनी मौजमस्ती या आनन्द की जिन चीजो की जरूरत होती है। इन्हें सामान्यतः वह बाहर से प्राप्त करते है। इस कथन की पुष्टि पूर्ण रूप से नहीं होती है। कोई भी माता–पिता समान रूप से सभी सुख–सुविधायें प्रदान नहीं करा सकता है। जहाँ रहने के लिए घरों की कमी हो वहाँ सुविधा की बात सोचना मुश्किल है। किसी भी घर मे पर्याप्त आरामदायक तथा सुविधापूर्ण उपभोग की वस्तुओं की कुछ न कुछ कमी तो होती है। गाँव या शहरी क्षेत्रों में भी इन सुविधाओं का अभाव प्रायः रहता है। वह बाहर सौंच आदि के लिए जाते हैं तथा बाहर कुओं तथा नलकूपों से पानी भरते हैं यहाँ तक कि बाहर नहाते भी है। लाइट, टेलीविजन तथा रेडियों आदि की भी कमी होती है। कुछ परिवारों के पास तो पहनने के कपड़े, खाना बनाने के बर्तन तथा खाने की भी उचित व्यवस्था नहीं होती है। लेकिन फिर भी ऐसे परिवारों के बालक अपराधी नहीं होते है। भारतीय परिवारों में इन सुविधाओं का 80 प्रतिशत अभाव रहता है। कुछ शहरी क्षेत्रों को या धनी, सम्पन्न परिवारों को छोड़कर सामान्य रूप से यह अभाव देखा गया है।

नष्ट परिवार या टूटे परिवार :– बाल अपराध के उत्पन्न होने में टूटे परिवार को सबसे ज्यादा उत्तरदायी कारण माना जाता है। पाश्चात्य अपराधशास्त्र में इस अवधारणा का सबसे अधिक वर्णन किया गया है। कुछ अपराध शास्त्रियों में इसके स्वरूप को लेकर काफी मतभेद है। फिर भी नष्ट या टूटे हुए परिवार से तात्पर्य ऐसे परिवार से हैं जो माता–पिता में से किसी एक की मृत्यु या दोनों में से किसी एक की लम्बे समय तक अनुपस्थिति अथवा विवाह विच्छेद, पलायन या परित्याग आदि के कारण नष्ट हो जाते है अथवा विमाता या मात्र वैवाहिक सूत्रों के आधार पर माता–पिता, पुत्र–पुत्री के कृत्रिम सम्बन्धों से स्थापित होता है। इसके परिणामस्वरूप सभी टूटे परिवारों की एक जैसी ही भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति नहीं हो सकती है। यह भी हो सकता है। कि माता–पिता की मृत्यु मात्र से ही परिवार नष्ट न हो जाए या बिल्कुल ही असंतुलित हो जाए, यह भी हो सकता है। कि ऐसे परिवार की संगति इस अवस्था में भी बनी रह जाए। भौतिक रूप से नष्ट परिवार वह होते है। जिनमें माता–पिता में से किसी एक का घर पर न रहना अथवा दोनों का न होना भी बाल–अपराध के लिए जिम्मेदार है। तलाक घर या लम्बी बीमारी तथा मृत्यु बच्चों पर बुरा असर डालती है। सौतेली माता का व्यवहार भी बच्चों को अपराधी बना सकता है। टूटे या नष्ट परिवारों में बच्चों का समाज से सामंजस्य ठीक से नहीं हो पाता है। तथा बच्चें माता–पिता से वह प्यार व स्नेह नहीं पाते है। जो उन्हें मिलना चाहिए। शशाँ एवं मैक्के ने टूटे परिवार को बाल–अपराध का सबसे प्रमुख कारण माना है। मौड़ ए. मैरिल ने 800 बाल–अपराधियों की पारिवारिक स्थिति का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि 50.7 प्रतिशत अपराधी टूटे परिवार के थे। शैल्डन एवं ग्लूक ने भी अपने अध्ययन में 60.4 प्रति ात परिवार को नष्ट या टूटे परिवार से सम्बन्धित पाया। शिडलर, हीले, ब्रोनर, नेई आदि विद्वानों ने भी इसी प्रकार के निष्कर्ष निकाले हैं इन सब अध्ययनों से हमें पता चलता है। कि नष्ट परिवारों के बच्चों को अपराधी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका है। मनोवैज्ञानिक रूप से नष्ट परिवार वे परिवार हैं जहाँ माता–पिता तथा बच्चें एक साथ तो रहते है।

पारिवारिक अपराधिकता : कई परिवार ऐसे होते है। जहाँ पर अपराध को प्रोत्साहन दिया जाता है। माता–पिता स्वयं बच्चों की बेईमानी से पैसा लेना, चोरी करना, जुआ खेलना तथा शोषण करने का प्रशिक्षण देते है। ऐसे परिवार में बच्चे जल्दी ही अपराधी बन जाते है। क्योंकि बच्चों में अनुकरण करने की तीव्र शक्ति होती है। तथा वे अच्छी बुरी बातों का अनुकरण कर लेते है। जब बालक परिवार के सदस्यों को अपराधी व्यवहार करता देखता है। तो वह भी अपनाने का प्रयास करने लगता है। कुछ समय पूर्व बाल–अपराध के कारण जानने के लिए सांख्यिकी विधि का उपयोग किया गया। इस विधि का उद्देश्य घर की कुछ विशेष स्थितियों का अध्ययन करना जिनके कारण से बालक अपराध करते है। उन्होनें घर की सम्पूर्ण स्थिति तथा घरों के पूर्ण प्रभाव छोड़कर विशेष कारणों का अध्ययन किया। परिवार के आपराधिक व्यवहार का प्रभाव प्रत्यक्ष परिणामों के अपराध के रूप में प्रकट होता है।

पारिवारिक अनुशासन तथा प्रशिक्षण :– पारिवारिक अनुशासन तथा प्रशिक्षण का बाल–अपराधिता पर गहरा प्रभाव पडता है। यदि बालकों पर उचित रूप से तथा नियमित रूप से अनुशासन बना रहता है। तो बालक अपराधिता की ओर अग्रसर नहीं हो पाते है। किन्तु यदि परिवार का बालकों पर अनुशासन कम होता है। अथवा अनुशासन दोषपूर्ण होता है। तो ऐसे परिवार में बालक

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

अपराध की ओर अग्रसर हो जाते है। इसी प्रकार यदि परिवार का बालकों पर अधिक कठोर अनुशासन या अनुशासन की कमी से बालक अपराध की ओर अग्रसर हो जाते है। अधिक कठोर अनुशासन के कारण बालक अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आपराधिक कार्य करने लगते है। इसी प्रकार अनुशासन की कमी होने पर भी बालक स्वतन्त्र रूप से अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है। लेकिन सामाजिक व व्यवहारिक जीवन में ऐसा करना सम्भव नहीं है। इस कारण वह अपनी आवश्यकताओं व इच्छाओं की पूर्ति करने हेतु अपराधिक कार्य करने लगते है। तथा अपराधिकता की ओर अग्रसर हो जाते है। सिरिल बर्ट ने अत्यन्त कठोर अनुशासन अथवा उदार अनुशासन दोनों को ही दोषपूर्ण माना है। ग्लूक तथा ग्लूक ने यह प्रमाणित किया है। कि कठोर अनुशासन विशेषतः माता का बालकों में विद्रोहशीलता पैदा करता है। और उदारता उनमें एकान्तीकरण तथा आक्रोश उत्पन्न करती है। मैकार्डो के विश्लेषण में भी इस अनुशासन के कई भेद उभरे है। प्यार से आप्लावित, दण्डित या क्षीण अनुशासन का प्रभाव बालकों के व्यवहार पर सघन रूप से पड़ता हैं अधिक प्यार तथा अधिक दण्ड से भी आपराधिकता प्रकट एवं प्रगाढ होती है। बर्ट ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपराधी तथा गैर अपराधी बालकों के बीच अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर परिवार के अनुशासन का है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अडोल्फ क्वेटिलेट, सांख्यिकीविद बेल्जियम
2. अहमद सिद्धिकी– अपराध शास्त्र
3. एम.एस.चौहान– अपराध शास्त्र एवं आपराधिक प्रशासन
4. सर लियोन रेडझिनोविझ एण्ड जॉन किंग, दि ग्रोथ ऑफ क्राइम (1977)
5. अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, ना.वि.परायजें, पृष्ठ 428
6. किशोर न्याय (बालकों की देख–रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 2 (ठ)
7. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2000 की धारा 2(क)
8. टेपल डब्ल्यू. पॉल, जुबेनाइनाइल, डेलीववेन्सी, पृष्ठ 170

ISSN : 2394-3580 **Swadeshi Research Foundation** Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

महाभारत काल में राजा का स्वरूप

मंजू अवस्थी
निर्देशक, सहायक प्राध्यापक शास. एम.जे.एस. महाविद्यालय भिण्ड (म.प्र.)
ज्योति शर्मा
शोधार्थी, एम.ए. इतिहास

मनु और महाभारतकार मानते हैं कि राजा का पद दैवीय है, अर्थात् ईश्वर से प्राप्त है, किंतु वह समस्त राज्य शक्ति का केन्द्र होता है। दण्ड का प्रयोग करने के लिए जिस व्यक्ति का निर्माण किया गया है। मनु ने उसे राजा की संज्ञा दी है। वह व्यक्ति प्रजा रंजन करने वाला होता है। अतः राजा का पद राजपद कहलाता है। वह दण्ड धारण करता है। उसका सम्यक् प्रयोग करके वह राज्य की स्थापना करता है। मनु ने यह भी कहा है कि राजा धर्म का संस्थापक होता है, किंतु वह स्वतंत्र नही है, वह राजधर्म के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य है।

महाभारतकार ने राजा का पद शासन प्रबध की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ माना है, किंतु राजा के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर प्रजा की अनुमति आवश्यक थी। राजा का चुनाव और अभिषेक करने की पद्धतियाँ जनतंत्र और राजतंत्र में भिन्न–भिन्न थी।

प्राचीन भारतीय जनतंत्र में राजपद पर राजा का चुनाव और अभिषेक राज्य सभा द्वारा निर्वाचित व्यक्ति का होता था। पाणिनी कालीन भारत में भी गणराज्य और संघराज्य में राजा का चुनाव बहुमत के आधार पर होता था, जैसा कि 'बहुगुण गण–संघस्य तिथुक' से भी प्रतीत होता है कि गण और संघ राज्यों में बहुमत से कार्य होता था। इसी प्रकार से कालान्तर में राजा का चुनाव भी बहुमत के आधार पर होना सम्भव था। इसके विपरीत प्राचीन भारत में जहॉ राजतंत्र शासन की प्रणाली प्रचलित थी, वहॉ राजपद के लिए राजा का चुनाव व्यक्तिगत् योग्यता और अभिजात गणों के आधार पर वंशानुक्रम से ही होता था। अतः इस सिद्वांत के अनुसार राजपद के लिए सर्वप्रथम पूर्व राजा की संतानों में योग्यतम व्यक्ति खोजना उचित जान पड़ता है। महाभारत काल में राजपद से संबंधित परम्परा के अंतर्गत राजा के ज्येष्ठ, मध्यम अथवा कनिष्ठ पुत्रों में से एक योग्य पुत्र को राजपद मिलने का प्रमाण महाभारत में भी मिलते है। राजा प्रतीप की इच्छा के विरूद्व, उसके तीसरे पुत्र शान्तुन को राजा बनाया गया था।

महाभारत से पुनः इस बात की पुष्टि होती है कि उस युग में राज्याभिषेक के बिना कोई भी व्यक्ति वैध राजा नहीं माना जाता था। राज्याभिषेक के समय राजा को मन वचन तथा कर्म से धर्म–पूर्वक प्रजा का पालन करने और कभी भी स्वेच्छाचारिता न बरतने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी। महाभारत में राजा पृथु को यह शपथ दिलाई गई थी कि वह प्रजा का पालन पोषण करेगा और समूचे राज्य को खुशहाल बनाएगा। इसी प्रकार से राजा युधिष्ठिर ने भी धर्मानुसार शासन करने का निर्णय लिया था। अत्याचारी राजा का दमन करें, परन्तु बहुधा राजा अत्याचारी बनने का साहस नहीं करता था। अतः राजा आजीवन राजपद विराजमान रहता था।

राजा की नियुक्ति के लिए साधारण प्रजा को पूर्ण अधिकार प्राप्त था। निरापद शांतिपूर्ण जीवन बिताने के उद्देश्य से प्रजा मिलकर राजसुलग गुणवान व्यक्ति को राजपद पर बिठाती थी। यह प्रथा अति प्राचीन थी।

नैव राज्य न राजासीब दण्डो न च दण्डिक धर्मेणैव
प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।
इत्यादि शांति 59/1
अराजका प्रजाः पूर्ण बिनेशुरिति च जुतम्।।
इत्यादि शांति 67/1

राजा भगवान की विभूति स्वरूप :– राजा के किन–किन गुणों का होना आवश्यक है, इस विशय पर सैकड़ों उक्तियॉ उद्धत है। ग्रंथकार ने बहुत सी जगह तो उराना, इन्द्र, ब्रहस्पति, मनु आदि राजधर्मवेताओं के अभिमत को ही ग्रहण किया हो और बहुत सी जगह भीष्म के मुख से अपना मत भी प्रकट किया है। विभूतियों में भगवान कृष्ण, अर्जुन से कहते, ''नरो में मैं नराधिप हूँ..............'' अर्थात् राजा में ही मनुष्यत्व का पूर्ण

विकास होता है, इसलिए वही भगवान की विभूति स्वरूप है।

चरित्रगठन् में राजा का दायित्व :– राजधर्म ही सब धर्मो का मूल होता है। सब प्राणियों के पदचिन्ह जैसे हाथी के पदचिन्ह के नीचे विलीन हो जाते है। उसी प्रकार दूसरे धर्म भी राजधर्म में विलीन हो जाते है। राजधर्म के परिव्यक्त होने पर दूसरा कोई धर्म उन्नत नहीं हो सकता। अतः समाज के स्थायित्व के विषय में अपने दायित्व को अच्छी तरह समझकर राजा को अपने चरित्रगठन में मनोयोग करना चाहिए।

आदर्श चरित्र :– राजा का चरित्र कैसा होना चाहिए इस संबंध में भीष्म ने युधिष्ठिर को राजधर्म प्रकरण में सैकड़ो उपदेश दिए है, नीचे संक्षेप में उन पर प्रकाश डाला गया हैं।

पुरूषार्थ :– उद्योग के बिना कोई कार्य सफल नहीं होता, इसलिए राजा को सदा पुरूषार्थ की सेवा करनी चाहिए कोई शुरू किया हुआ काम दैववश यदि अधूरा रह जाए तो सलाप नहीं करना चाहिए, दुगने उत्साह से उसे पूरा करने का यत्न करना चाहिए।

मृदुता व कठोरता के बीच का मार्ग अपनाना चाहिए :– राजा को दोनो के बीच का मार्ग अपनाना चाहिए राजा यदि मृदुस्वभावी होता है तो प्रजा उसका यथोचित मान नहीं करती और यदि बहुत ही तीक्ष्ण स्वभावी हो तो सत्रस्त रहती है। इसीलिए राजा को बसंत के सूर्य की तरह यथोचित मृदुता व कठोरता का अभिलंबन लेना चाहिए। प्रजा भी सत्यवादी धर्मनिष्ठ राजा का अनुरक्त होती।

भृत्य आदि के साथ व्यवहार में अपनी मर्यादा रखना :– नौकर–चाकरों के साथ बहुत हॅसी–हट्टा नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से सेवक स्वामी की मर्यादा का उल्लंघन करते है। नृपति यदि बहुत ही मृदुस्वाभावी शिथिलता एवं अशिष्टता दिखाते है और यह राज्य शासन के लिए बहुत ही प्रतिकूल होता हैं।

राजा–प्रजा संबंध :– वाल्मीकि रामायण के अनुसार उस समय राजा और प्रजा का संबंध स्वामी और सेवक का नहीं था, जब कैकयी केशयंत्र के कारण प्रजाप्रिय राम को उत्तराधिकारी बनाए जाने में बाधा पड़ी तो प्रजा ने विरोध व्यक्त किया था, इसी प्रकार नए राजा के राज्य अभिषेक हेतु प्रजा के तथा कथित प्रतिनिधियों की राय ले ली जाती थी। महाभारत में भी राजा–प्रजा का घनिष्ठ संबंध बताया गया है, यदि राजा अपनी प्रजा की रक्षा में प्रवृत्त न हो तो सब और अज्ञान एवं अन्याय की स्थापना हो जाएगी। यदि राजा प्रजा पालन का भार, अपने उपर न लेता तो लोग माता–पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि को भी पीड़ा देने में प्रवृत दिखाई देते।

इस प्रकार भीष्म राजा की स्थिति में समस्त जगत की स्थिति मानते है, यद्यपि राजा दण्ड का स्वामी है, किंतु वह दण्ड का प्रयोग करने में स्वतंत्र नहीं है, राजा दण्ड का प्रयोग कर अपनी अधीन प्रजा को उन नियमों का अनुसरण करने को बाध्य करता है जो प्रजा (लोक) कल्याण हेतु ब्रह्मा ने स्वयं बनाए थे, अथवा जिनका निर्धारण प्रजा ने सर्वसम्मति से किया था, इसके अतिरिक्त राजा अपने अधीन प्रजा के निमित्त आदर्श आचरण और प्रजा रक्षण राजा के परम कर्तव्य है, उसी प्रकार अपने राजा का आदर करना, उसका सहयोग करना, उसके आदर्श का अनुकरण करना और उसे देवांश मानकर उसकी आज्ञा का पालन करना प्रजा के भी कर्तव्य है। अतः राजा प्रजा एक दूसरे के पूरक है। अपनी प्रजा के कल्याण में ही राजा का कल्याण है और राजा के प्रति विश्वास पात्र होना प्रजा का धर्म है। इसी प्रकार शुक्र ने कहा है कि राजा को प्रजारंजन के कार्य में तत्पर रहना चाहिए। अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि राजा और प्रजा के मध्य घनिष्ठ संबंध थे। कौटिल्य ने तो दोनों को रथ के दो पहियों के समान कहा हैं।

प्रजा के हित के लिए धर्म का अवलंबन :– गर्भवती स्त्री जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु के हित के लिए अपनी प्रिय वस्तु का त्याग करने में जरा भी कुठित नहीं होती, उसी प्रकार राजा को सर्वभूत के हित साधन को वृतस्वरूप ग्रहण करना चाहिए।

प्रजा के हित के लिए कठोर त्याग :– राजा को सदा प्रजा की हित कामना करनी चाहिए प्रजा के हित के लिए राजा सगर ने ज्येष्ठ पुत्र असमंज को त्याग दिया था। प्रजा के मंगल के लिए सब तरह के पुत्र कष्टों का भी वरण करना पड़ता है। उद्यम करने से मनुष्य में त्याग की सम्मर्थ्य आती है।

प्रजा रंजक :– जिसके शासन में प्रजा निरूद्वेग व आनंद से काल यापन कर सके, वही असली राजा होता

है। प्रजा को सुखी रखने व दीर्घदर्शी राजा का ऐश्वर्य चिरस्थायी होता हैं।

सदव्यवहार से प्रजा की मुद्रा का पात्र बनना :– जो राजा प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता, हमेशा नाक, भौंह चढ़ाए रहता है, वह सबका अप्रिय बन जाता है, जो सदा हॅसमुख रहता है, किसी को देखते ही बातचीत करने को आतुर रहता है, वहीं राजा प्रजा से अपनी और आकर्षित करने में समर्थ होता है। मीठी वाणी से हर किसी को अपने वश में किया जा सकता है। जो सुकृत, विनय एवं मधुरता के उपासक होते है, वे अद्वितीय पुरूष कहलाते हैं।

अभयदान तथा प्रजा वात्सल्य :– प्रजा को सदा अभय देना चाहिए, मनु ने कहा है, राजा के चरित्र में माता–पिता गुरू, रक्षक, वहि, वैश्रवण तथा यम इन सातों के गुण होते है। अनुकंपावंश राजा प्रजा के साथ पित्रवत व्यवहार करता है, अति विपन्न व्यक्ति का भी वह सस्नेह प्रतिपालन करता है। इसीलिए मात्र स्थानीय होता है अनिष्ठ को दूर करने के कारण अग्नि और दुष्टों को शासित करने के कारण उसे यम कहा जाता है। साधू व्यक्ति को अभितपित दान देता है। इसीलिए कुबेर, धर्मोपदेश देता है। इसीलिए रक्षक होता ह, जो प्रजा में सम्मानित व्यक्तियों का यथोचित सम्मान करता उसका सुज अनंत होता है और जिसकी प्रजा नियत करो के कारण उत्पीड़ित होती है उस राजा का पराभव शीघ्र ही हो जाता है। इसके विपरीत जिसकी प्रजा सरोवर के पद्मों की तरह उत्पफुल रहती है। वह हर प्रकार के ऐश्वर्य का भोग करती है। राजा को सर्वदा स्वकार्यरत रहना चाहिए। कोई–कोई राजा हिम की तरह शीतल, अग्नि की तरह क्रूर एवं यम की तरह विचारक होता है, कोई शत्रु को मूलोच्छेद करने में हल जैसा तथा दुष्टों के लिए व्रज जैसा कठोर होता है। हर राजा को शुभ कार्यरत रहना चाहिए।

अधार्मिक राजा के राज्य की दुर्गति :– राजा यदि प्रमादि हो तो, सबकुछ नष्ट हो जाता है। किसी को भी सुख शांति की आशा नहीं रहती, राजा के अधार्मिक होने से हाथी, घोड़े आदि पशु भी अवसन हो जाते है। राजा ही रक्षक होता है, राजा ही विनाशक। राजा के नास्तिक अधर्मूत्र होने से प्रजा उघिग्नता से कार्य यापन करती हैं।

प्रजाकृत पाप व पुण्य का फल :– प्रजा सुरक्षित रहे तो उसके लिए धर्म का चतुर्याशं पुण्य राजा को लगता है किंतु यदि राजा की किसी त्रुटि के कारण प्रजा कोई पाप करे तो उसका चर्तुर्याश जल भी राजा को भोगना पड़ता है। यह ख्याल रखते हुए राजा को सदा कल्याणकर कर्म करने चाहिए।

इस प्रकार राजा को प्रजा के साथ किस प्रकार का संबंध रखना चाहिए उस सबका उल्लंघन यहा करना संभव नहीं है। कामंदकीय आदि अर्थशास्त्र, रामायण, अग्निपुराण आदि में भी राजा प्रजा के गुणों का बजान किया गया है किंतु महाभारत की तरह एक ही प्रकरण में नाना प्रकार के वर्णन और किसी ग्रंथ में नही मिलते। अतः राज्य में सुक्ष्यवस्था तथा शांति स्थापित करने के लिए राजा को कठोर परिश्रम करना पड़ता है। राजा को प्रजा का ही उत्तरदायित्व निभाने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है। आंरभ करने का समय नहीं मिलता। प्रजा के लिए कर व्यवस्था, शिल्प तथा वाणिज्य की उन्नति, विचार पद्धति, राजकोष की वृद्धि, प्रजा की आत्मरक्षा आदि विषयों पर महाभारत में बहुत कुछ कहा गया हैं।

उपर्युक्त राजधर्म के प्रकटीकरण से उस कार्य काल के आदर्श का पता लगाया जा सकता है। धर्मवीरता प्रजा का कल्याण आदि जो कुछ भी राजा का कर्तव्य होता है। प्रायः सभी का उपदेश दिया गया है, राजा समाज से अलग नहीं होता, वह भी प्रजा की तरह समाज का ही एक व्यक्ति था।

राजकीय आय के श्रोत :– अन्य प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तकों के समान ही अन्य चिंतकों के द्वारा राजकीय आय को सप्तांग राज्य का प्रमुख अंग माना है क्योंकि बिना राजकीय आय के शासन संबंधी कार्यो का संचालन संभव नहीं होता। राजकीय आय से प्राप्त सहायता से ही राज्य अपने आंतरिक और बाह्य सुरक्षा संबंधी तथा जनहितकारी विभिन्न कार्यो का सफल आयोजन कर सकता है। अतः राजकीय आय राजाओं के अधीन रखा है तथा उसका दैनिक निरीक्षण उनकी दिनचर्या में शामिल किया है। साथ ही यह भी निर्देश दिया हैं कि राजा को सदैव राजकीय आय संचय एवं वृद्धि का प्रयत्न करते रहना चाहिए। अन्य चिंतकों के अनुसार राजकीय आय संग्रह का मूल उद्देश्य प्रजा सुरक्षा एवं पालन है। वह न राजा की संपत्ति है और न

ISSN : 2394-3580 **Swadeshi Research Foundation** Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

उसका उपयोग जनहितकारी कार्यो के लिए ही किया जाना चाहिए।

राजकीय आय में धन संग्रह का मूल साधन राज्य की प्रजा से वसूल किया जाने वाला कर है। करारोपण के सिद्धांत का उल्लेख करते हुए व्यथा मुक्ति सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धांत के अनुसार उसने कहा हैं कि राजा को प्रजा पर इतनी मात्रा में एवं इस प्रकार कर वसूल करना चाहिए कि जिससे प्रजा को कर चुकाने में किसी प्रकार का कष्ट न हो अपितु वह सहर्ष स्वेच्छा से कर चुकाने हेतु तत्पर हो। कर के संबंध में यह अल्प एवं क्रमंशः धन संग्रह का सिद्धांत है। जिस तरह बछड़ा गाय से, जोंक प्राणी–शरीर एवं मधुमक्खी फूल से अपने खाद्य पदार्थ अर्थात् दूध रक्त एवं मधु ग्रहण करते हैं और उन्हें इसे हेतु किसी प्रकार का कष्ट नहीं देते हैं, ऐसे ही राजा को भी अल्प एवं क्रमशः जनता से कर लेना चाहिए ताकि वह कर चुकाने में किसी तरह का कष्ट और भार का अनुभव न करें।

राजकीय आय के उद्देश्य :– राजकीय आय के निम्नलिखित उद्देश्यों हेतु करोपण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया हैं :–

1. राजा को अपनी प्रजा से कर वसूल करने का अधिकार है जो उसके जीवन की आंतरिक और बाह्य सुरक्षा करने में समर्थ है। जो राज इस उद्देश्य को पूर्ण न कर अपनी प्रजा पर करारोपण करता हैं, वह स्वयं अपने विनाश का द्वार उन्मुक्त कर देता है और मृत्यु उपरांत नरक का भागी होता है। अतः राजा को कर वसूलने के साथ ही प्रजा रक्षण के इस कार्य को अपनी पूरी योग्यता और सामर्थ्य से पूर्ण करना चाहिए।
2. राजा के द्वारा वसूले गये कर के द्वारा प्रजा की सुरक्षा करना राजा का प्रथम धर्म होता है। उसके कल्याण हेतु योजनाबद्ध तरीके से विभिन्न कार्य करना भी राजा का एक प्रमुख उत्तरदायित्व है। करों के माध्यम से संग्रह धन को उसे योजनाबद्ध तरीके से विभिन्न जनहितकारी योजनाएँ बनाकर उन्हें पूर्ण करने हेतु उसे व्यय करना चाहिए। प्रजा को सुरक्षा के साथ–साथ उसे समृद्ध बनाना भी राज्य शासन का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।
3. राजा को उत्पादित वस्तु पर नहीं वरन् उसके विक्रय से प्राप्त लाभ पर कर लगाना चाहिए। यदि राजा द्वारा इस नियम का पालन किया जाता है तो इससे उत्पादन में वृद्धि एवं वाणिज्य का विस्तार होता है। फलतः राजकीय आय भी बढ़ जाती है।
4. राजा द्वारा प्रजा उसकी सामर्थ्य से अधिक कर लगाने का निषेध किया है। सामर्थ्य से अधिक कर प्रजा के धन–हरण के समान होता है जो प्रजा की समृद्धि का नाश तथा कष्ट का कारण होता है। प्रजा पर अधिक करारोपण करने वाले राजा को मूर्ख घोषित किया है क्योंकि उसका यह कार्य अनीतिपूर्ण होने के कारण अंततः विनाश का कारण सिद्ध होता हैं।

संदर्भ सूची :–

1. महाभारत–गीता प्रेस गोरखपुर, आदि पर्व अध्याय 1, श्लोक 63–68
2. वेद व्यास को योगदान ब्राण्ड बिहार पृ. 05
3. डॉ. कमलेश कुमार सिंह, राजनीतिक चिंतक पृ. 102
4. कांणे, भारत रत्न 1965, धर्म शास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, पृ. 20
5. पाण्डेय डॉ0 श्यामलाल सं. 2007 रामायण तथा महाभारत कालीन जनतंत्रवाद, अवध पब्लिसिंग हाउस लखनऊ, पृ. 65

SRF

महेश्वर एवं ओंकारेश्वर नदियों के संरक्षण पर सरकार के विभिन्न कार्यक्रम

डॉ. पी.डी. ज्ञानानी
निर्देशक प्राध्यापक, शास. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय मंदसौर (म.प्र.)
श्याम सिन्हा
शोधार्थी

नर्मदा कछार में औद्योगीकरण एवं शहरीकरण अन्य नदी कछारों की अपेक्षाकृत कम है, अतः नर्मदा नदी की जल गुणवत्ता देश की अन्य प्रमुख नदियों की अपेक्षा अच्छी है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा किये गये जल गुणवत्ता परीक्षण के अनुसार होशंगाबाद (U/s & D/s) में pH 8.7 तथा सेठानी घाट और कोरी घाट, में pH 8.6 पाया गया जो कि निर्धारित (6. 5–8.5) से थोड़ा अधिक है। बी.ओ.डी. की अधिक मात्रा सरस्वती घाट, जबलपुर (7.9 mg/ltr.), मण्डला (7.8 mg/ltr.), होशंगाबाद (3.3 से 4.5 mg/ltr.) में पायी गई। नर्मदा नदी की जल गुणवत्ता प्राथमिक उपचार के उपरांत पेयजल तथा अन्य उपयोग हेतु उपयुक्त है।

आज सभी विकासशील देशों में पेयजल का सकंट गहरा है। जहां तक भारत का प्रश्न हैं नदियों, झीलों, तालाबों और कुओं से हमे जो जल मिलता है, उसका 70 प्रतिशत होता है। महानगरों की जल समस्या तो विकट बनती जा रही है। वहां प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि अनुपचारित पानी पेय नहीं रहा। उसे पीने योग्य बनाने के लिए विभिन्न रसायनों का प्रयोग करना पड़ता है, जिससे पानी का प्राकृतिक स्वाद नष्ट हो गया है। वृक्षों की संरक्षण की उपेक्षा के कारण जहां भू–स्खलन और बाढ़ तथा सूखे का खतरा बढ़ा वहीं वन संरक्षण की उपेक्षा के कारण मूल्यवान औषधियों के विनष्ट होने से जल प्रदूषण का भी खतरा बढ़ा है। प्रकृति की गोद में उगे और पले ये पौधे, वृक्ष लता–निकुंज जल शोधन के प्राकृतिक उपकरण हैं। जल वाले पौधे जल की गंदगी को बहुत कुछ रोकते हैं। ये पानी में मिले अनिष्टकारी खनिज तत्वों और प्रदूषण को सोखते हैं। जलीय जंतु भी जल प्रदूषण को रोकते हैं किन्तु आज जंगल तथा जल जन्तुओं को बेरहमी से विनष्ट कर मनुष्य ने स्वयं अपने लिए अस्वास्थ्यकर स्थिति का निर्माण कर लिया है।

पर्यावरण की दृष्टि से मध्यप्रदेश और उसकी नदियाँ भारत का हृदय है। यहाँ महत्वपूर्ण नदियों का काफी बड़ा जल ग्रहण क्षेत्र स्थित है। वर्षाकालीन बहुसंख्यक नदियों के अलावा वर्ष भर बहने वाली सदानीरा सरिता में नर्मदा, इन्द्रावती, बेनगंगा, तेतवा, केन, महानदी, ताप्ती, चम्बल, तवा, हसदो, बारना, हलाल, सोन आदि मुख्य है। नदियों का उपयोग केवल सिंचाई, घरेलू तथा औद्योगिक आवश्यकताओं हेतु प्राप्त करने के लिए ही नहीं होता, बल्कि गंदे तथा अवशिष्ट पदार्थों के निःसारण के लिए भी होता है। बढ़ते हुए औद्योगीकरण के साथ–साथ शहरों में आबादी की अप्रत्याशित वृद्धि ने नदियों के प्रदूषण को बहुत बढ़ा दिया है। गत दशक में मध्यप्रदेश की सामान्य नगरीय आबादी में 56.07 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यहाँ एक विस्फोटक स्थिति का सूचक है।

पुण्य सलिला नर्मदा का जल अनेक स्थानों पर गम्भीर रूप से प्रदूषित है। अमरकंटक का कोटितीर्थ आज करोड़ों व्याधियों का प्रवेश द्वार बन गया है। महार रेजीमेंट, सागर के 60 सदस्यीय फौजीदल के नर्मदा दर्शन (दिसम्बर 1985, जनवरी 1986) के अनुभवों को श्री दिनेश जोशी ने प्रकाशित करते हुए लिखा है कि नर्मदा का उद्गम कुण्ड इस कदर गन्दा है कि उसके जल को छूने तक की इच्छा नहीं होती। कतिपय आदिवासी एवं अन्य जातियों के लोग प्रथा के अनुसार मुर्दो को पत्थर से बाँधकर फेंक देते हैं। बड़े–बड़े नगरों जैसे मंडला, जबलपुर, होशंगाबाद आदि में भी लोग शव अधजले या यों ही, नदी में प्रवाहित कर देते है। जलाऊ लकड़ी की कमी और उसके बढ़ते मूल्य इसके कारण प्रमुख हैं। अन्धपरम्परा, अशिक्षा, अज्ञानता और धर्मान्धता के साथ–साथ, व्यवस्था का अभाव भी इस प्रदूषण के पीछे कारण है। अमरकंटक में नर्मदा कुण्ड में स्नान आदि पर तुरंत प्रतिबंध लगाना चाहिए। विकल्प के रूप में थोड़ी दूर पर एक अन्य कुण्ड का निर्माण इस प्रयोजन के लिए कराया जा सकता है। केवल प्राकृतिक संपदा का अनवरत दोहन अथवा औद्योगिकरण की प्रवृति ही नर्मदा प्रदषण के कारण नहीं है। बल्कि गंदगी या गंदे पानी के निकास की समुचित व्यवस्था का न होना भी एक प्रमुख कारण है और यह नर्मदा

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

तट पर बसे हर कस्बे या नगर का हाल है। डिंडोरी में बस स्टैण्ड के पीछे नर्मदा तट पर गंदगी देखकर मन कुत्सा और घृणा से भर जाता है। सारी गंदगी सीधे नर्मदा में बहाई जाती है। बाबा आमटे का यह कथन कितना सत्य है कि आज मानव ही पर्यावरण का सबसे बड़ा शत्रु है। इसी तरह जबलपुर के ग्वारीघाट और सेठानीघाट के बीच में एक नाले के माध्यम से करीब–करीब पूरे शहर का गंदा पानी नर्मदा में गिरता है। जिस स्थान पर गंदे पानी का झरना झरता है उसके थोड़ी ही दूर (सेठानी घाट में) लोग नहाते–धोते हैं। कितनी अस्वास्थ्यकर और भयावह स्थिति है यह।

इंदौर–खण्डवा मार्ग पर पश्चिम निमाड़ जिले का औद्योगिक नगर बड़वाह और उसके समीपवर्ती ग्रामीण क्षेत्र प्रदूषण के घेरे में आ गए हैं। नगर के पूर्वी छोर पर शराब कारखाना, उत्तर दिशा में लगभग तीन कि.मी. तक चूना उद्योग एवं दक्षिण में एनकाप्स संयंत्र ने यहाँ के पर्यावरण को प्रभावित किया है। शराब कारखाने से निकलने वाला अनुपयोगी पानी कारखाने से करीब दो सौ मीटर दूर जाकर चोरल नदी में गिरता है और चोरल उसे दो कि.मी. आगे चलकर नर्मदा में गिरा देती है। इस पानी के प्रयोग से चर्मरोग की शिकायतें प्रकाश में आई है। कारखाने के आसपास गड्ढों में जमा पानी जब मवेशी पीते हैं तो उनका पेट ढोलक की तरह फूलने लगता हैं। नर्मदा में सर्वाधिक गंदगी भड़ौच में दिखती है। शहर की सारी गंदगी सीधे नर्मदा में गिरती है। मछली उद्योग संभवतः यहाँ सर्वाधिक होता है। मछुआरें नर्मदा तट पर ही बसे हैं। गंदगी में डूबी नर्मदा और गंदगी में रात–दिन जी रहीं ये गरीब जातियाँ और वहां बगल में तमाम पौराणिक तीर्थ भड़ौंच मल–मूत्र और गंदगी के बीच तीर्थों का एक बेमेल पड़ाव हैं। दाण्डिया बाजार में स्वामीनारायण मंदिर के पास रेल्वे पुल से करीब आधे मील की दूर पर नर्मदा तट पर स्थित भृगु आश्रम नाम मात्र का आश्रम रह गया है। चारों ओर गंदगी की भरमार हैं। नाक दबाकर मानव मल लांघते किसी तरह आश्रम के भीतर जा पाना संभव हैं। निश्चित ही यह स्थान पुरानत काल में नर्मदा की पावन हिलोर से स्पर्ष होकर पवित्र रहता होगा, पर आज नर्मदा प्रवाह ने इस तट को मानों अनुपयुक्त समझकर छोड़ दिया है।

नर्मदा नदी पर बने बड़े और छोटे बांधों के निर्माण के द्वारा पानी की उपलब्धता बढ़ने से जहाँ अनेक लाभ हो रहे हैं वहीं दूसरी और बांधों के कुछ विपरित प्रभाव भी होते हैं। जैसे जल प्रभाव में कमी के कारण बहते पानी की स्वःशुद्धता की क्षमता कम होने के साथ–साथ जैवविविधता भी प्रभावित हो रही है, विशेषकर प्रवासी प्रजातियाँ। अतः नदियों में न्यूनतम जल प्रवाह बनाये रखने हेतु उचित कार्यवाही अति आवश्यक है। बांधों के निर्माण से होने वाली बीमारियों में मलेरिया, सिस्टोसोमाइसिस (घोंघावाली), फिलेरियासिस आदि प्रमुख है।

प्लॉस्टिक :– प्लॉस्टिक के अत्याधिक उपयोग बढ़ने से तथा इसका एकत्रीकरण एवं उपचार न होने के कारण यह नदी–नालों के बहाव में अवरोध उत्पन्न करता है, जमीन की उपजाऊ क्षमता पर विपरीत प्रभाव डालती है एवं जानवरों द्वारा खाने पर घातक होती है।

औद्योगिक अपशिष्ट :– उद्योगों से विसर्जित जल में कई प्रकार के विषाक्त तत्व घुले होते हैं। नर्मदा के कछार में सिक्योरिटी पेपर मिल, होशंगाबाद, ट्राईडेन्ट लि. एवं वर्द्धमान यार्न, बुधनी, एसोसिएटेड डिस्टलरी, बड़वाहा, अग्रवाल डिसटलरी, ग्राम खोड़ी, सेन्चुरी टेक्सटाईल्स एवं मशाल ओवरसीज लि. आदि प्रमुख उद्योग स्थित हैं। इसके अतिरिक्त नर्मदा की प्रमुख सहायक नदी तवा पर सतपुड़ा थर्मल पावर स्टेशन, सारणी, ऑडीनेंस फैक्ट्री, इटारसी आदि हैं। उद्योगों से निकलने वाले दूषित जल को उपयुक्त उपचार के उपरांत मध्यप्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के स्वीकृत मानकों के अनुसार छोड़ा जाना चाहिए।

उत्खनन :– तेजी से बढ़ते शहरीकरण के कारण पत्थर, रेत आदि के उत्खनन में वृद्धि हुई है। नर्मदा और उसकी सहायक नदियों में रेत प्रचुर मात्रा में है। अव्यवस्थित रेत उत्खनन के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव में मुख्यतः नदी के किनारों का कटाव, आकृति एवं बहाव में बदलाव, जैव विविधता एवं जलीय जीवों के प्रजनन क्षेत्र प्रभावित होते हैं। रेत गौण खनिज है भारत सरकार द्वारा पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से उत्खनन के लिए पर्यावरण स्वीकृति लेना अनिवार्य है।

प्रदूषण के प्रकार और कारण :– नर्मदा नदी के उद्गम से उसके अंतिम पड़ाव खम्भात की खाड़ी के बीच मध्य प्रदेश में उसका एक से अधिक भौगोलिक क्षेत्र है। इसी वजह इसे प्रदेश की जीवनदायिनी भी माना गया। अनूपपुर जिले से अपनी पहली यात्रा शुरू करने वाली नर्मदा अपने प्रदेश से निमाड़ के इलाकों से

विदा लेकर गुजरात में प्रवेश करती है। पश्चिम निमाड़े क्षेत्र के संदर्भ में बात करें तो यहाँ भी नर्मदा में प्रदूषण साफतौर पर दिखाई देता है। यहाँ नर्मदा कई प्रकार के प्रदूषणों से प्रभावित है। पश्चिम निमाड़ क्षेत्र में प्रसिद्ध तीर्थ ज्योतिर्लिंग ओंकारेश्वर के बाद बड़वाह, महेश्वर और कसरावद ब्लॉक क्षेत्रों से होकर नर्मदा गुजरती है। इन क्षेत्रों के समग्रता की बात करें तो वनों की स्थिति सामान्य है। साधारण घास, बबूल, सुबबूल, बेर, बेरी तथा नीम के पेड़ बहुतायात में है। वन की कमी के कारण तथा नर्मदा किनारे कई गांवों की बसाहट से वन्य प्राणियों की तुलना में पालतू मवेशी ही दिखाई देते हैं। सियार, खरगोश जैसे प्राणी यदाकदा दिख जाते हैं। नदी संसार को देखे तो नर्मदा घाटी में नदी की चौड़ाई और गहराई पर्याप्त है। मछलियों की विभिन्न प्रजातियाँ के अलावा मगरमच्छ भी पाये जाते है। मछलियों में रोहू, बाम, गेगरा, सिगार, कतला, मूगल, कलांट, वडोस, पाडण, डोक, धोषई उगर तथा अन्य तरह की प्रजातियाँ इस क्षेत्र में उपलब्ध है। पूर्व में यहाँ कई प्रकार की औषधियाँ वनस्पति पाये जाने के भी प्रमाण है, जो अब लुप्त प्राय हो गई है। इस क्षेत्र में लगभग 25 कच्चे पक्के घाट नर्मदा किनारे बने हुए है। मण्डले वर व कसरावद के नवड़ाटोड़ी के अलावा महेश्वर घाट बने हुए हैं जो सबसे अधिक उपयोग में आते हैं। इसके अलावा नर्मदा किनारे पचास से अधिक छोटे–बड़े गांवों का भी सीधा सम्पर्क नर्मदा से होता है। मोटे तौर पर प्रदूषण के कई कारण बन रहे हैं जिन्हें अलग–अलग बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है। घाटों पर प्रदूषण सबसे अधिक नर्मदा नदी में प्रदूषण दिखाई देता है तो वह घाटों के आसपास। श्रद्धालुगण आस्था के नाम पर नर्मदा में स्नान करते है तो श्रद्धालुगण प्रदूषण के लिए भी जवाबदार हो जाते हैं। साबुन का उपयोग कपड़े धोना, पूजन सामग्री को प्रवाहित करना और यहाँ तक कि मवेशी वाहनों को साफ सुथरा करने में भी लोग कोताही नहीं बरतते। नर्मदा की पवित्रता और पुण्य सलिता की धारणा के चलते भावदाह अंतिम संस्कार भी प्रदूषण का कारण बन रहा है। यहाँ तक कि मृत्युपरांत जल समाधि की परम्परा का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव नर्मदा के प्रदूषण पर पड़ रहा है। केवट और मछुआरों के साथ सब्ज–बाग से जुड़े लोगों का पूरा जीवन नर्मदा के इर्द–गिर्द बीत जाता है, और इनके द्वारा भी नर्मदा में प्रदूषण फैलता है।

सहायक नदी नालों स जुड़ा प्रदूषण :– पश्चिम निमाड़ में नर्मदा नदी में कई सहायक नदियाँ और नाले जुड़ते हैं जिनमें प्रमुख रूप से वेदा, महेश्वरी, मालन नदी, नानी नदी, बंसाली नदी के साथ कई छोटे–बड़े नाले जा मिलते है। ये नदी–नाले भी अन्य ग्रामीण तथा कुछ शहरी क्षेत्रों से निकल ही पहुँचते है, जिनके साथ शहरी–ग्रामीण नालों का पानी और गंदगी भी सीधे नर्मदा में अनवरत् मिल रही है। यह भी नर्मदा में प्रदूषण का प्रमुख कारण बनकर उभरा है जैसा कि खरगोन जिला मुख्यालय का प्रमुख नाला वर्तमान में सीधे कुंदा में मिल रहा है सब शहर की सारी गंदगी कुंदा में मिलती है। इससे साफ है कि यही गंदगी आगे चलकर नर्मदा में ही मिल रही है। साथ ही पर्यावरण असंतुलन और प्रदूषण का प्रमुख कारण अवैध रूप से रेत उत्खनन् भी है। अवैध उत्खनन् के हालात ये है कि नर्मदा किनारे के मूल स्वरूप में बदलाव आ गया है। महेश्वर जल विद्युत परियोजना के प्रभावित डूब क्षेत्र मानकर बेहताशा रेत उत्खनन् रेत माफियाओं द्वारा किया जा रहा है, और इसी वजह नर्मदा के किनारे बेशेप कटाव बन गए हैं। किनारों में कटाव की दूसरी मुख्य वजह वृक्षों की अंधाधुध कटाई भी है। समूचे पश्चिम निमाड़ क्षेत्र में किनारों के भ्रमण करने पर कहीं भी घना वन क्षेत्र नहीं मिला।

मूर्ति विसर्जन :– कुछ सालों से न केवल नर्मदा किनारे बसें गाँव बल्कि दूर–दराज से भी वार–त्यौहार प्रतिमा विसर्जन के लिए सैकड़ों श्रद्धालु नर्मदा पहुँचते हैं। गणेश चतुर्थी हो, नवरात्रि पर्व हो, हजारों प्रतिमाएँ विसर्जन के लिए लाई जाती है। केमिकल कलर्स से बनी इन प्रतिमाओं का भी प्रतिकूल प्रभाव नदी के पानी पर पड़ रहा है।

डायनामाईड ब्लास्टिंग :– मछली माफियाओं ने नर्मदा में एक नये तरह से अत्याचार प्रारंभ शुरू कर दिया। मण्डलेश्वर बेल्ट में बड़े पैमाने पर डायनामाईड ब्लास्ट से क्विटलों मछलियाँ मारी जाती हैं। जहाँ डायनामाईड ब्लास्ट से काफी मात्रा में बारूद नर्मदा में फैल जाता है साथ ही मरी मछलियाँ सड़ कर किनारों पर जा गिरती है। इस कारण भी नर्मदा में दोहरा प्रदूषण बढ़ रहा है। शोध में देखा गया कि मछली माफिया मरी मछलियों को पूरी तरह से साथ नहीं ले जाते और काफी मात्रा में नदी में ही रह जाती है। इस तरह अवैध रूप से मछली के शिकार का नर्मदा प्रदूषण के अलावा मछुआरों के आजीविका पर भी पड़ा है।

प्रदूषण और दुष्प्रभाव :– नर्मदा में बढ़ते प्रदूशण को लेकर मानव जीवन पर इसके दुश्प्रभाव को लेकर

विशेषज्ञों ने भी चिंता जताई है। सूखती नर्मदा में जगह–जगह पानी के ठहराव में सड़ांध पैदा हो गई है। नर्मदा में प्रदूशित मात्रा बढ़ने से मनुष्य के भारीर पर भी इसके उपयोग का प्रतिकूल प्रभाव बच्चों पर देखा गया है जो नदी में सीधे नहाते हैं।

डॉ. हितेश मुजाल्दे (शिशु रोग विशेषज्ञ) :– चूंकि बच्चों का शरीर कोमल और अधिक संवेदनशील होता है ऐसी स्थिति में यदि वो सीधे नदी के पानी में नहाता है तो इन्फेक्शन की संभावना अधिक रहती है, साथ ही कभी–कभी नदी में नहाने के दौरान पानी मुँह–पेट में चला जाता है जिससे भी संक्रामक बीमारी हो सकती है। इसी प्रकार महिलाओं के ऐसे प्रदूषित पानी के सम्पर्क में आने पर भी उससे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

डॉ. कल्पना अजय भटनागर (इंदौर) प्रसिद्ध स्त्री रोग विशेषज्ञ :– महिलाओं में संक्रमकता से जुड़ी बीमारियों की आशंका सदैव बनी होती है। ऐसी स्थिति में प्रदूषित नदी के पानी का दुष्प्रभाव सीधे महिलाओं से जुड़ा संक्रामक बीमारी के रूप में पड़ सकता है। नदियों में सामूहिक स्नान से भी महिलाएँ स्वयं भी कई बार प्रदूषण के लिए जवाबदार हो जाती हैं। नदी में प्रदूषण से जुड़ी बिमारियों के पेशेंट का ईलाज के लिए पहुँचना अब आम बात है। सावधानी बरतना अब बहुत जरूरी है। नदी में बढ़ते प्रदूषण का दुष्प्रभाव सबसे अधिक मनुष्य की त्वचा पर पड़ रहा है। मीडिया ऐसी दुष्प्रभाव से जुड़ी खबरों के प्रकाशन से आम लोगों को जागरूक करने में लगा है। उम्मीद की जा सकती है कि धीरे–धीरे लोग नर्मदा में प्रदूषण को रोकने में अपना योगदान देंगें।

डॉ. एल.बी.एस. चौधरी (नीमच) हिन्दुस्तान के ख्याति प्राप्त चिकित्सक :– नदी में कई तरह से प्रदूषण बढ़ा है और श्रद्धालुओं की संख्या भी नदी किनारे बढ़ी है। ये वे श्रद्धालु हैं जो नदी में स्नान करते हैं। नदी के प्रदूषण की संक्रामकता से मनुष्य में त्वचा सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। कई बार ये रोग मनुष्य के लिए जानलेवा भी हो जाते हैं। सभी को मिलकर नदी के प्रदूषण और उसके दुष्प्रभाव को प्रचारित करना होगा जिससे आम लोग इस संक्रामकता और घातक परिणामों को समझ सके। मीडिया की इस दिशा में शुरूआत अच्छे संकेत हैं।

डॉ. अजय जैन (खरगोन) सर्जन एवं प्रसिद्ध पेट रोग विशेषज्ञ :– कुछ वर्षों से आम लोगों में पेट को लेकर कई नई बिमारियों और शिकायतें बढ़ा है। नदी में सामूहिक स्नान इन दिनों प्रदूषण का प्रमुख कारण है। स्नान के वक्त व्यक्ति नदी के पानी को सीधे ग्रहण कर लेता है इस कारण पेट में संक्रामकता फैल जाती है। इस तरह व्यक्तियों में पेट सम्बन्धित रोग पनप जाते हैं। सामूहिक स्नान और संक्रामक बिमारियों के बढ़ने से स्पष्ट है कि नदी में प्रदूषण का प्रतिशत बढ़ गया है और उसी के दुष्परिणाम बिमारियों के रूप में परिलक्षित हो रहे हैं। सामाजिक संगठन के अलावा स्वास्थ्य विभाग लगातार ऐसी घातक बिमारियों के फैलने और उनके कारणों से जनता को अवगत करा रहे हैं। नदी में बढ़ते प्रदूषण और उसकी रोकथाम के लिए मीडिया की मदद से बड़ा कोई विकल्प नहीं है। मीडिया की सकारात्मक पहल ही अब इस दिशा में कुछ कर सकती है।

संदर्भ सूची :–

1) भारतीय पत्रकारिताः कल, आज और कल, सुरेश गौतम, पृष्ठ 31
2) समाचार लेखन, फीचर एवं संपादन, नवीन चंद्र पंत, पृष्ठ 16
3) आधुनिक पत्रकारिता, एक नजर, बेला रानी शर्मा, पृष्ठ 90
4) जनसंचार माध्यमों की भाषा और जनसम्पर्क, राजेन्द्र प्रसाद, पृष्ठ 173
5) जनपत्रकारिता : जनसंचार एवं जनसम्पर्क, सूर्य प्रसाद दीक्षित, पृष्ठ 231

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

असंगठित क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी की विभिन्न स्थिति

डॉ. मोहम्मद नजमी
निर्देशक, (प्राध्यापक) शासकीय राज्य स्तरीय विधि महाविद्यालय, भोपाल
विपिन सोनी
शोधार्थी

असंगठित न्यूनतम मजदूरी में लोग तरह–तरह के काम करते हैं। कुछ लोग खेतों, कारखानों, बैंकों, दुकानों आदि में अनेक प्रकार के कार्य स्थलों पर काम करते हैं। कुछ व्यक्ति घर पर भी अन्य काम करते हैं। घर पर होने वाले काम अब बुनाई, पफीते बनाना या हस्तकलाओं जैसे पारंपरिक कामों तक सीमित नहीं रह गए हैं, बल्कि इनमें सूचना–प्रौद्योगिकी उद्योग प्रोग्राम बनाने जैसे आधुनिक काम भी शामिल हो चुके हैं। पहले कारखाने में काम करने का अर्थ किसी शहर में स्थित कर्मशाला में काम करना होता था, किंतु अब तो प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों ने गाँव के घर में ही औद्योगिक उत्पादन संभव बना दिया है।

भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं न्यायिक स्थिति का विकास अद्भुत किंतु विचित्र और अनेक काल खण्ड में 6000 (ईसा पूर्व) से लेकर अद्यतन 2018–19 तक फैला हुआ है। विश्व में आज वह तीसरी उच्चतर अर्थव्यवस्था के स्वामी के रूप में यू ही प्रसिद्ध नहीं है। ग्रामीण सामंत वाद से लेकर आतंकवादी युद्धो और प्रजातांत्रिक व्यवस्था के होते हुए भी वैश्वीकरण की कठिन परिक्षा की विशय का सशक्ति–साक्षी एवं सम्पदार भी है। निबोध व्यन्यन की अति प्राचीन अवधारणा के स्थान पर निवेशक जो अब स्वामी उद्यमों के नहीं है बल्कि वे कार्य के आधार पर क्षेत्र के और जो श्रम के विक्रेता या अभिकर्ता हुवे। वे मात्र दास या सेवक नहीं है। अपितु सेवा प्रदातः है। श्रमिकों को मिलने वाले सौदेबाजी के लाभ संविदा के कारण नहीं बल्कि उनकी है। स्पित औकातुपदुपा प्रतिनि के कारण प्राप्त होते है, जिसका ज्वलंत उदाहरण यूनियन कार्बोइड निगम है और भोपाल (म.प्र.) की राजधानी उसके श्रमिकों को आजतक 1985 के बाद से उचित उपचार या परितोश दिलाने में असफल रही।

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय की उपेक्षा एवं भारतीय उच्चतम न्यायालय की निरीहता, इस औद्योगिक विधिशास्त्र की विर्भिन्नता की नींव के पत्थर है।

आज भी अमीर और अधिक अमीर भारत में हो रहे है और निर्धन और निर्धन होने के लिए बाध्य और मजबूर हो रहे है। यदि यह प्रवृत्ति रूकती नहीं है। द्वितीय महायुद्ध के अंतिम कालवधि में अंतर्राष्ट्रीय श्रमसंघ आई.एल.ओ. 1919 में स्थापित हुआ। उसका श्रम सुधारों में सशक्त योगदान है। भारत उसी का स्थापतकर्ता राष्ट्र रहा है एवं श्री लाला लजपतराज एवं महात्मा गांधी ने मजदूरों और पूजीपतियों के विवादो को हल करने हेतु श्रमिको को असहाय पाकर 'श्रम' संघठनों की एकता आ आगाज किया एवं स्वतंत्र आंदोलन द्वारा श्रमिको के आंदोलनों को अपूर्ण एवं अमूत पूर्व सहायता प्रदान की। भारत तब स्वतंत्र नहीं था। शासक उसके इंग्लैड के प्रशासक थे तभी चंपारन के कृषक मजदूरों को और सूतीकरण उद्योगों के बम्बई/गुजरात के रवेड़ा के आंदोलनों में विजय प्राप्त की। शासक का न्यूनतम मजदूरी देना पड़ी। भारतीय प्रथम राष्ट्रीय श्रम संघ कांग्रेस की स्थापना 30 अक्टूबर 1920 को श्री लाला लजपतराय की अध्यक्षता में हुई। जिसने राष्ट्रीय श्रमसंघ आंदोलन को जन्म दिया एवं उद्योगों में कार्य की दशाओं में सुधार कर प्रारंभ हआ। श्रमिकों के संगठन को बल एवं शक्ति प्रदान की।

स्वतंत्रता भारत को 15 अगस्त 1947 को प्राप्त हुई तथा 1948 में नवगठित केन्द्रिय विधान मंडल ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948) पारित किया जिसका आधार भारत की औद्योगिक नीति, कर नीति, श्रमनीति तथ श्रम विधिशास्त्र रहे है। वैसे तो 1936 में मजदूरी भुगतान अधिनियम और 1923 में कर्मकार प्रतिकार अधिनियम पारित हुआ था, लेकिन ये विधायक विदेशी शासको के स्वार्थ का शिकार बन चुके थे।

भारतीय संविधान 1950 ने अपने तीसरे अद्यतन में मूल अधिकार का प्रावधान किया। नागरिकों को गैर नागरिक एवं विधेयक न्यायालयों (निगमिता निवदा) हेतु कुछ सीमा तक उपबंधित किए और उनके यथार्थ में क्रियान्वयन हेतु नीति निर्देशक तत्वों के प्रावधानों के उपबंधित किया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सन् 1954 में माननीय श्री वी.वी. गिरी श्रम मंत्री रहे, समस्त शासकीय घोषणाएं /अधिसूचनाऐं श्रमिकों का आत्मविश्वास बढ़ाने हेतु श्रमिकों के लाभ हेतु कई योजनाऐं संचालित होना शुरू हुई। सन् 1954 तथा त्रिपक्षीय नीति की विचार धारा को संबल प्रबल रूप से प्राप्त हुआ। सन् 1958 में प्रथम बार सोलहवे अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया था कि उद्योगों के दोनो वर्ग श्रमिक एवं पूंजीपति बिना दूसरे पक्ष को सूचना दिए हड़ताल या तालाबंदी की एकतरफा कार्यवाही नहीं करेगे। उसे त्याग कर स्वेछिक, मध्यस्था द्वारा अपनी समस्या का समाधान करेगे। अब पीडित तथा उत्पीड़ित निवारण का सहारा नही लिया जाय, बल्कि कष्ट निवारण प्रक्रिया के माध्यम से उपचारी हेतु अनिवार्यता प्रदत्त प्रक्रिया करेंगे, अपवादों को छोड़ते हुए।

स्वतंत्रता के पश्चात् औद्योगिक क्रांति भारत में आई। प्रथम पंचवर्षीय योजना के महान शिल्पकार प्रधानमंत्री श्री नेहरू एवं शिल्पज्ञा पी सी महलानेविस ने यह उल्लेखित किया था कि भारत के लिए आर्थिक विकास एवं उन्नति हेतु औद्योगिक शांति एवं औद्योगिक सामन्जस्य अति आवश्यक होते है। अतः औद्योगिक सामजस्य में श्रमिकों औद्योगिक सामंजस्य में श्रमिकों, उनके नियोक्ताओं एवं शासन जो राष्ट्र का प्रतिनिधि एवं प्रतीक हैं उनका सहायोग अध्यादेश पारित है। कमजोर वर्ग के शोषण को रोकने में वहीं सक्षम है, क्योंकि मतदाता ही शासन के प्रत्यक्ष निर्माता है। भारत में श्रम कल्याण का अपना विशेष महत्व है। शासन उस कार्य को व्यवस्थित और उत्पादित माल से उपभोक्ताओं को संतुष्टि व उसकी सहायता और तेजगति के माध्यम से प्राप्त होता है।

आधुनिक युग में जैसे–जैसे कुशल मानवीय श्रम का महत्व बढ़ता जा रहा है, उसी के अनुरूप मजदूरी सम्बन्धी समस्याऐं भी जटिल होती जा रही है। आज के समय में मजदूरी को लेकर औद्योगिक विवाद हो जाते हैं। अतः प्रबंधन का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने व्यवसाय में कार्यरत श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी प्रदान करते हुए उन्हें संतुष्ट रखे। उद्योगों में मजदूरी संबंधी नीतियाँ कई बातों से प्रभावित होती हैं, जैसे राजकीय नियम, उद्योगों में प्रचलित दरें आदि। मजदूरी एवं वेतन प्रशासन आधुनिक मानव संसाधन का प्रमुख उत्तरदायित्व है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह रेखीय उत्तरदायित्व है। परन्तु इसकी बढ़ती हुई कठिनाईयों ने विशेषज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

मानव श्रम उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है, वर्तमान औद्योगिक प्रजातंत्र में श्रम को उसके कार्य के बदले दिये जाने वाले मजदूरी या वेतन का एक अत्यंत महत्पूर्ण स्थान है।

डेल योडर के अनुसार, ''मजदूरी एवं वेतन प्रशासन आधुनिक जनशक्ति प्रबंध का मुख्य उत्तरदायित्व है।''

प्रो0 फेल्पस के अनुसार, ''व्यक्तिगत सेवाओं के लिए प्रदान किये जाने वाला मूल्य ही पारिश्रमिक है।'

मजदूरी से आशय उस भुगतान से है जो कर्मचारी को कार्य के पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है जो साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक होता है। मजदूरी की राशि में अन्तर कार्य के घण्टों में परिवर्तन के अनुरूप होता है। मजदूरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की श्रेणी में सामान्यतः कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिक तथा अपर्यवेक्षकीय कर्मचारियों को सम्मिलित किया जाता है।

वेतन का अर्थ मजदूरी से भिन्न है। वेतन वह भुगतान है जो कार्यानुसार नहीं दिया जाता, वरन एक निश्चित समय के लिए निश्चित राशि के रूप में दिया प्रबंधक तथा अन्य पेशेवर व्यक्ति सम्मिलित किये जाते हैं। श्रमिक का भुगतान इस श्रेणी में नहीं आता है।

हैनमेन के अनुसार, ''मजदूरी उन श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों को दी गयी क्षतिपूर्ति है, जो अपने नियोक्ता के लिए वस्तुएं एवं सेवायें उपलब्ध करते हैं तथा उत्पादन कार्यों के लिए नियोक्ता के उपकरणों का प्रयोग करते हैं।'

प्रो0 एस0 के0 वैघ के अनुसार, ''मजदूरी को कार्य की मात्रा करने पर मुद्रा के रूप में जो प्रतिफल होता है, वह पारिश्रमिक कहलाता है।''

प्रो0 आर0 एस0 डावर के अनुसार, 'पारिश्रमिक एक प्रसंविदा आय है, जो कि नियोक्ता एवं कर्मचारी दोनों के बीच निश्चित की जाती है, जिसके अंतर्गत कर्मचारी मुद्रा के बदले में उत्पन्न श्रम बेचता है। वे सभी पारिश्रमिक जिन्हें मुद्रा में व्यक्त किया जा सकता

है और जो कि रोजगार के प्रसंविदा के अनुसार एक कर्मचारी को देय होते हैं।'

इस प्रकार मजदूरी वह आर्थिक क्षतिपूर्ति है जो समय (प्रतिदिन, प्रतिघण्टा आदि) के आधार पर श्रमिकों को अनेक कार्य एवं सेवाओं के प्रतिफल में दी जाती है। इसके अंतर्गत परिवार भत्ते, राहत वेतन, वित्तीय सहायता तथा अन्य सामाजिक लाभ सम्मिलित किये जाते हैं।

कर्मचारी की उपक्रम के उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता विकसित करने एवं उनका निष्पादन स्तर उच्चतम बनाये रखने हेतु उनकी सेवाओं के प्रतिफल स्वरूप समुचित मजदूरी, अभिप्रेरणाएं एवं संतोषजनक वातावरण प्रदान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन मदों पर किया गया व्यय जहां एक ओर उपक्रम की परिवर्तनीय लागत में वृद्धि करता है, वहीं दूसरी ओर कार्मिकों का निष्पादन स्तर को प्रभावित करने से उपक्रम के व्यवसाय एवं लाभार्जन क्षमता को भी प्रभावित करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. असंगठित क्षेत्र की श्रमिकों का कल्याण, अजय कुमार सिन्हा, कुरूक्षेत्र, नवम्बर 2006 पृ. 53
2. भारत 2007 प्रकाशन विभाग सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार पेज नं 531
3. डॉ. बद्री विशाल त्रिपाठी : भारतीय अर्थव्यवस्था (नियोजन एवं विकास), किताब महल, इलाहाबाद, 1999 ए पृ. 258
4. श्रमायुक्त कार्यालय मध्यप्रदेश शासन, भोपाल न्यूनतम वेतन एवं मंहगाई भत्ते की दरें पृ. 115–120
5. श्रम कल्याण प्रशासन पृ. 115–117
6. भारत में श्रम नीति पृ. 15–20

SRF

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

कमलेश बख्शी के उपन्यासों में अस्मिता की तलाश

ममता सोलंकी
पीएच.डी. शोधार्थी, हिन्दी अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में नारी जीवन अथवा नारी विमर्श पर चर्चा का प्रारम्भ अस्सी के दशक से माना जा सकता है जिसमें एक ऐसी विचारधारा का प्रारम्भ हुआ जिसको नारी और पुरुष दोनों समान रूप से योगदान करते रहे। नारी स्वयं निरंतर परिवर्तन के दंशों को झेलती रही है फिर भी कभी स्वयं के गौरव के लिए आवाज नहीं उठाई परन्तु नवजागरण का समय सचमुच नारी जागृति का समय था। पाश्चात्य देशों में जहाँ नारी की आजादी की आवाज बुलंद हुई, वहीं भारत में भी नारी विमर्श की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी। जिसे नारीवादी विमर्श कहकर संबोधित किया गया। इसमें नारी केन्द्रित विचार चर्चा ही मुख्य बिन्दु था। बीते कुछ वर्षों में नारी विमर्श ने साहित्यकारों, पाठकों, आलोचकों और सामाजिक कार्यक्षेत्र के व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र की विसंगतियों को हम साहित्य की अनेक विधाओं के माध्यम से जान सकते है। हिन्दी साहित्य की गद्य की छः प्रमुख विधाओं में से उपन्यास भी एक विधा है।

उपन्यासों के माध्यम से नारी विमर्श के क्षेत्र में सक्रिय रहने वाले साहित्यकारों में प्रेमचन्द, रामदरश मिश्र, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, नमिता सिंह, अनामिका आदि का नाम प्रमुख है। इन कथा साहित्यकारों में कमलेश बख्शी जी भी है जिन्होंने नारी विमर्श के परिप्रेक्ष्य को अपने उपन्यासों में जगह दी है। आज नारी विमर्श के साथ नारी अस्मिता का प्रश्न भी जुड़ गया है। नारी विमर्श अस्मिता मूलक विमर्श बनता जा रहा। इसका कारण यह है कि नारी की अस्मिता पर ही सर्वाधिक संकट के बादल मंडरा रहे है। रोज अखबारों में नारी अस्मिता के लुटे जाने की खबरें पड़ने में आती है।

अस्मिता शब्द अस् धातु में मत शब्द जोड़ने से बना है जिसका अर्थ है सम्मान अथवा पहचान। आज नारी व्यक्तिगत रूप में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है। अस्मिता शब्द की व्युत्पत्ति अस्मि + तल् + टाप से हुई है जिसका अर्थ है अहंकार। सामान्य शब्दों में अस्मिता का अर्थ अहंकार, अपनी सत्ता का भाव अथवा अभिमान से। इस शब्द का सबसे पहले हिन्दी साहित्य में प्रयोग अज्ञेय ने किया। आज यह शब्द नारी विमर्श से जुड़ गया। जब यह शब्द नारी अस्मिता से जुड़ा तो इसका अर्थ भी परिवर्तित हो गया। अस्मिता का अर्थ यदि नारी सौन्दर्य में देखा जाए तो इज्जत अथवा सम्मान से है। अस्मिता के संबंध में श्रीमती आशारानी व्होरा का मत है "अस्मिता लड़–झगड़कर जीतने की वस्तु नहीं है बल्कि स्वयं अर्जित करने की साधना होती है। ऐसी साधना जिसके लिए सुशिक्षित या निरक्षर दोनों ही विशेष मायने नहीं रखता है।"[1]

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में कमलेश बख्शी विशिष्ट स्थान रखती है। इनके कथा साहित्य में नारी के सर्वांगीण रूपों के चित्रण मिलते है। परम्परा से ही नारी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। कमलेश बख्शी की नारी को कामुक और भोग्या समझने वाली दृष्टि का विरोध करती है। वह नारी को एक मनुष्यरूप में प्रस्थापित करना चाहती है। कमलेश बख्शी जी ने नारी अस्मिता और संवेदनाओं को रेखांकित कर नारी मन की अतल गहराइयों को बखुबी चित्रित किया है। कमलेश बख्शी जी के नारी पात्र अपनी अस्मिता के प्रति सजग दिखाई देते है। उन्होंने नारी की अस्मिता से जुड़ी हुई समस्याओं पर गंभीर चिंतन और मनन किया है।

वास्तव में नारी अस्मिता क्या है। एक नारी की सम्मान, उसकी इज्जत, उसकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकारना ही अस्मिता की तलाश है। आज की भारतीय नारी अस्मिता की तलाश करती दृष्टव्य होती है। कारण आज सर्वाधिक संकट उसकी अस्मिता का ही बना हुआ है। आधुनिक समय में प्रतिदिन अखबारों में नारी, लड़की यहाँ तक कि नवजात बालिकाएँ भी बलात्कार जैसे घिनौने कृत्य का शिकार हो रही है। ऐसे समय में अस्मिता की तलाश का प्रश्न और सजीव तथा सार्थक है। कमलेश बख्शी जी ने इस समकालीन समस्या को अपने उपन्यासों के माध्यम से हमारे सामने रखा है।

---

[1] आशारानी व्होरा – स्त्री सरोकार, पृ. 34.

'कच्चे पक्के रास्ते' उपन्यास की मोतिया अंत तक अपने अस्तित्व की तलाश करती रहती है। मोतिया की शिक्षा एवं सद्व्यवहार द्वारा जीवन को उज्जवल बनाने का अथक प्रयास व्यर्थ हो जाता है क्योंकि उसका अतीत मरता नहीं रूप बदलकर सामने आता रहता है। सुकुमार ने उसे भोग की, विलास की वस्तु ही समझा और अपमानित किया – 'इतनी सती न बन पाओगी। एक बार कोने पर बैठी औरत गृहस्थ बनेगी। हाँ वहीं जा बैठेगी या जाना ही पड़ेगा।"[2] यही अस्मितामूलक विमर्श की शुरुआत मानी जा सकती है। नारी आज कहीं भी सुरक्षित नहीं है। न घर में न बाहर। हर जगह उसका शोषण किया जाता है। कभी किसी अपनों ने तो कभी किसी अजनबी ने हमेशा नारी की अस्मिता को लुटने की कोशिश की है। ट्विंकल, निर्भया, कविता रैना न जाने कितने हत्याकाण्ड इस अस्मिता की तलाश का जीता जागता उदाहरण हमारे समाज के समक्ष प्रस्तुत करते है। जब–जब नारी ने अपनी अस्मिता की तलाश करनी चाही अपनी अस्मिता को बचाना चाहा उसे बदले में मौत ही मिली। परन्तु ऐसा जघन्य अपराध करने वालों के लिए कोई कानून नहीं है। इस कथ्य की ओर भी कमलेश बख्शी ने 'दिशा खोजती जिंदगियाँ' उपन्यास में उल्लेख किया है – "बलात्कार के केस बुरी तरह बढ़ते जा रहे है। इससे जघन्य अपराध और क्या होगा – इसके लिए कठोर दण्ड होना चाहिए – सजा ए मौत।"[3] कमलेश बख्शी ने समकालीन इस समस्या को गंभीरता से अपने उपन्यासों में उठाया है तथा उपरोक्त कथन के माध्यम से समाधान भी प्रस्तुत किया है। आज नारी अस्मिता की तलाश महत्वपूर्ण एवं गंभीर समस्या है। नारी ही नारी की इस ज्वलंत एवं जघन्य दशा को समझ सकती है। अस्मिता खोकर नारी का समाज में जीना कितना भयावह एवं मुश्किल होता है यह 'कच्चे पक्के रास्ते' की मोतिया के माध्यम से बखूबी समझा जा सकता है। 'दिशा खोजती जिंदगियाँ' में एक बार फिर जानी डाकू के माध्यम से वह इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करती दृष्टव्य है। यथा – "जानी डाकू ने फलां जमीदार को झाड़ से उल्टा लटका दिया क्योंकि उसने गरीब किसान की बेटी की इज्जत लूटी।"[4]

---

[2] कमलेश बख्शी – कच्चे पक्के रास्ते, पृ. 33.
[3] कमलेश बख्शी : दिशा खोजती जिंदगियाँ, पृ. 76.
[4] कमलेश बख्शी : दिशा खोजती जिंदगियाँ, पृ. 23.

अस्मिता की तलाश निम्नवर्गीय नारी की प्रमुख समस्या बनी हुई है। अधिकांशतः गरीब नारी या बालिका को ही पुरुष अपनी हवस का शिकार बनाता है। कारण यह है कि पुरुष यह समझता है कि धन का लालच देकर वह उसे चुप करा देगा अथवा धन के अभाव में वह कानून तक नहीं पहुँच पाऐगी। इसीलिए अधिकांशतः गरीब बालिकाओं की ही अस्मिता लूटी जाती है। उन्हें ही बेइज्जत किया जाता है। कमलेश बख्शी के उपन्यासों की नारी अस्मिता की तलाश करती दृष्टव्य होती है। अपनी अस्मिता की सुरक्षा हेतु वह हथियार उठाने को भी तत्पर है। नारी अस्मिता को लेकर साहित्य में हमेशा ही समय–सापेक्ष अनेकानेक प्रश्न उठाए जाते रहे है। भारतीय नारी की अस्मिता की पहचान के परिप्रेक्ष्य में सामयिक दिशा बोध कराने वालों में कमलेश बख्शी का महत्वपूर्ण स्थान है। समकालीन महिला उपन्यासकारों में कमलेश बख्शी ने अस्मिता की पहचान को लेकर महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे तथा इन उपन्यासों में घटित तथ्यों को औपन्यासिक विन्यास दिया है। उनके उपन्यासों के नारी पात्र घर एवं बाहर के दोहरे दायित्वों से गुजरते हुए अपनी अस्मिता की तलाश जारी रखे हुए है। आज प्रत्येक नारी के समक्ष ये चुनौती है कि वह उपभोक्तावादी संस्कृति को दरकिनार करते हुए अपनी अस्मिता को बनाये रखने के साथ ही साथ बचाये रखे। आज नारी में अस्मिता की तलाश में बाधक मूल्यों के विरोध में विद्रोह करने की क्षमता आ गयी है। कमलेश बख्शी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शारीरिक, मानसिक शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाकर स्वतंत्र अस्मिता बनाने के लिए प्रोत्साहित किया है। साहित्य में नारी अस्मिता का प्रश्न ही सारी बहस का मुख्य मुद्दा रहा है।

नारी को परिवार की सुख शांति समृद्धि के लिए समझौते करते हुए जीना पड़ता है। इसमें वह पुरुष को पूर्ण सहयोग की अपेक्षा रखती है लेकिन अंततः उसे उपेक्षा ही मिलती है। उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है। आज की नारी अपने आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान को कायम रखने में पूर्णतः सक्षम है। इस सत्य को बख्शी जी की नारी पात्रों के माध्यम से भली–भाँति चित्रित किया गया हैं। स्कूल, कॉलेजों, दफ्तरों में महिलाओं पर टिकी देहलोलुप निगाहों की स्थितियाँ जिसका बंबई में बाहुल्य है, बड़े संयमित ढंग से उजागर की गयी है। नारी अपनी अस्मिता को बचाये रखने का जिंदादिल तरीका तलाश कर रही है। यह

तलाश आज भी जारी है। नारी पुरुष के संबंधों में सारा लांछन नारी पर ही लगाया जाता है। सुनीता सोचने लगी – "क्या वह इस घटना की जिम्मेदार है या उसका पति ..... या यह समाज...... जहाँ अकेली रह रही स्त्री को सम्मान से कोई देखना नहीं चाहता......।"[5] यह आज की तथाकथित जीवन की सच्चाई है। नारी अपने सम्मान और स्वाभिमान की तलाश के लिए निरंतर प्रयासरत है।

नारी अस्मिता पर संकट घर की चार दीवारी के बाहर ही नहीं घर के अंदर भी है। पिता द्वारा सौतेली बेटी के बलात्कार की खबरें हम आये दिन अखबार में पढ़ते रहते है। इसी सत्य को लेखिका बख्शी जी अपने उपन्यास 'जिनी यहीं रहेगी' में चित्रित किया है। उपन्यास का एक दृश्य इसी सत्य को रेखांकित करता है – सौतेले पिता ने ग्यारह वर्षीय एन को अकेले में पा बलात्कार किया। माँ को बताने परघर में तूफान आ गया।"[6]

बख्शी आधुनिक विचारों की लेखिका है। उन्होंने न केवल इस समस्या को उपन्यास में उठाया है, अपितु उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। पुरातन काल में जहाँ ऐसी स्थिति में लड़की को घर वालों द्वारा चुप करा दिया जाता है वहीं लेखिका ने इसके खिलाफ आवाज उठाई है। नारी विमर्श के अंतर्गत अस्मिता की तलाश में माँ बेटी की सहारा बनती दृष्टव्य होती है। उपन्यास में बेटी की माँ अपने पति को ऐसे जघन्य अपराध के लिए पुलिस के हवाले कर देती है। ऐसे मानसिक आघात के समय माँ बेटी का सम्बल बनती परिलक्षित होती है। परिवार की अस्मिता बनाये रखने के लिए वह हर संभव प्रयास करती है। बख्शी जी ने नारी के बदलते दृष्टिकोणों को उपन्यास में स्थान दिया है। अब वह पति की अस्मिता की जगह बेटी की अस्मिता ही तलाश में प्रयासरत है।

---

[5] कमलेश बख्शी : दिशा खोजती जिंदगियाँ, पृ. 40.

[6] कमलेश बख्शी : जिनी यहीं रहेगी, पृ. 46.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

शिल्पी श्री हरि श्रीवास्तव जी की कला यात्रा

तनु दुबे
शोध छात्रा, ललित कला, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर
डॉ. (श्रीमती) किरण शुक्ला
विभागाध्यक्ष, ललित कला विभाग, मानकुँवर बाई कला एवं वाणिज्य (स्वशासी) कन्या महाविद्यालय, जबलपुर
भूपेन्द्र निगम
सेवा निवृत्त कौसंलर, शासकीय शिक्षा मनोविज्ञान एवं संदर्शन महाविद्यालय, जबलपुर

भारतीय कला अत्यंत प्राचीन कला है। भारतीय ललित कला के इतिहास को दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होत जाता है कि मनुष्य का चित्रकला एवं मूर्तिकला से अत्यंत ही घनिष्ट संबंध है। चित्रकला एवं मूर्तिकला के माध्यम से मनुष्य अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होता है। इसी तरह श्री हरि श्रीवास्तव जी ने भी अपनी भावनाओं, सोच और चिंतन को चित्रों और मूर्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। यहाँ पर इन्होंने अपनी प्रतिमा को जगह–जगह मूर्तियों के रूप में स्थापित किया। साथ ही ललित कला संस्थान, जबलपुर में कला गुरू होने के नाते उन्होंने अपने शिष्यों को भी चित्रकला और मूर्तिकला की बारीकियों से अवगत कराया। श्री हरि श्रीवास्तव एक खुली पुस्तक के समान थे जिससे कोई भी व्यक्ति जो ग्रहण करना चाहे, ग्रहण करके सुख की अनुभूति कर सकता था। जबलपुर नगर विभिन्न विधाओं के कलाकारों की कर्मस्थली है। यहां के वातावरण में कला की अमिट छाप देखने को मिलती है। कला एवं संस्कृति के इसी संगम के कारण आचार्य विनोबा भावे ने इसे 'संस्कारधानी' नाम से सुशोभित किया था। श्री हरि श्रीवास्तव जी एक ऐसे ही मूर्ति–शिल्पकार थे जिन्होंने मूर्ति शिल्प में जबलपुर को गौरव प्रदान किया। इन विधाओं के अलावा श्री हरि श्रीवास्तव जी को संगीत एवं साहित्य की भी जन्मजात रूचि रही जो उन्हें, उनकी पूज्य अम्माजी से प्राप्त हुई थी। उपरोक्त कलाएँ श्री श्रीवास्तव जी की बहुआयामी प्रतिभा प्रदर्शित करती हैं। श्री हरि श्रीवास्तव अपने शिल्प प्रयोगों में, अमूर्त स्तर के ऐसे अछूते बिन्दुओं को भी स्पर्श करते थे जो विचार एवं भाव के समग्र संश्लेषण में मूर्ति के रूप में उभरकर आ जाते हैं। ये हमेशा मूर्ति कला में नये प्रयोग करते रहे। इनकी कला में संतुलन और संदर्भित शिल्पीय बारीक संकेतों का अनूठा कला विन्यास रहा है। बाहरी आकार देना, कलाकार के संदेश को प्रगट करता है। यह अमूर्त एवं मूर्त दोनों रूप में हो सकता है। यह कहना अतिभयोक्ति नहीं होगी कि श्री हरि श्रीवास्तव जी की कलाकृतियाँ भौतिक रूप में हैं पर उनमें चुम्बक जैसा आकर्षण है जो दर्शक को अनायास ही मंत्रमुग्ध कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि श्री हरि श्रीवास्तव एक ऐसे कलाकार थे जो विभिन्न विधाओं के धनी थे।

भारतीय ललित कला के इतिहास को दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकला एवं मूर्तिकला में परस्पर सम्बन्ध है। चित्रकार ही कालांतर में मूर्तिकार बनकर प्रसिद्ध हुए। ललित कलाओं के 6 प्रकार माने गये हैं–चित्रकला, मूर्तिकला, शिल्पकला (स्थापत्य कला), ग्राफिक कला, व्यावसायिक कला एवं वास्तुकला। यह सर्वमान्य है कि ललित कलाओं पर दृष्टिपात करने पर सौन्दर्य बोध होता है। मध्यप्रदेश का भारत के सांस्कृतिक मान चित्र में अपना विशिष्ट महत्व है। श्री हरि श्रीवास्तव का जबलपुर से प्रगाढ़ नाता था। श्री श्रीवास्तव ललित कला संस्थान, जबलपुर में चित्रकला के साथ मूर्तिकला का भी अध्यापन कार्य करते थे एवं उन्होंने मूर्तिकला को आधुनिक तकनीक से जोड़ने का कार्य किया। वे मूर्तियों के पास घण्टों बैठकर उसका अवलोकन एवं सूक्ष्म निरीक्षण करते थे जिससे उनकी त्रि–आयामी सोच का और अधिक विकास हुआ। वे पारंपरिक, अमूर्त एवं व्यावसायिक शैली में समान रूप से कार्य करते थे। उनके सृजन में एक विशेष प्रकार की लय होती है जो उनके चिंतन के तराशने के फलस्वरूप जीवंत हो जाती थी। वे शिल्प प्रयोगों को करने में सिद्धहस्त थे एवं यही उनकी कला साधना की विशेषता थी। उनके मूर्ति शिल्प, जबलपुर शहर में एवं आसपास के शहरों में प्रतिष्ठित हैं। वे समय–समय पर प्रदर्शनियों के माध्यम से मूर्तियां एवं चित्रों को जन

SRF

साधारण तक पहुँचाते थे, जिससे जबलपुर में विद्यार्थियों में मूर्तिकला और अधिक लोकप्रिय हुई।

अध्यापन के क्षेत्र में उन्होंने छात्रों को उस गहराई का आभास करना सिखाया जिसकी वे मूर्ति बनाते थे। उन्होंने बताया कि **''किस तरह सृजन का सुख और अभिव्यक्ति का आनन्द मन में परिपक्व होता है और बाहर निकलने का रास्ता देखता है, जिससे एक जादुई समीकरण की पुष्टि हो जाती है। इस अभिव्यक्ति का अपना एक सम्मोहन होता है जो कल्पना की सीमा के पार ले जाकर शांत व विरेचित करता है जिससे अभिव्यक्ति का अपार आनन्द होता है।''**

मूर्तिकार के रूप में उनका मानना था कि सृजन एक उच्चतम बिन्दु के बाद एक अद्भुत ऊर्जा के रूप में निर्झर की तरह प्रवाहवान हो जाता है। यह देखकर कलाकार इसमें असीम तृप्ति और सुख का अनुभव करते हैं।

श्री हरि श्रीवास्तव जी ने अखिल भारतीय कला जगत में मूर्तिकला के क्षेत्र में विशिष्ट ख्याति अर्जित की है। वे अत्यंत सादगीपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे एवं अध्यापन की अवधि में ''डिमान्सट्रेशन (प्रदर्शन) को आवश्यक मानते थे जिससे विद्यार्थी अच्छी तरह कला की बारीकियों को सीख सकें। उनकी कला बहुआयामी है एवं संभवतः उनका जीवन उनके विद्यार्थियों के साथ ही शिक्षकों एवं अन्य मिलने–जुलने वालों के लिये एक खुली पुस्तक के समान था जिससे कोई भी व्यक्ति जो ग्रहण करना चाहे, ग्रहण करके आत्मीय सुख की अनुभूति कर सकता था।

संभवतः इसीलिये यह कहना अनुचित नहीं होगा कि श्री हरि श्रीवास्तव अपने पारिवारिक एवं कला के जीवन से इसीलिए इतने संतुष्ट थे कि वे कहा करते थे–

''साईं' इतना दीजिये जामे कुटुम समाये।
मैं भी भूखा न रहूँ साध न भूखा जाये।।''

इनकी यह अभिव्यक्ति उनके जीवन की सादगी को प्रदर्शित करती है। वे अक्सर कहा करते थे कि– **''कलाकृति बनाने के पूर्व जो विचार आता है उसकी तुलना एक बीज के रूप में की जा सकती है क्योंकि बीज जब जमीन में रोपा जाता है तो खाद पानी से उसे सींचने की जरूरत होती है जिससे वह पौधे का रूप लेकर पल्लवित होता है। इसी तरह विचार जब मनःपटल में गहरे रोपा जाता है अर्थात् उसके बारे में चिंतन किया जाता है तो प्रबल इच्छा–शक्ति खाद–पानी का रूप ले लेती है, जिससे विचार कलाकृति का रूप ले लेते हैं एवं विचार कलाकृति के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। यह कलाकार के विचार की अभिव्यक्ति होती है जो कलाकार को एवं कला–प्रेमियों को असीम आनंद प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कलाकार के मन में जो सुख की अनुभूति होती है वह बाहर निकलकर कलाकृति का रूप ले लेती है।''**

जबलपुर नगर विभिन्न विधाओं के कलाकारों की कर्मस्थली है। यहाँ के वातावरण में कला की अमिट छाप देखने को मिलती है। कला एवं संस्कृति के इसी संगम के कारण आचार्य विनोबा भावे ने इसे **'संस्कारधानी'** नाम से सुशोभित किया था। कला एवं संस्कृति के दृष्टिकोण से यहाँ स्थित भातखण्डे संगीत महाविद्यालय से अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञ प्राप्त हुए जिन्होंने संपूर्ण देश में शहर का नाम रोशन किया। इसी कड़ी में ललित कला संस्थान की स्थापना के साथ जबलपुर के एवं अन्य शहर के कलाकारों ने बाहर से आकर कला साधक के रूप में शिक्षा ग्रहण की। इन्होंने अपनी कला के सृजन के माध्यम से जबलपुर को समृद्ध किया है एवं कला क्षेत्र में जबलपुर का वर्चस्व स्थापित किया।

श्री हरि श्रीवास्तव जी एक ऐसे ही मूर्ति–शिल्पकार थे जिन्होंने मूर्ति शिल्प में जबलपुर को गौरव प्रदान किया है। उनका कहना है –

''मैं एक शिल्पी हूँ, मेरा वास्ता कला से है। मूर्तियाँ गढ़ता हूँ, तराशता हूँ। ललित कला की शिक्षा गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित शांति निकेतन से प्राप्त करने के पश्चात् कला निकेतन में फाइन आर्टस कॉलेज में प्राध्यापक एवं प्राचार्य के रूप में विद्यार्थियों को ललित कला की शिक्षा प्रदान करता रहा हूँ। साथ ही संगीत एवं साहित्य की भी जन्मजात रूचि रही है जो मुझे पूज्य अम्माजी से प्राप्त हुई है।''

उपरोक्त विचारों से श्री हरि श्रीवास्तव जी की शिल्प कला के साथ साहित्य साधना में रूचि का पता

चलता है। विचारों को लेखनीबद्ध करना एवं मूर्ति शिल्प के रूप में प्रस्तुत करना उनकी विशेषता थी एवं उसी विशेषता के लिये उन्होंने प्रसिद्धि पायी। साहित्यकार होना एवं मूर्ति शिल्पकार होना ये गुण उनमें उनकी विशेषज्ञता को प्रदर्शित करते हैं।

इसी प्रकार एक और अभिव्यक्ति में श्री हरि श्रीवास्तव जी के विचार निम्नानुसार हैं, जो अविस्मरणीय है एवं उनकी वचनबद्धता को बड़े ही आत्मीय रूप में प्रदर्शित करते हैं–

''परमात्मा ने जब यह संकल्प लिया कि ''एको हम बहुय्याम'' अर्थात् ''मैं एक से अनेक हो जाऊँ'' तब–तब ईश्वर ने अपनी उपजी माया शक्ति से इस संसार की रचना की जिसका अभिन्न निमित्त प्रदानकर्त्ता भी वही ईश्वर है। उसी ईश्वर से यह संसार बना है, उसी में यह स्थित है तथा अंत में यह उसी में समाहित हो जाता है। हम सब जीव बनकर इसी संसार में जी रहे हैं।''

''कहा गया है कि यह संसार मायामय है सत्य नहीं हैं क्योंकि सत्य वह होता है जिसकी सत्ता सदैव बनी रहे किंतु जगत तो नश्वर है अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी घट रहा है, वह मात्र एक नाटक ही है। हम सब जीव उस नाटक के पात्र हैं। सभी पात्र अपना–अपना पार्ट अदाकर इस असार–संसार से विदा लेते हैं।''

उपरोक्त विचार श्री हरि श्रीवास्तवजी की बहुआयामी प्रतिभा को प्रदर्शित करते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि मूर्ति शिल्प एक दुर्लभ कला विधा बनती जा रही है, जिससे उसकी विशेषता के कारण अपवाद कला भी कहा जाने लगा है। आधुनिक प्रयोग और भाव बोध के स्तर पर मूर्ति शिल्प को बहुत अधिक कलाकार नहीं अपनाते। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मूर्ति शिल्प एक विशेष प्रकार के कौशल की अपेक्षा करता है जो गिने–चुने शिल्पकारों की धरोहर होती है। मूर्ति शिल्प के रूप में ऐसा लगता है कि जैसे कला भाषामयी हो गई है, एवं वह बोलने लगी है। उनके अनुसार –

''अभिव्यंजना कहाँ दुरूह होती है। आकृतियाँ महज मूर्त नहीं होतीं वरन् अमूर्त अनुभूति, भाव, चेतना और आकुल रचना स्वभाव को एक कला शब्दावली भी देती है। इसकी पृथक भाषा होती है जिसे कला मर्मज्ञता और संवेदना के स्तर पर ही महसूस किया जा सकता है। आकार और आकृति का भेद जहाँ मिटने लगता है, वहाँ कलाकार की कला बोलती है। शिल्पगत प्रयोग सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर की भावाभिव्यक्ति को रूपाकार देने की क्षमता रखते हैं। सतह को सपाट और बेहद चिकनाकर शिल्प में आभा पैदा करने के लिए मूर्ति शिल्प में बहुआयाम, वक्र और गोलाइयों के अर्थ माध्यम बनते हैं। सृजना म एक खास किस्म की गत्यात्मकता होती है जो तराश के कोणों, लकीरों और मोड़ों से आवेशित होती है। शिल्प में चिंतन और बोधगत तरलता के साथ एक संकेन्द्रण भी घटीभूत होता हुआ परिलक्षित होता है।''

वे अपने शिल्प प्रयोगों में, अमूर्त स्तर के ऐसे अछूते बिन्दुओं को भी स्पर्श करते थे जो विचार एवं भाव के समग्र संश्लेषण में मूर्ति के रूप में उभरकर आ जाते हैं। श्री हरि श्रीवास्तव मूर्ति कला में हमेशा नये प्रयोग करते रहते थे। उनकी मूर्तिकला में टेराकोटा, सीमेंट या धातु का उपयोग होता है परन्तु उनमें स्थूल और आयामीय शिल्प की तराश, टैक्सचर, संतुलन और संदर्भित शिल्पीय बारीक संकेतों का अनूठा कला विन्यास होता है। उन्होंने शांति निकेतन में जो अध्ययन किया था, उसके कारण उनकी शिल्पकला में शांति निकेतन कला की छाप है। संभवतः इसीलिए उनकी मूर्तियाँ आधुनिक मूल्यों तथा मानवीय संवेदनाओं के संप्रेक्षण का सार्थक प्रयोग हैं। उनके अनुसार–

''शिल्प के चारों और के वातावरण का प्रत्यक्षीकरण महत्वपूर्ण हो जाता है जो कलाकार के चिंतन को पूर्णता प्रदान करता है। रूप/आकार (फार्म) कला के हर रूप के लिए चाहे वह पेंटिंग हो या अभिव्यक्ति का कोई अन्य माध्यम। यह अवधारणा इतनी ही पुरानी है जितनी की कला स्वयं। आदिकाल से इसका वैसा का वैसा ही रूप बना हुआ है, जैसा आज है, पर इसके प्रस्तुतिकरण के आधुनिक तरीके होते जा रहे हैं।''

मूर्तिकला का एक रूप, मूर्ति की सामग्री, चाहे वह मोम हो, पत्थर हो, लकड़ी हो या अन्य कोई, केवल बाहरी आकार देना होता है। कहा भी गया है–**''मूर्ति में कलाकार की कल्पना तो भीतर रहती है,**

मूर्तिकार सिर्फ अनावश्यक भाग को छेनी की सहायता से अलग कर देता है। कलाकार की अपनी कला की अभिव्यक्ति का यह एक अच्छा उदाहरण है।''

''बाहरी आकार देना, कलाकार के सन्देश को प्रगट करता है। यह अमूर्त एवं मूर्त दोनों रूप में हो सकता है। महत्वपूर्ण है–कलाकृति के पीछे, कलाकार द्वारा दिया जाने वाला सन्देश। समय के साथ–साथ कलाकार/मूर्तिकार के चिंतन की अभिव्यक्ति परिमार्जित होते जाती है एवं एक नवाचार के माध्यम से कलाकृति का उद्‌गम होता है। अलग–अलग कलाकार, उस सम्पूर्ण को, जो गोलाकार, घनाकार, अण्डाकार या कोई अन्य आकार का हो, उसे आकार देकर एक शैली को जन्म देते हैं। आवक्ष प्रतिमाएँ भी इसका एक उदाहरण हो सकती हैं।''

''इसके साथ ही मूर्ति के माध्यम को भीतर से उकेरना, मूर्ति को गहराई प्रदान करता है। इनके माध्यम पारदर्शी नहीं होते पर उकेरा गया भाग इसे पारदर्शिता प्रदान करता है।''

समय के साथ मूर्तिकला के परिदृश्य में परिवर्तन होते गये हैं जो समय की माँग और बदलते परिवेश में सौन्दर्य बोध की अनुभूति के फलस्वरूप हैं। महत्वपूर्ण होता है मूर्तिकार द्वारा दिया गया अभिनव सन्देश जो दर्शक या प्रशंसक के अंर्तमन तक को झंकृत कर देता है।

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि श्री हरि श्रीवास्तव जी की कलाकृतियाँ भौतिक रूप में हैं पर उनमें चुम्बक जैसा आकर्षण है जो दर्शक को अनायास ही मंत्रमुग्ध कर देता है। उनका कहना था कि–**''जिस अवधारणा को लेकर कार्य शुरू किया जाता है, कालांतर में मूर्ति के पूर्ण होते–होते विचार/चिन्तन के और अधिक परिष्कृत होने से अंतिम रूप एक अलौकिक आकर्षण प्रदान करता है। कई बार अलग–अलग टुकड़ों को जोड़कर भी मूर्ति को भव्यता प्रदान की जाती है जो मूर्तिकार की मौलिकता को प्रदर्शित करता है।''**

श्री हरि श्रीवास्तव जी का मानना था कि मूर्ति का अर्थ अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। किसी शिल्प को पूर्ण होते–होते काफी समय लग जाता है। ऐसी स्थिति में कालांतर में मूर्ति का अर्थ यथासंभव बना रहे यह आवश्यक है। मूर्ति के आकार, गोलाइयाँ, बहुत बारीक कटाव, आदि कलाकार की चिंतन की अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं। ससामयिक अर्थ अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस तरह की मूर्तियों में आवक्ष या पूर्ण मानव का शिल्प अत्यंत महत्वपूर्ण होता है जहाँ चेहरे की एक–एक सूक्ष्मता कलाकार की सरल गोलाइयों के निर्माण से मुखर हो जाती है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि श्री हरि श्रीवास्तव एक ऐसे कलाकार थे जो विभिन्न विधाओं के धनी थे। साहित्य, सामाजिक कार्य, चित्रकारी, मूर्तिकला में उनकी दक्षता इस बात का प्रमाण हैं कि यदि मनुष्य ने लगन हो, काम करने की प्रेरणा हो एवं समाज को कुछ देने की ईमानदार भावना हो तो वह माऊंट एवरेस्ट जैसी ऊँचाइयों को छू सकता हैं यह बात श्री हरि श्रीवास्तव की कला में समाहित है। श्री हरि श्रीवास्तव जी की आध्यात्मिकता के फलस्वरूप उनमें बहुआयामी प्रतिभा थी जिसके फलस्वरूप वे अनेक विधाओं में दक्ष थे एवं उन्होंने कभी भी अपने संदर्भ– काल में इस बात का दंभ नहीं किया एवं संस्कारधानी की माटी से जुड़े रहे। ऐसे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी बिरले ही मिलते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

- अग्रवाल, डॉ. जी.के., कला निबंध, अलीगढ़, ललित कला प्रकाशन, प्रथम संस्करण
- दास, रायकृष्ण, भारतीय मूर्तिकला, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा
- हाल्दार, कुमार, असित (1959) भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, चन्द्रलोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण
- श्रीवास्तव, हरि (2011) अम्माजी, कपिल श्रीवास्तव, जबलपुर, प्रथम संस्करण
- श्रीवास्तव, हरि (2017) साक्षात्कार एवं विस्तृत चर्चा

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारत में संचार प्रौद्योगिकी का विकास

डॉ. नुपूर निखिल देशकर
सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य), शा. मानकुंवर बाई महिला महाविद्यालय, जबलपुर
अंकित पाण्डेय
शोध–छात्रा (वाणिज्य), रा.दु.वि.वि. जबलपुर

भाषा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संप्रेषण के माध्यम से ही मनुष्य द्वारा सूचनाओं का आदान–प्रदान एवं संग्रहण किया जाता है। गत शताब्दी में सूचना एवं संपर्क के क्षेत्र ने अभूतपूर्व उन्नति की है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के कारण विश्व का अधिकांश भाग सम्बद्ध हो गया है। सूचना प्रौद्यागिकी क्रांति ने ज्ञान के माध्यम से नए मार्ग उत्पन्न किए हैं। बुद्धि एवं भाषा के संयोग द्वारा सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से आर्थिक सम्पन्नता की दिशा में भारत अग्रसर हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य के स्वरूपों में ई–कॉमर्स, इंटरनेट के माध्यम से डाक भेजना एवं ई–मेल जैसी नई तकनीकों से सम्भव हो गया है। ऑनलाइन सरकारी कामकाज जैसे विषयों से युक्त ई–प्रशासन (ई–पंजीकरण) एवं ई–बैंकिंग द्वारा विभिन्न क्षेत्रों के अंतर्गत व्यापार, शिक्षा जैसे क्षेत्र ऑनलाइन हो गए हैं और परिणामतः सूचना प्रौद्योगिकी का निरंतर प्रचार–प्रसार तथा विकास हो रहा है। इस क्षेत्र में निरंतर विभिन्न प्रयोग किए जा रहे हैं जो अनुसंधान की गति में वृद्धि भी कर रहे हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी में सूचना, समंक (डाटा) तथा शिक्षा एवं ज्ञान का आदान–प्रदान दैनिक मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विस्तृत होते जा रहा है। देश की सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, राजनीतिक, व्यावसायिक, वाणिज्यिक परिस्थितियों तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास सतत् परिलक्षित होता है।

इलेक्ट्रॉनिक एवं डिजिटल उपकरणों की सहायता से इस क्षेत्र में निरंतर प्रयोग किए जा रहे हैं। वर्तमान नवीनयुग में ई–कॉमर्स, ई–मेडीसिन, ई–एजुकेशन, ई–गवनर्स, ई–बैंकिंग, ई–शॉपिंग आदि जैसे इलेक्ट्रॉनिक माध्यम विकसित हो रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से विभिन्न शांति संदेशों का प्रसार कर उसे सामाजिक सौहार्द के साथ विकास के स्वरूप में भी परिवर्तित कर दिया गया है।

कुछ क्षेत्र प्रौद्योगिकियों का सामान्य प्रतिमानों की प्ररिधि में ही परिवर्तन कर रहे हैं, जिनका संस्कृति के मध्य विविधताओं से सामंजस्य नहीं है। विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक आयामों के अंतर्गत सूचना संचार प्रौद्योगिकी का स्वतंत्र स्वरूप या नागरिकों पर अधिक नियंत्रण अथवा निगरानी के माध्यमों हेतु प्रौद्योगिकी का रूप ले सकता है। प्रौद्योगिकी द्वारा कुछ विकल्पों को सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से, अथवा अन्य व्यक्तियों की तुलना में सामाजिक रूप से तर्कसंगत आधार देकर सामाजिक विकल्प प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रौद्योगिकी के विकास को प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित अथवा बाधित करने में शासकीय नीतियों और अंतरराष्ट्रीय नियमों का प्रभाव अत्यंत प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के नए स्वरूपों और प्रसारण माध्यमों अर्थात् चैनलों में क्रांतिकारी परिवर्तन अनेकों बार अनावश्यक एवं साधारण सिद्ध होता है। इससे टेलीविजन प्रसारण की विविधता अथवा समुदायों की एकजुटता की कमी उत्पन्न हो सकती है। साथ ही इससे विशिष्ट कौशल, सम्बंधित मूल्यों अथवा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले लोगों को अलग–अलग लाभ प्रदान किया जा सकता है।

सूचना संचार प्रौद्योगिकी के विभिन्न अनुप्रयोगों से उत्पादन को और अधिक कुशल बनाया जा सकता हैं। संचालित उत्पादों एवं सेवाओं के प्रसार में वृद्धि कर उसमें नवप्रर्वतन किया जा सकता है। तुलनात्मक स्वरूप में यह सुगम है जिसके मेल से सूचना संचार प्रौद्योगिकी के माध्यम समय और दूरी की समस्या एवं उसके महत्व को कम किया जा सकता है। सामाजिक शोध इसमें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है क्योंकि समाज के विभिन्न क्षेत्रों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी का विकास; सामाजिक, संगठनात्मक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं की जटिल भूमिकाओं को समझने के कार्य में सहयोग प्रदान कर सकता है।

इसके पश्चात् भी सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से तकनीक, संगठन एवं समाज के अंतर्गत परिवर्तन का जटिल रूप परस्पर निर्भरता की नीति हेतु प्रणालियों का विकास कर सकता है। विभिन्न संदर्भों में समस्याग्रस्त और आकस्मिक परिस्थितियों का निदान सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा किया जा सकता है।

संचार का विकास क्रम :–

1. 1980 1G – 1980 के दशक में संचार की पीढ़ी का प्रारम्भ एवं अविष्कार हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। इसके अंतर्गत केवल वार्तालाप ही सम्भव था। एस.एम.एस. तथा अन्य सुविधाओं का लाभ उपभोक्ताओं को प्राप्त नहीं था।
2. 2 G 1G के 15 वर्षों पश्चात् मोबाईल सेवा की दूसरी पीढ़ी का अविष्कार हुआ और यह चलन में आई। इसके अंतर्गत मोबाईल संदेशों का आदान–प्रदान प्रारम्भ हो गया। इसी काल में इंटरनेट भी आरम्भ हुआ। परन्तु इंटरनेट की गति अत्यंत धीमी थी। इस समय मोबाइल का उपयोग बहुत महंगा था। परिणामतः इसका उपयोग उन्हीं लोगों द्वारा सम्भव था जो पर्याप्त धन व्यय कर सकते थे।
3. 2.5 G 2G के लगभग 5 वर्ष पश्चात् 2.5G लोगों के मध्य लोकप्रिय हुआ। इसमें इंटरनेट की गति में वृद्धि हुई और वे इंटरनेट के विषय में जागरूक हो गए। यू–ट्यूब का प्रारम्भ भी इसी काल में हुआ था पर यह कम प्रचलित था।
4. 2.75 G 2.5 G के 5 वर्ष पश्चात् 2.75 G आया जिसमें इंटरनेट की गति में और वृद्धि हुई जो 128 kbps तक हो गई और इसके उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ने लगी।
5. 3 G 3 G के आगमन के पश्चात् इंटरनेट की गति पहले से बहुत अधिक बढ़ गई तथा यह सर्वाधिक 2000 kbps तक हो चुकी थी। इसी काल में वीडियो कॉलिंग का भी प्रारम्भ हुआ।
6. 4 G इसमें एचडी वीडियो कॉल का प्रारम्भ हुआ और मोबाईल ब्रॉडबैंड सेवा भी शुरू हो गई। मोबाईल डाटा इस काल में बहुत महंगा था जो बाद में सस्ता होता गया। और अधिक तीव्र गति वाली 5 जी सेवा भी शीघ्र प्रारम्भ होने वाली है।

संचार सेवाओं का आधुनिक विकास :– एक वृहद जनसंख्या, टेलीफोन सेवाओं का निवेश स्तर और आर्थिक विकास में सशक्तता के कारण उपभोक्ताओं की आय एवं व्यय में वृद्धि के कारण भारत विश्व में सर्वाधिक तीव्र गति से अग्रसर दूरसंचार बाजार का स्वरूप धारण करने में सहायता की है। राज्य के स्वामित्व वाला प्रथम दूरसंचार सेवा संचालक (ऑपरेटर) बीएसएनएल को कहा जा सकता है। भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) की स्थापना तत्कालीन डीटीएस (दूरसंचार सेवा विभाग) के निगमीकरण द्वारा की गई जो दूरसंचार सेवाओं के प्रावधान हेतु उत्तरदायी एक शासकीय निकाय था।

तत्पश्चात्, दूरसंचार नीतियों के संशोधन द्वारा भारती एयरटेल, टाटा इंडिकाम, रिलायंस, वोडाफोन, आइडिया सेल्युलर, एयरसेल और लूप मोबाइल आदि जैसी निजी कम्पनियों ने बाजार में प्रवेश किया। भारत में एक समय वह भी आया जब वर्ष 2008–09 में ग्रामीण भारत की मोबाइल विकास दर नगरीय भारत से अधिक हो गई। वर्तमान में भारती एयरटेल भारत की सर्वाधिक बड़ी दूरसंचार कम्पनी है। मार्च 2010 तक निजी कंपनियों के साथ 2 करोड़ नवीन उपभोक्ता जुड़ गए जिससे भारत का मोबाइल फोन बाजार विश्व में सबसे तेजी से बढ़ रहे बाजारों में से एक हो गया।

देश में टेलीफोनों की कुल संख्या 31 जुलाई 2010 तक 68.83 करोड़ से अधिक हो गई थी। जुलाई 2010 में टेलीफोन के कुल घनत्व में 58.17 प्रतिशत की वृद्धि परिलक्षित हुई। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) ने 20 जुलाई 2010 को प्रेस विज्ञप्ति के माध्यम से एक सूचना दी जिसके अंतर्गत जुलाई 2010 में, वायरलेस अर्थात् मोबाइल क्षेत्र के अंतर्गत 19 लाख नवीन उपभोक्ता शामिल हुए थे। वर्ष 2011 में कुल मोबाइल उपभोक्ताओं का आधार अब 65.24 करोड़ से अधिक हो गया था। वायरलाइन अर्थात् लैंडलाइन क्षेत्र के उपभोक्ताओं की संख्या में उल्लेखनीय कमी आई और उनका ग्राहक आधार 2010 में 3.59 करोड़ था जिसमें 2 लाख उपभोक्ताओं की कमी दर्ज की गई थी। वर्तमान में स्मार्टफोन सेवा का उपयोग कर रहे लगभग 70 करोड़ मोबाइल उपभोक्ता भारत में हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत में संचार सेवा एवं प्रौद्योगिकी का निरंतर विकास हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि यह प्रगति केवल समंकों अथवा धन प्राप्ति के अतिरिक्त वास्तविक उन्नति अर्थात् शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि जैसे मूलभूत क्षेत्रों पर आधारित हो और इन क्षेत्रों में जो लोग कम लाभ प्राप्त कर रहे हैं अथवा लाभ से वंचित है, उन्हें भी इससे सम्बद्ध कर देश के मूलभूत आधार को सशक्त किया जाए।

संदर्भ :–

- गुप्ता बी.डी., भारत में जनसम्पर्क विश्वविद्यालय प्रकाशन, आगरा (उ.प्र.) 1994
- गोपाल मदन (2004), जनसंचार माध्यम, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला
- देसाई, एम.वी., कम्यूनिकेशन पालिसीज इन इंडिया, यूनेस्को, 1977, भाग–1

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

दरभंगा जिला में कृषि विविधीकरण की सार्थकता

अनामिका कुमारी
शोध छात्रा, विश्वविद्यालय अर्थशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा
प्रो. हिमांशु शेखर
शोध पर्यवेक्षक, विश्वविद्यालय प्राचार्य एवं अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अर्थशास्त्र विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

उत्तरी बिहार में दरभंगा प्रमंडल के अन्तर्गत दरभंगा एक जिला है। सन 1875 में तिरहुत से अलग कर दरभंगा को जिला बनाया गया था। मिथिला क्षेत्र का यह जिला अपनी प्राचीन संस्कृति और बौद्धिक परंपरा के लिए विख्यात रहा है। मिथिला संस्कृति का केन्द्र रहा यह जिला आम, मखाना, मछली तथा मिथिला पेंटिंग के लिए भी बहुत प्रसिद्व है।

दरभंगा जिला का कुल क्षेत्रफल 2,279 वर्ग कि0 मी0 है। 2001 की जनसंख्या के अनुसार इस जिला की कुल जनसंख्या 32,85,493 जिसमें शहरी क्षेत्र एवं ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या क्रमशः 2,66,834 एवं 30,18,639 है। जिले में स्त्री –पुरूष अनुपात 910/1000 है, तथा जन्म के समय जीवन प्रत्याशा 47. 6 वर्ष है। यहाँ की साक्षरता दर 35.42% जिसमें पुरूष साक्षरता दर 45.32% एवं स्त्री साक्षरता दर 24.28% है, वहीं 2011 की जनगणना के अनुसार इस जिले की कुल आबादी 3,937,385 है। जिसमें पुरूषों की संख्या 2,059,949 एवं महिलाओं की संख्या 18,77,436 है। दरभंगा जिला के अंतर्गत 3 अनुमंडल, 18 प्रखंड, 329 पंचायत, 1269 गाँव एवं 23 थाने है।

दरभंगा जिला में कोई चिन्हित वन प्रदेश नहीं है, समूचा जिला एक समतल उपजाऊ क्षेत्र है। जहाँ हिमालय से उतरने वाली नदियों का जाल बिछा है। कमला बागमती कोशी ,और अधवारा समूह की नदियों से उत्पन्न बाढ़ हर वर्ष लाखों लोगो के लिए तबाही लाती है। औसत सलाना 1142 मिमी वर्षा का अधिकाशं भाग मानसून से प्राप्त होता है।

दरभंगा जिला की चूना युक्त दोमट किस्म की मिट्टी रबी एवं खरीफ फसलों के लिए है उपयुक्त है। भदई, अगहन, धान, गेहूँ, मकई, रागी, तिलहन, मसूर, खेसारी, मूंग एवं आलू आदि प्रमुख फसलें है। जिले में कुल क्षेत्रफल का 1,98,415 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि है। यद्यपि दरभंगा जिला वन रहित प्रदेश है, फिर भी निजी क्षेत्रों में वानिकी का अच्छा प्रसार देखने को मिलता है। गाँव के आसपास जमीन पर सीसम, खैर, खजूर, आम, लीची, अमरूद, कटहल, पीपल, इमली आदि पर्याप्त मात्रा में दिखाई देते हैं। जिले में प्रायः हर हिस्से में चौर क्षेत्रों में पोषक तत्वों से भरपुर मखाना यहाँ का खास उत्पाद है। यहाँ बड़े पैमाने पर किसान मखाना की खेती करते हैं।

दरभंगा जिला प्रतिवर्ष बाढ़ एवं सुखाड़ की स्थिति से ग्रस्त रहता है, जिसका कृषि पर गहरा प्रभाव दिखाता है। यहाँ की कृषि बाढ़ और सुखाड़ के कारण काफी पिछड़ी हुई है। कृषि की स्थिति को देखते हुए कृषि विविधीकरण इस जिला के लिए वरदान साबित हो सकती है। किसान कृषि विविधीकरण के माध्यम से अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करते हुए रोजगार के विभिन्न अवसर उत्पन्न कर सकते हैं।

कृषि विविधीकरण के पहलू :– कृषि विविधीकरण के दो पहलू हैं:–

1)एक तो फसलों के उत्पादन की प्रणाली में परिवर्तन से संबंधित।
2) दूसरा श्रम शक्ति को खेती से हटाकर अन्य संबंधित कार्यो जैसे :– पशुपालन ,मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, कुक्कुट पालन, आदि क्षेत्रों में लगाना।

विविधीकरण की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हो रही है, क्योकि सिर्फ खेती के आधार पर आजीविका कमाने में जोखिम बहुत अधिक हो जाता है। अतः विविधीकरण द्वारा किसान न केवल खेती के जोखिम को कम करने में सफल होगे बल्कि ग्रामीण जन समुदाय को उत्पादक और वैकल्पिक धारणीय आजीविका के अवसर भी उपलब्ध हो पाएंगे। विविधीकरण के माध्यम से किसान कृषि कार्यो के उपरान्त जिस अवधि अथवा मौसम में बेकार रहते हैं,

उनमें वे सहायक कृषि अपनाकर अपनी अल्प बेरोजगारी को दूर कर सकते हैं। गरीबी अल्प रोजगार एवं प्रच्छन्न बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा प्राप्त करने के लिए तथा अपनी आर्थिक के अतिरिक्त सहायक कृषि को अपनाने का प्रयास करते हैं।

कृषि क्षेत्र में भू–जोतों के घटते आकार के कारण तथा संगठित उद्योग के कुछ विशिष्ट कारणों से जरूरतमंद रोजगार के अवसर सृजित करने में असमर्थ रहा है। इसलिए मुख्य रूप से कृषकों का ध्यान कृषि विविधीकरण के उपर ही जाता है। क्योंकि कृषि विविधीकरण हो ऐसा उपाय है, जिसमें गाँवो में ही रोजगार की संभावनाएँ बढ़ेगी और कृषि से अधिक से अधिक लोगों को रोजगार मिल सकेगा। कृषि विविधीकरण क्रांतिकारी अभियान है, जिसे अपनाकर कम समय में अधिक से अधिक लाभ कमा सकते हैं।

कृषि विविधीकरण के अन्तर्गत आनेवाले सहायक कृषिः–

1) पशुपालन :– ग्रामीण क्षेत्रों में किसान समुदाय प्रायःमिश्रित कृषि पशुधन व्यवस्था का अनुकरण करते हैं। इसमें गाय–भैंस बकरियाँ और मुर्गी–बतख पालन प्रमुख है। मवेशियों के पालन से परिवार की आय में अधिक स्थिरता आती है। साथ ही खाद्य सुरक्षा, पोषण आदि की व्यवस्था भी परिवार की अन्य खाद्य उत्पादक गतिविधियों में अवरोध के बिना प्राप्त हो जाती है।

आज पशुपालन में छोटे व सीमांत किसानों और भूमिहीन श्रमिकों को आजीविका कमाने के वैकल्पिक साधन सुलभ करा रहे हैं। इस क्षेत्र में महिलाएँ भी बहुत बड़ी संख्या में रोजगार प्राप्त कर रही है। अब मांस, अंडे आदि भी उत्पादन क्षेत्र के विविधीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण सह–उत्पाद सिद्ध हो रहे हैं।

2) बागवानी :– दरभंगा जिला में कृषकों ने वर्तमान में बगान उत्पादों को अपना लिया है। इनमें प्रमुख हैः– फल–सब्जियाँ, रेशेदार फसले औषधीय तथा सुगंधित पौधे इत्यादि। ये सभी फसले रोजगार के साथ–साथ भोजन और पोषण उपलब्ध कराने में भी बड़ा योगदान दे रही है। बागवानी एक धारणीय रोजगार विकल्प के रूप में उभरा है, और इसे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

3) **मछली पालन :–** दरभंगा प्रमंडल मछली उत्पादन के लिए क्षेत्र में अग्रणी रहा है। दरभंगा जिला में तालाबों एवं पोखरों की संख्या ज्यादा होने के कारण मछली उत्पादन में बढ़ावा देकर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है क्योंकि मछली उत्पादन ऐसा व्यवसाय है, जिसे निर्धन से निर्धन वयक्ति भी अपना कर अच्छी आय प्राप्त कर सकता है। तथा मछली पालन को बढ़ावा देकर ग्रामीण सामाजिक स्तर सुधारा जा सकता है।

4) मछली पालन –सह–सिंघाड़ा उत्पादन :– दरभंगा जिला में चौर एवं छोटे–छोटे पोखरों की अत्यधिक संख्या होने के कारण उनमें मछली पालन के साथ–साथ सिंघाड़ा की उपज भी प्राप्त की जा सकती है। सिंघाड़ा एक उत्तम खाद्य पदार्थ है, जिसकी फसल बरसात में लगाया जाता है, एवं उपज अक्टुबर माह से जनवरी माह तक ली जा सकती है।

5) मखाना उत्पादन :– दरभंगा एवं इसके आस–पास का जिला मखाना उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। दरभंगा क्षेत्र में मखाना उत्पादन को देखते हुए मखाना अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की गई। इस केन्द्र के स्थापित होने के बाद मखाना की खेती में बदलाव आया है। मिथिलांचल और इसके आसपास के इलाकों में प्रतिवर्ष 13 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में मखाने की खेती होती है।

कृषि विविधीकरण के क्षेत्र मे नये प्रौद्योगिकीय नवाचार से सार्थकता :– वर्तमान में किसानों की समस्याओं पर गौर किया जाए तो पता चलता है कि किसान जलवायु परिवर्तन के कारण गंभीर समस्या का सामना कर रहे हैं। लेकिन हाल के वर्षो में प्रौद्योगिकीय नवाचार में तेजी आई है, लेकिन नई प्रौद्योगिकी के जोखिम और फायदों पर गौर करना जरूरी है, क्योंकि डीडीटी और अन्य कीटनाशकों की लंबी अवशिष्ट विषाक्तता के कारण लंबे समय तक नुकसान हो सकता है। अतः खेतो में नई प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से पहले उनके सकारात्मक और संभावित नकारात्मक प्रभावों के बारे में जानना महत्वपूर्ण है। क्योंकि अच्छे –बूरे प्रभावों को जानने के बाद ही कृषि क्षेत्रों में नवाचार का प्रयोग सार्थक होगा।

जलवायु परिवर्तन के कारण पैदा होने वाली नई चुनौतियों से निपटने के लिए नए अनुसंधान जरूरी

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

है और अग्रिम अनुसंधान की भी जरूरत है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हमारे किसान बढ़ते तापमान और बार–बार आनेवाली बाढ़ की स्थिति में भी पैदावार बढ़ा सकें।

कृषि क्षेत्रों में अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए प्रौद्योगिकी और लोक नीति के बीच तालमेल की आवश्यकता है। पैदावार में वांछित वृद्धि हासिल करने के लिए नए वैज्ञानिक नवाचारों किसान हितैषी आर्थिक नीतियों और नई प्रौद्योगिकी अपनाने के प्रति किसानों का उत्साह भी महत्वपूर्ण है।

सुझाव :–

1) खेती की आर्थिक लाभप्रदता में सुधार के लिए किसानों की न्यूनतम शुद्ध आय सुनिश्चित करना और कृषि प्रगति की आकलन आय में वृद्धि के लिए की गई प्रगति से सुनिश्चित करना।
2) सभी प्रकार के कृषि कार्यक्रम और नीतियों में महिला–पुरूष के पहलू को सुचारू बनाना और सतत् ग्रामीण आजीविका पर पुरा ध्यान देना।
3) भुमि सुधारों में अधुरे कार्यों को पूरे करना और व्यापक संपदा तथा अधिग्रहण सुधार शुरू करना।
4) किसानों के लिए सामाजिक सुरक्षा और सहायता सेवाओं की शुरूआत कर उन्हें आगे बढ़ाना।
5) प्रत्येक किसान में कृषि शिक्षा को संवेदनशील बनाने के लिए कृषि पाठ्यक्रम और शिक्षा पद्धतियों की पुनः संरचना करना।
6) इलेक्ट्रॉनिक राष्ट्रीय कृषि विपणन के जरिए ऑनलाइन व्यापार को बढ़ाना, इसमें विभिन्न कृषि बाजारों को एक स्थान पर लाने में मदद मिलती है। ग्रामीण कृषि बाजारों से उपभोक्ताओं को खुदरा और थोक दोनों प्रकार की बिक्री के अवसर प्राप्त होगें।
7) किसानों की आय में वृद्धि और रोजगार के लिए मधुमक्खी पालन, मशरूम उत्पादन, बांस उत्पादन, कृषि वनीकरण, कृषि खाद्य और कृषि प्रसंस्करण को प्रोत्साहन।

निष्कर्ष :– ऊपर दिये गए विवरण से एक बात तो स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन कार्यों में अभी भी पिछड़ापन बना हुआ है। इसलिए ग्रामीण कृषि में उत्साह और स्फूर्ति का संचार करना अति आवश्यक हो गया है।

कृषि विविधीकरण के अन्तर्गत किसान :– डेयरी उद्योग मुर्गी पालन, मत्स्य पालन फल एवं सब्जी उत्पादन, मधुमक्खी पालन आदि को अपना सकते हैं। इसके लिए अन्य साधन ग्रामीण उत्पादन केन्द्रों व शहरी बाजारों के बीच संपर्क सूत्रों की रचना पर ध्यान देना होगा।

इस प्रकार कृषि उत्पादन में लगे निवेश पर अधिक प्रतिलाभ अर्जित करना संभव हो पाएगा। यही नहीं आधारित संरचना जैसे–साख एवं विपणन, कृषक –हित–नीतियाँ तथा कृषक समुदायों एवं राज्य कृषि विभागों के बीच निरंतर संवाद और समीक्षा इस क्षेत्रक की पूर्ण क्षमता को प्राप्त करने में सहायक है।

संदर्भ स्त्रोत :–

1) योजना, जनवरी 2019
2) आर्थिक सर्वेक्षण, (2015–16) बिहार सरकार, पटना
3) आर्थिक सर्वेक्षण, (2015–16) भारत सरकार, नई दिल्ली
4) यादव जीया लाल–कृषि प्रबंधन एवं कृषि बाजारीकरण रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2012
5) डॉ0 रावत ओ. पी. –कृषि शब्दावली, उपकार प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

SRF

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

संस्कृत शिक्षण में अधुनिक मूल्यांकन पद्धतियों का प्रयोग

डॉ. रश्मि जैन
शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.), (केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सारांश :— भारतीय भाषाओं में संस्कृत का अपना एक विशेष स्थान है। जिसे प्राचीन भाषा के साथ—साथ देव वाणी भाषा तथा अन्य भाषाओं की जननी भी कहा जाता है। संस्कृत भाषा का शिक्षण अपने आप में एक अलग महत्व रखता है। शिक्षण के साथ—साथ उसका मूल्यांकन अपने आप में एक जटिल कार्य है। ऐसे शिक्षण व मूल्यांकन में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है कि वह मूल्यांकन हेतु किस विधि का चयन करे। ऐसे जटिल कार्य हेतु शिक्षक का विषय के प्रति रूचि व ज्ञान महत्वपूर्ण हो जाता है। जिससे उपयुक्त आयुवर्ग व मानसिक ज्ञान के संदर्भ में विधि व प्रश्नों का चयन एक कठिन प्रश्न है। संस्कृत भाषा के शिक्षण व मूल्यांकन के संदर्भ में प्रस्तुत आलेख में अध्ययन किया गया है।

यह सार्वभौमिक सत्य है, कि सभी प्रकार की भारतीय भाषाओं में संस्कृत का अपना एक विशेष स्थान है। इसे अन्य भारतीय भाषाओं की जननी, देव वाणी का दर्जा दिया गया है। कई भाषाओं में महत्वपूर्ण शब्दों का मूल संस्कृत भाषा में उपल्बध है। इस रूप में संस्कृत भाषा जननी त्रमाता के रूप में देखी जाती है। हिन्दु धर्म के अनेक ग्रंथ चाहे वे धार्मिक क्षेत्र के हों या सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, चिकित्सा क्षेत्र के हों वे सभी संस्कृत भाषा में ही पढ़ने को मिलते हैं। जैसे चारों वेद, उपनिषद, महान चिकित्सक का चरक शास्त्र, महान संत वाल्मीकि की रामायण, पाणिनी की व्याकरण, कैाटिल्य का अर्थशास्त्र आदि इस रूप में यह देव वाणी मानी गई है। यह भाषा अपने आप में पूर्ण है। इसे किसी दूसरे की मदद नहीं लेनी पड़ती, क्योंकि यह अपने आप में पूर्णतः परिपक्क है। इस दृष्टि से यह समृद्व भाषा के रूप में जानी जाती हैं।

वैदिक काल में गुरूकुल और आश्रम व्यवस्था में छात्रों की वेद—पुराण संबंधी ज्ञान का परीक्षण शास्त्रार्थ के द्वारा हुआ करता था परंतु मुगल काल से यह शास्त्रार्थ प्रथा मन्द सी पड़ गई और अंग्रजी शासनकाल में तो शास्त्रार्य प्रथा, मैखिक परीक्षा बन्द ही हो गई। मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रमुख आधार हो गई निबंधात्मक परीक्षाएं जो कि प्रश्नोत्तर शैली में ली जाती थी और जिसके माध्यम से छात्रों के ज्ञान का परीक्षण या उपलब्धि का स्तर का मापन छात्रों द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रश्नों के उत्तर होते थे और विषय विशेषज्ञों, अनुभवी शिक्षकों द्वारा उनके उत्तरों का अंको के आधार पर मापन किया जाकर श्रेष्ठतम, श्रेष्ठ, औसत, औसत से कम और असफल इस रूप में छात्रों की योग्यता को आंका जाता था। इस प्रकार के मूल्यांकन में छात्रों की स्मृति आधारित ज्ञान की परीक्षण, लेखन कला, अभिव्यंजना शैली का परीक्षण होता था, परंतु बोलने की कला, वाचन संबंधी शुद्धता, उच्चारण संबंधी शुद्धता का परीक्षण निबन्धात्मक परीक्षा व्यवस्था में नहीं हो पाता था। इस कारण छात्रों के व्यक्तित्व विकास की दिशा में यह मूल्यांकन व्यवस्था अपने आप में अपूर्ण ही कही जावेगी।

यहां इस बात पर विचार करना होगा, कि मूल्यांकन क्या है? उसकी विश्वसनीयता और वैधता का क्या प्रमाण है? मूल्यांकन का छात्रों के व्यक्तित्व विकास से क्या संबंध है? मूल्यांकन को वास्तविक, व्यवहारिक, वैज्ञानिक बनाने की दृष्टि से शिक्षक, शाला, शिक्षा प्रशासन क्या प्रयास कर सकता है?

मूल्यांकन, छात्रों द्वारा संपूर्ण सत्र् में प्राप्त ज्ञान की उपलब्धि ज्ञात करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का सूत्राधार अध्यापन कार्य करने वाला शिक्षक होता है। शिक्षक जो कि अपने छात्रों को विभिन्न स्तरों पर विभिन्न विषयों का ज्ञान देता है, वह प्रत्येक स्तर पर निर्धारित किए गए शैक्षिक उद्देश्यों से परिचित होता है। मूल्याकंन इन्हीं शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति छात्रों की उपलब्धि के माध्यम से ज्ञात करने का एक सशस्त माध्यम है। वास्तविक एवं व्यवाहारिक अर्थों में मूल्याकंन एक निष्पक्ष, वैज्ञानिक, विश्वसनीय एवं वैधतापूर्ण कार्य है जो छात्रों के न केवल उपलब्धि को ज्ञात करता है। अपितु अप्रत्यक्ष रूप से उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं, पक्षों में हुए परिवर्तन को भी प्रदर्शित करता है। वर्तमान में मूल्याकंन प्रक्रिया के अंतर्गत परीक्षा प्रणाली और छात्रों की उत्तर पुस्तिकाओं का परीक्षण वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक कम तथा विशयगत अधिक होता जा रहा है।

मूल्यांकन के कार्य द्वारा जहां एक और छात्रों की उपलब्धि का स्तर मालूम होता है वहीं दूसरी और कक्ष विशेष और विषय विशेष में अध्यापक द्वारा किये गए अध्यापन कार्य की मौलिकता, श्रेष्ठता और गुणात्मकता की भी जानकारी मिलती है। अच्छे अंकों से अधिकतम छात्रों का उत्तीर्ण होना अध्यापक द्वारा छात्रों के साथ किए गए श्रम का सार्थक होना माना जाता है।

प्रत्येक विषय का मूल्यांकन अलग–अलग प्रकृति का होता है। भाषा क्षेत्र के अंतर्गत मूल्यांकन एक अलग शैली का होता है, इसके अंतर्गत प्रश्नों के माध्यम से केवल छात्रों की स्मृति का परीक्षण ही किया जा सकता है। परंतु भाषा के क्षेत्र में छात्रों के शुद्ध उच्चारण, काव्यात्मक भावों, व्याकारण ज्ञान का परीक्षण अत्यंत आवश्यक एवं उपयोगी होता है। भाषा के शुद्ध स्वरूप को छात्रों द्वारा अंगीकार करने पर ही शुद्ध लेखन, शुद्ध वाचन, शुद्ध अभिव्यक्ति (मौखिक या लेखीय) ही संभव है।

संस्कृत भाषा जो हिन्दी मातृभाषा की तुलना में कठिन साध्य प्रतीत होती है, मूल्यांकन कार्य भी उतना संवेदनशील, गूढ़तम एवं दुष्कर कार्य है। कारण कि सर्वप्रथम संस्कृत शिक्षक संस्कृत भाषा में छात्रों की उपलब्धि ज्ञात करने के लिए संस्कृत भाषा के प्रति रूचिकर एवं गंभीर हो। मूल्यांकन करने के लिए तैयार किए गए प्रश्नपत्रों की गुणात्मकता छात्रों की उपलब्धि का वास्तविक परीक्षण करने वाले हो। जो अपने आप में पूर्णतः विश्वनीय एवं वैध होना चाहिए। छात्रों के लिए प्रश्न सरल एवं हल करने योग्य हो एवं स्तर विशेष के लिए निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने वाला होना चाहिए। निरर्थक, अविश्वसनीय मूल्यांकन छात्रों की वास्तविक उपलब्धि को कभी भी प्रदर्शित नहीं कर सकता। साथ ही अध्यापक को भी अध्यापन में गुणात्मक सुधार करने की दृष्टि से गुमराह कर सकता है। अतः संस्कृत भाषा का शिक्षक संस्कृत के छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करने की दृष्टि से अत्यधिक सजग, सचेत व समर्थवान तथा निष्ठा से परिपूर्ण हो। क्योंकि संस्कृत भाषा में छात्रों की उपलब्धि का स्तर ऊंचा होने से तात्पर्य है कि छात्र संस्कृत भाषा का ज्ञान, उच्चारण, वाक्य, रचना, लेख, अभिव्यक्ति (मौखिक) उत्तम प्रकार की होना चाहिए। मूल्याकंन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले परीक्षण कुछ इस प्रकार से है–

(अ). निबन्धात्मक परीक्षण
(ब). बहु विकल्पीय प्रश्न

(अ) निबन्धात्मक परीक्षण :– यह एक अत्यंत प्राचीन, परम्परागत शैली है। इसे सुकरात शैली के नाम से भी जाना जाता है। इसमें सिखलाने वाला पक्ष सीखने वाले के ज्ञान का उपलब्धि स्तर का पता प्रश्नों के माध्यम से करता है। इसके अंतर्गत पूछे जाने वाले प्रश्न प्रायः लंबे होते है। स्वरूप निश्चित होते हुए भी उत्तरों की सीमा तय नहीं रहती। छात्रों द्वारा दिए गए प्रश्नों के उत्तरों का मूल्यांकन करने के लिए मूल्यांकनकर्ता के पास कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता सब कुछ उसके विवके पर निर्भर करता है। ऐसी प्रकिया में कभी कभी प्रतिभाशाली छात्रों का अहित और अयोग्य छात्रों का हित होने की संभावना रहती है। इस प्रकार के परीक्षण में व्यक्ति निष्ठता अधिक रहती है। वर्तमान की शैक्षिक व्यवस्था में निबंधात्मक परीक्षण में जो एक व्यवहारिक एवं तीव्रगामी परिवर्तन देखने में आया है वह है संभावित प्रश्न (गेसिंग) जिसके सहारे छात्र संपूर्ण पाठ्यक्रम (कोर्स) का एक चतुर्थांश या आधा भाग पढ़कर/रटकर आसानी से परीक्षा किसी भी स्तर की उत्तीर्ण कर लेता है और अपनी योग्यता प्रमाणित करता है। जबकि वास्तविकता यह है कि, पूर्ण परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद भी उसे स्तर विशेष के पूर्ण ज्ञान का पता ही नहीं रहता। इस प्रकार यह निबंधात्मक परीक्षण छात्रों के उपलब्धि को वास्तविक रूप से मूल्यांकित नहीं कर पाता। अतः यह पूर्णरूपेण अमनोवैज्ञानिक, अव्यवहारिक प्रतीत होता है। फिर भी यह विधात्मक परीक्षण का अपना अलग महत्व है और आज भी इसका प्रयोग बहुतया से होता है। निबंधात्मक परीक्षण के माध्यम से संस्कृत भाषा सीख रहे छात्रों का बोलना, पढ़ना, उच्चारण, मौखिक अभिव्यक्ति का समुचित परीक्षण नहीं हो पाता जो कि भाषा की दृष्टि से अत्यधिक आवश्यक एवं उपयोगी है इसी प्रकार इसमें काव्यात्मक वाचन में छात्रों के लय, स्तर आदि का बोध नहीं हो पाता क्योंकि सब कुछ लिखकर ही अभिव्यक्त करना होता है। अतः संस्कृत सीख रहे छात्र के भाषा ज्ञान का पूर्ण, सही एवं वैज्ञानिक परीक्षण निबंधात्मक परीक्षण में नहीं हो पाता। अतः संस्कृत भाषा में यह छोटी कक्षाओं में कम अनुकरणीय है।

संस्कृत भाषा में निबंधात्मक परीक्षण उच्च कक्षाओं में अधिक उपयागी हो सकती है जहां पर कि छात्रों के स्मृति का परीक्षण मौलिक विचारों का व्यवहारिक तुलनात्मक ओर समालोचनात्मक व्याख्या का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। उच्च शिक्षा के स्तर

पर साधारणतः छात्रों में इस प्रकार की योग्यता विकसित भी हो जाती है।

अतः यह पूर्णरूपेण निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि, संस्कृत भाषा के क्षेत्र में प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर निबंधात्मक परीक्षण को आधार न बनाया जाकर नवीन परीक्षा प्रणाली जो कि वैज्ञानिक सिद्वान्तों पर आधारित होती है, बहुत सटीक, विश्वनीय व वैध है। जिसको लागू कर छात्रों की वास्तविक उपलब्धि का ठीक–ठीक पता लगाया जा सकता। जिससे प्रतिभाशाली एवं औसत दर्जे के छात्रों के साथ न्याय हो सके।

(ब). बहु विकल्पीय प्रश्न :– इसमें संस्कृत शिक्षक छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करने के लिए वस्तुनिष्ठ प्रश्न के रूप में ऐसे छोटे छोटे प्रश्न या कथन तैयार करता है। जिसके उत्तरों में बहुविकल्पीय पद होते हैं और छात्रों को प्रश्न/कथन के अनुरूप उन पदों से सटीक उत्तर ढूंढना होता है जो कि उसके संस्कृत पाठ्यांश का सही होने का द्योतक होता है। यहाँ नीचे नवीन परीक्षा प्रणाली के कुछ उदाहरण दिय जा रहे है–

01. रिक्त स्थान पूर्ति पद
02. बहुविकल्प पद
03. समानता निर्देश पद
04. सत्यासत्य निर्देश पद
05. प्रत्याहान पद

01. रिक्त स्थान पूर्ति पद :– इसमें संस्कृत शिक्षक संस्कृत भाषा के छात्रों के सरलतम ज्ञान का परीक्षण करने की दृष्टि से छात्रों की पाठ्यपुस्तक से कुछ पाठ्यांश चयन करता है और फिर उस पाठ्यांश के महत्वपूर्ण अंश को रिक्त स्थान में भरने की दृष्टि से लोप कर देते है। जिसमें छात्रों को उसमें सीखे हुए ज्ञान के आधर पर रिक्त स्थान में भरना होता है। जो कि उसके प्राप्त ज्ञान का, उपलब्धि का परिचायक होता है। उत्तर शुद्व होने पर छात्र को परीक्षक पूर्ण अंक देता है। परन्तु इसमें यह संभवना रहती है कि छात्र अपने साथी से पूछकर रिक्त स्थान की पूर्ति करने की संभावना अधिक होती है। ऐसे में बच्चों के ज्ञान पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। परन्तु परीक्षक सही से निगरानी करे तो काफी हद तक यह परीक्षा सफल हो सकता है। ऐसे प्रश्नों के उदाहरण कुछ इस प्रकार हैं–

उदाहरण :

1. सूर्योदयकाले सर्वत्रैव..................भवति।
2. पण्डित : सन्ध्यावन्दन................ ।...............गायन्ति।
3. ....हसति।...................विनय शोभयमानम् वर्तते।

(एतादृशं, कुर्वन्ति, प्रकाशः, कमलम् गायकाः, इन्द्रस्य, सुधांशोः)

02. बहुविकल्प पद :– इसमें प्रश्न से सवंधित कई उत्तर के विकल्प दिये होते है। जो सही उत्तर होता है उसका चयन किया जाता है।

उदाहरण – नीचे की पंक्तियां में कई विकल्प दिए गए हैं इसमें जो सर्वाधिक उचित विकल्प हो उसके आगे सही का चिन्ह अंकित करें –

शंकर भगवान को नीलकण्ठ के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि–

1. वे बड़े भोले व दयालु हैं,
2. वे नीलकण्ठ पक्षी के समान हैं,
3. उन्होंने भस्मासुर को मारा था,
4. विषपान के कारण उनका कण्ठ नीला पड़ गया है।

03. समानता निर्देश पद :– इसमें संस्कृत शिक्षक छात्रों के लिए ऐसे प्रश्न/कथन तैयार करता है जिसमें समानता/असमानता वाले पर रहते हैं। छात्रों को उसमें समान पद ढूंढने का निर्देश रहता है और उस आधार पर उनके ज्ञान का उपलब्धि का स्तर आंका जाता है।

उदाहरण : नीचे तीन खाने बने है। पहले खाने में कुछ शब्द लिखे हैं और शेष दो खाने रिक्त है। आगे अनेक शब्द दिए हुए हैं जो प्रथम खाने में लिखे हुए शब्दों के पर्यायवाची है। प्रत्येक शब्द के आगे पर्यायवाची शब्द लिखों –

क	ख	ग
इन्द्र :		
सुधांशु :		
कमलम् :		
नीलकण्ठ :		

पर्यायवाची शब्द – (विधु : , विद्वान्, विप्र, अजरः, आलोकः, पंकजम्
सिंह, पिनाकी, पुरंदरः, ब्राहमणः, अमरः, शचीपति,

राकेशः, प्रतिभावान्, इन्दीवरम्, केसरी, चन्दशेखरः, प्रभाकरः)

उदाहरण : नीचे तीन खाने दिए गए है, पहले खाने में जो शब्द हैं उनके विलोम शब्द अव्यवस्थित रूप में दूसरे खाने में दिए गए हैं, प्रत्येक शब्द के विलोम शब्द को उसी के सामने तीसरे खाने में लिखों –

क	ख	ग
पडिण्तः	जरः	....
प्रकाशः	असुरः	....
अजरः	मूर्खः	....
बिबुधः	तमसम्	....

04. सत्यासत्य निर्देश पद :– इसमें संस्कृत शिक्षक छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करने ऐसे पद तैयार करता है जिसमें छात्रों को उन कथनों के उत्तर में सत्यासत्य की खोज करना होती है। शिक्षक द्वारा निर्धारित उत्तरों से छात्रों के उत्तरों का मिलान किया जाता है और सहीं होने पर उपलब्धि के अनुरूप उसे अंक दिए जाते है।

उदाहरण : नीचे दिए गए कथनों में सत्यासत्य निर्देश करों –

अ. ''कमलम'' तृतीया का एकवचन का रूप है ( )
ब. हरिः शब्द पुल्लिंग है. ( )
स. ''द्विज'' पक्षी को भी कहते है. ( )

05. प्रत्याहान पद :– इस प्रकार के परीक्षण में संस्कृत शिक्षक छात्रों के ज्ञान का परीक्षण करने के लिए कुछ वाक्य लिखें हैं और उनके सामने दिए हुए कोष्टक में वाक्य संबंधित उपयोगी शब्द लिखना होता है। सही उत्तर होने पर छात्रों के लिए शिक्षक द्वारा निर्धारण पूर्ण अंक प्राप्त होते है। इस प्रकार के परीक्षण के उदाहरण नीचे दिए गये है :

1. निम्नलिखित शब्दों को कोष्ठकों में कारक रूप लिखो –

अ. लता की सप्तमी बहुवचन – ( )
ब. मनस् का षष्ठी एवकवचन– ( )

2. निम्नलिखित धातुओं के रूप कोष्टकों में लिखो –

क. वृध्र लोट लकार उत्तम पुरूष द्विवचन – ( )
ख. विद्– लृट लकार प्रथम पुरूष एकवचन – ( )

इस प्रकार संस्कृत शिक्षक उपरोक्त वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के आधार पर संस्कृत भाषा सीख रहे छात्रों का उपलब्धि स्तर ज्ञात कर सकता है जो कि पूर्णतः विश्वसनीय व वैध हो सकता है। इसका लाभ यह है कि इसमें मूल्यांकन करना सरल होता है। मूल्यांकन निश्चित होता है। भ्रमपूर्ण स्थिति निर्मित नहीं हो पाती। उत्तरों में भिन्नता नहीं रहती। यह ज्ञात हो सकता है कि छात्र ने अर्जित ज्ञान को व्यवहार में उतारने की कला सीखी है या नहीं।

इस प्रकार के परीक्षण का व्यवहारिक पक्ष यह है, कि प्रश्नपत्र अनावश्यक रूप से लम्बा हो जाता है। प्रश्नपत्रों की रचना भी शिक्षक को अत्यंत सावधानी से करना होती है। इसमें कमी यह है कि कभी–कभी छात्र प्रश्नों का उत्तर अनुमान से भी दे दतें हैं।

उपरोक्त परीक्षण छात्र के संस्कृत ज्ञान का सैद्धांतिक पक्ष का उपलब्धि स्तर तय करते हैं, परंतु इस प्रकार के मूल्यांकन में संस्कृत जैसे महत्वपूर्ण, प्राचीन, सरल भाषा का व्यवहारिक मूल्यांकन का पक्ष अछूता ही रहता है। अतः संस्कृत भाषा के व्यवहारिक पक्ष का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है कि संस्कृत सीख रहे छात्रों के शुद्ध उच्चारण, काव्य के क्षेत्र में लयात्मक वाचन, गद्य के क्षेत्र में शुद्ध वाचन और बड़ी कक्षाओं के छात्रों में संस्कृत भाषा में अभिव्यक्त करने की योग्यता आदि का परीक्षण जरूरी है। यह तभी संभव है जब संस्कृत शिक्षक इसमें स्वंय रूचि ले तथा प्रत्येक छात्र का वैयक्तिक आधार पर सम्पूर्ण सत्र मौखिक, परीक्षा, अंतयाक्षरी प्रतियोगिता पाठ्य सहगामी क्रियाओं के माध्यम से संस्कृत श्लोकों/काव्यों का शुद्ध रूप में लयात्मक वाचन, शुद्ध उच्चारण के परीक्षण हेतु गद्य का प्रवाह के साथ वाचन आदि। यह संपर्ण सत्र में सतत रूप में होता रहता है। जिससे छात्र को मूल्यांकन का पता भी नहीं चलता और स्वाभाविक तौर पर छात्र की आंतरिक योग्यताओं का पता भी चल जाता है।

वाचन संबंधी अशुद्धियों का पता लगानें, उसमें सुधार करने हेतु किए गए स्व–प्रयासों, शिक्षक–पालक व मित्रों द्वारा प्रेरित प्रयासों के आधार पर भी मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके अलावा भी शैक्षिक प्रौद्योगिकी के एक अंग के रूप में टेपरिकार्डर का भी उपयोग किया जा सकता है। आव यतानुसार संस्कृत

SRF

शिक्षक का मार्गदर्शन भी प्राप्त कर सकता है, उसे अपने द्वारा किए गए प्रयासों से अवगत करा सकता है।

इसी प्रकार सूक्ष्म शिक्षण की प्रक्रिया के अन्तर्गत शिक्षक संबंधी कौशलों के विकास व सुधार करने की दृष्टि से भी सूक्ष्म शिक्षण में प्रयुक्त आडियों–वीडियों का उपयोग कर छात्रों से सतत अभ्यास किया (ड्रिलिंग) के माध्यम से उनमें उच्चारण संबंधी हो रहे परिर्वतन, काव्य के क्षेत्र में हो रहे लयात्मक वाचन में प्रगति आदि से अवगत करा सकता है।

इसके अलावा खेल पद्धति के माध्यम से भी शिक्षक अपने मार्गदर्शन में काव्य के क्षेत्र में शुद्ध रूप से लयात्मक वाचन का परीक्षण करने प्रतिस्पार्धात्मक प्रतियोगिताएं आयोजित कर छात्रों को सहभागी बनाते हुए उन्हें शुद्ध उच्चारण के साथ काव्य पाठ करने आमंत्रित कर सकता है। शुद्ध उच्चारण के साथ काव्य पाठ वाले छात्रों को अधिकतम अंक का लाभ शिक्षक द्वारा दिया जा सकता है।

अन्तयाक्षरी के माध्यम से भी छात्रों के संस्कृत व्याकरण, श्लोकों, काव्य के ज्ञान को भी बढ़ाया जा सकता है जैसे अंतिम अक्षर के आधार पर व्याकरण के विभिन्न प्रकरण संधि, समास उनके प्रकार, प्रत्यय, उपसर्ग, क्रिया, कारक रचना आदि को प्रस्तुत करने की किया, श्लोकों के अंतिम अक्षर के आधार पर नये श्लोकों को प्रस्तुत करना आदि. कोर्स में शामिल कविताओं की अर्त्याक्षरी प्रतियोगिता में शामिल करना। पाठ्यसहगामी कियाओं के माध्यम से शालाओं के वार्षिक कार्यक्रम, छात्रसंघ उद्घाटन कार्यक्रम, छात्र परिषदों के सम्मेलनों में छात्रों के संस्कृत ज्ञान का उत्साहवर्द्धक प्रदर्शन करना आदि।

निष्कर्ष :– संस्कृत शिक्षण में यदि शिक्षक सही रूप से छात्रों का मूल्यांकन करना चाहता है तो किसी एक विधि का नहीं अपितु निवंधात्मक व वस्तुनिष्ठ विधि के साथ साथ अन्य माध्यम प्रतिस्पार्धात्मक प्रतियोगिताए, अन्तयाक्षरी, पाठ्यसहगामी कियाओं, मौखिक परीक्षा, अंताक्षरी का उपयोग करना उचित होगा। चूँकि किसी एक विधि से मात्र एक पक्ष का ही मूल्यांकन हो सकता है। इस लिए छात्रों के सभी पक्षो का मूल्यांकन करने हेतु विधियों के साथ साथ अन्य माध्यमों का उपयोग करना ज्यादा न्याय संगत होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. ऑप्टे,डी.जी. (2000). टीचिंग ऑफ संस्कृत. बॉम्बे : पदमा पॉब्लिकेशन.
2. शुक्ल, देवर्षि कुमार (2016). संस्कृत भाषा शिक्षण. आगरा : राखी प्रकाशन प्रा0 लि0.
3. भाटिया, डॉ. कैलाश (2001). आधुनिक भाषा शिक्षण. नई दिल्ली : तक्षशिला प्रकाशन.
4. पाण्डेय, डॉ. रामशकल (2012), संस्कृत शिक्षक. आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर.
5. जैन, शुध्यात्म प्रकाश (2016). संस्कृत शिक्षण, आगरा : राखी प्रकाशन प्रा.लि.
6. मिश्र, डॉ. प्रभाशंकर (1984). संस्कृत शिक्षण, चण्डीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी.
7. अलतेकर, प्रो0 अनंत सदाशिव (2014). प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति. वाराणसी : अनुराग प्रकाशन.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भगिनी निवेदिता के शैक्षिक विचार

योगेश कुमार सिंह
(अतिथि शिक्षक), शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर (म.प्र.) (केन्द्रीय विश्वविद्यालय)

सारांश :– भगिनी निवेदिता ने भारतवर्ष को स्वदेश तथा भारतवासियों को स्वजन के रूप में स्वीकार किया था। भारत के प्रति उनका कितना अवदान है, यह अभी तक हम पूर्ण रूप से समझ नहीं पाये हैं। भविष्य में यदि कभी समझ पाएँगे तो हम आश्चर्यचकित होकर सोचेंगे कि क्या ऐसा चरित्र भी सम्भव है? आज से लगभग सौ वर्ष पहले स्वामी विवेकानन्द के आह्वान से वे भारतवर्ष आई थीं तथा उन्होंने इस देश की बालिकाओं को राष्ट्रीय धारा के अनुसार शिक्षा देना आरम्भ किया था।

भगिनी निवेदिता का जीवन तड़ित के समान तेजस्वी और तूफान के सदृश्य वेगवान था। वे अपने छोटे से जीवन काल में जो कुछ भी इस देश भारत के लिए, भारतीय समाज के लिए, भारतीय महिलाओं के लिए कर गई वह आगामी अनेक शताब्दियों तक विश्व के इतिहास प्रवाह को दिशा और गति प्रदान करता रहेगा। हम उन्हें एक महान शिक्षिका, समाज सुधारिका, लेखिका, विचारक, वक्ता, मानव प्रेमी और दूरदर्शी अनेक विशेषणों से विभूषित करें तो वह भी कम ही होगा। प्रस्तुत आलेख में भगिनी निवेदिता शैक्षिक विचारों का अध्ययन किया गया है।

जीवन परिचय :– मार्गरेट एलिजाबेथ नोबल के नाम से जानी जाने वाली भगिनी निवेदिता का जन्म उत्तर आयरलैण्ड के टायरोन (Tyrone) जिले के डुंगैनन (Dungannon) नामक छोटे–से गाँव में 28 अक्टूबर, 1867 ई0 को हुआ था। उनके पिता सेमुएल रिचमण्ड नोबल तथा माता मेरी इसाबेल। मात्र दस वर्ष की छोटी आयु में उनके पिता की मृत्यु के उपरान्त नाना हैमिल्टन ने लालन पालन का दायित्व निभाया। हैमिल्टन आयरलैण्ड के स्वतन्त्रता आन्दोलन के एक विशिष्ट नेता भी थे।

पैत्रिक प्रभाव से मार्गरेट अछूति नहीं रही तथा इनके चरित्र में सत्यनिष्ठा, धर्म के प्रति अनुराग, देश के प्रति आत्मबोध तथा राजनीति के प्रति निष्ठा का समन्वय दृष्टिगोचर हुआ था।

निवेदिता का अध्ययनकाल लन्दन के एक चर्च के अधीनस्थ आवासीय विद्यालय में कठोर नियम–श्रृंखला के बीच बीता। तीक्ष्ण मेधावी छात्रा मार्गरेट विद्यालय के पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी काफी अध्ययन किया करती थीं। साहित्य, संगीत, कला, भौतिकशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र–सभी विषयों में उनकी समान उत्सुकता थी।

सफलता के साथ स्कूल की शिक्षा समाप्त कर मात्र सत्रह वर्ष की आयु में मार्गरेट ने एक शिक्षिका का जीवन ग्रहण किया। कुछ दिनों में ही विम्बलडन में एक विद्यालय खोलकर उन्होंने अपनी पद्धति से शिक्षा देना शुरू किया। अल्पकाल में ही एक सुशिक्षिका के रूप में उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी। इसके साथ ही विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में वे लेख भी लिखती रहीं। शीघ्र ही वे लन्दन के विद्वत्–समाज में एक शक्तिशाली लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। चर्च के अधीन वे नियमित सेवाकार्य भी करती। धर्म के प्रति उनका आकर्षण तो बचपन से था ही। व्यावहारिक जीवन में काफी सफल होने पर भी चर्च के अधीनस्थ प्रथागत धर्म–जीवन से उन्हें वास्तविक धर्मजीवन का पथ खोज निकालने की चेष्टा की। शान्ति के अभाव वे निराश थी।

स्वामी विवेकानन्द जी का निवेदिता पर प्रभाव :– भारतीय सन्यासी स्वामी विवेकानन्द 1896 ई0 के नवम्बर महीने की एक शाम लन्दन के एक कुलीन परिवार के यहाँ स्वामी विवेकानन्द के धर्म–व्याख्या एवं व्यक्तित्व से मंत्रमुग्ध हो गई। जिससे निवेदिता के जीवन में एक नया मोड़ आया। इसके बाद निवेदिता, स्वामीजी की प्रत्येक व्याख्यन बड़े ही मनोयोग से सुनती और अपना संशय स्वामी जी के समक्ष प्रश्नों के माध्यम से दूर करती। अन्ततोगत्वा उन्हें विश्वास हो गया कि जिस धर्मजीवन की खोज में वे इतने दिनों तक दिग्भ्रान्त थीं, उसका ठीक पता बताने में स्वामी विवेकानन्द सर्वसमर्थ है।

भगिनी निवेदिता और स्वामी विवेकानन्द के मध्य शिक्षा संबंधी वार्ता का मुख्य विषय साहित्य, कला,

इतिहास, काव्य और ग्रंथों व उपनिषदों की चर्चा। निवेदिता स्वामी जी के साथ शिक्षा संबंधी कार्यों की रूपरेखा जानने व सुझाव सुनने के लिए सदैव आतुर रहती थी और स्वामी जी उनके कार्यो में योगदान देने हेतु तत्पर रहते थे। अध्यापन कला में प्रवीण और बाल मनोविज्ञान की ज्ञाता भगिनी निवेदिता के लिए शिक्षा पर वार्ता रूचिकर विषय था।

शैक्षिक विचार :– शिक्षा में पाश्चात्य प्रयोगों एवं शिक्षाशास्त्र की विभिन्न शिक्षण विधियों से भगिनी निवेदिता पूर्णतः परिचित थी। परन्तु भारतीय परिवेश से अभि अछूति थी। लेकिन निवेदिता को भारतीय परिवेश को समझते देर नहीं लगी। अतः भगिनी निवेदिता अहंकारिक और अवसादमयी शिक्षा की बात नहीं करती थी, अपितु वे क्रियात्मक एवं रचनात्मक शिक्षा की अपेक्षा करती थी। जब तक वर्तमान शिक्षा प्रणाली में ंनवीन प्राण–शक्ति का संचार नहीं किया जाता तब तक भारत के नवनिर्माण की दिशा में प्रयत्न करना व्यर्थ है। इस प्रकार से शिक्षा के बारे में निम्न बातों को बताया–

- शिक्षा के क्षेत्र में बालिकाओं को बालकों के समान शिक्षा दी जानी चाहिए।
- शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास में योग देना चाहिए।
- धार्मिक शिक्षा पुस्तकों से नहीं वरन् व्यवहार, आचार और संस्कारों द्वारा दी जानी चाहिए।
- पाठ्यक्रम में लौकिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए।
- स्त्री शिक्षा को केन्द्र–धर्म होना चाहिए क्योंकि स्त्रियाँ ही धर्मधारिणी और धर्म पालिका होती है।
- हमें प्राविधिक शिक्षा और अन्य सब विषयों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिससे हमारे देश के उद्योगों की उन्नति हो।
- शिक्षा गुरू के गृह में रहकर प्राप्त करनी चाहिए और शिक्षक तथा छात्र में महिमा, गरिमा और मधुरिमा का संबंध होना चाहिए।
- जनसाधारण में शिक्षा का प्रचार करना चाहिए क्योंकि राष्ट्र की प्रगति उसी अनुपात में होती है जिसमें जनसाधारण को शिक्षा मिलती है।
- उसी शिक्षा को सच्ची शिक्षा कहा जाना चाहिए जिससे चरित्र का गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलम्बी बनें।
- राष्ट्रीय और मानवीय शिक्षा, घर से प्रारम्भ होनी चाहिए जहाँ बच्चे अपने संबंधों से प्रेम करना सीखे और बाद में समाज के सदस्य बनकर अपने छोटे से प्रेम को विश्व प्रेम में बदल दें।
- पुस्तकों का अध्ययन ही शिक्षा नहीं है।
- ज्ञान व्यक्ति के मन में विद्यमान है वह स्वयं ही सीखता है।
- चित्त की एकाग्रता की शक्ति ज्ञान प्राप्त करने की कुंजी है। इस शक्ति को विकसित करने हेतु ब्रह्मचर्य आवश्यक है।
- मन, वचन, कर्म का शुद्धि आत्म नियन्त्रण हैं।
- शिक्षा बालक का शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास करे।

भगिनी निवेदिता ने भी स्वामी जी की भॉति शिक्षा को ही राष्ट्र का उन्नायक माना है तथा निम्न बातों को बताया कि–

- चित्त की वृत्तियों को योग द्वारा निरोध करना।
- मन को केन्द्रीयकरण विधि द्वारा विकसित करना।
- ज्ञान को व्याख्यान, तर्क, विचार–विमर्श, स्वानुभव तथा रचनात्मक कार्यो एवं उपदेशों द्वारा अर्जित करना।
- शिक्षक के गुणों तथा चरित्र बुद्धि द्वारा अनुकरण करना।
- बालक को व्यक्तिगत निर्देशन तथा परामर्श विधि के द्वारा उचित मार्ग की ओर अग्रसर करना।
- शिक्षा द्वारा अच्छे विचारों का निर्माण होना चाहिए।
- शिक्षा चरित्र गठन में सहायक हो। हमारी इच्छा शक्ति सबल करने और उसके माध्यम से हम चरित्र का उन्नयन कर सकें।
- हमारी शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना होना चाहिए। सारी शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मनुष्य का विकास करना है। जिस प्रशिक्षण से मनुष्य की इच्छा शक्ति का प्रकाश फलदायी हो, वही शिक्षा है।
- शिक्षा द्वारा छात्रों में श्रद्धा की निष्पत्ति होनी चाहिए अर्थात् अपनी अन्तर्निहित सुप्त शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना और इसके लिए स्वयं पर दृढ़ विश्वास रखना आवश्यक है।

SRF

- राष्ट्र सेवा की शिक्षा का उद्देश्य मानव में मानव प्रेम, समाज सेवा, विश्व चेतना और विश्व बन्धुत्व के गुणों का विकास करना।
- मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, धार्मिक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक और व्यावसायिक विकास करना।
- मनुष्य को आध्यात्मिक और मुक्ति के मार्ग के संबंध में चेतना पैदा करना और अपनी शक्तियों का उपयोग करना।
- मनुष्य में आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्मत्याग, आत्मनियन्त्रण, आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान आदि लौकिक सद्गुणों के विकास हेतु प्रयत्नशील रहना।

भगिनी निवेदिता को तत्कालीन शिक्षण विधि में कोई आस्था नहीं थी। उनके अनुसार ज्ञान की प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग है और वह है एकाग्रता द्वारा ही शिक्षण हो सकता है किसी अन्य विधि द्वारा नहीं।

1. भगिनी निवेदिता शिक्षण पद्धति में पुस्तकीय शिक्षा की प्रधानता को नकारती हैं उनके अनुसार शिक्षा को सीखने में स्वाभाविकता का महत्व है अतः बालक में ज्ञान को ठूसना नहीं चाहिए। शिक्षा ग्रहण करने में अनुचित दबाव नहीं डालना चाहिए इससे बालक का स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो जाता है। शिक्षा को पर्याप्त सहज व स्वाभाविक वातावरण में सीखना चाहिए जिससे विद्यार्थी को चिंतन व मनन की पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिए इससे बालक का स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हो जाता है।
2. भगिनी निवेदिता शिक्षण पद्धति में एक और विशेष बात को महत्वपूर्ण मानती है वो यह कि विद्यार्थी कभी वैसा ही रास्ता अपनाते हैं अतः गुरू को अपना सद्चरित्र व सद्व्यवहार हर वक्त प्रदर्शित करना चाहिए ताकि छात्र के सीखने की प्रक्रिया हर वक्त होती रहे इस प्रकार अनुकरण विधि द्वारा शिक्षक के उत्तम चरित्र, गुणों आदि का अनुकरण होता रहे।
3. भगिनी निवेदिता व्यक्तिगत समस्याओं के समाधानार्थ निर्देशन एवं परामर्श को भी एक उत्तम पद्धति मानती है। इस विधि से जहाँ एक ओर पारस्परिक संबंध दृढ़ होते हैं वहीं दूसरी ओर सहयोग की भावना द्वारा कार्य सफलता एवं तीव्रता से समाप्त हो जाता है। जैसा कि आधुनिक युग में छात्रों को निर्देशन व परामर्श की अत्यधिक आवश्यकता होती है।
4. भगिनी निवेदिता शिक्षण विधि में प्रयोगात्मक विधि को भी महत्व देती हैं। विद्यार्थी करके सीखने पर ज्ञान को स्थायी बना लेते हैं और वह लम्बे समय तक चित्त में स्थायी रहता है। उनके अनुसार बालिकाएँ करके सीखने में गृह विज्ञान जैसे विषय को प्रयोग में ला सकती है। जिसमें सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, गृह सज्जा, पाक कला आदि विषय आते हैं जो उन्हें भविष्य हेतु तैयार करते हैं और बालकों को कृषि जैसे पाठ्य विषय को करके सीखने की पद्धति का प्रयोग करना चाहिए।
5. भगिनी निवेदिता भ्रमण को भी अत्यन्त उपयोगी विधि मानती हैं। उनका विचार है कि भ्रमण से सम्पर्क, ज्ञान, अनुभव व निरीक्षण शक्ति बढ़ती है और साथ ही इससे समाज–सेवा व विश्व–बन्धुत्व की भावना का विकास भी सहजता से किया जा सकता है।
6. योग विधि द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध करना। ब्रह्मचर्य से बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। वासनाओं को वश में करना चाहिए और इसे आध्यात्मिक शक्ति में परिवर्तित कर देना चाहिए। ब्रह्मचर्य से स्मृतिशक्ति का विकास होता है, प्रबल कार्यशक्ति प्राप्त होती है। अमोघ इच्छा शक्ति का विकास होता है।
7. तर्क, व्याख्यान, विचार–विमर्श, उद्देश्य विधि आदि द्वारा ज्ञान का अर्जन करना।

भगिनी निवेदिता द्वारा किसी एक शिक्षा पद्धति को विशेष रूप से महत्व नहीं दिया गया है वरन् समय व परिस्थितियों के अनुसार पृथक–पृथक पद्धतियों को ग्रहण कर शिक्षा का कार्य सम्पन्न करना चाहिए।

भगिनी निवेदिता ने शिक्षा को सम्पूर्ण जीवन का एक अंग मानकर उस पर आध्यात्मिक दृष्टि से अद्भुत प्रेरणाप्रद सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है। देश को सफल बनाने के लिए जिन–जिन विषयों को पढ़ाने की आवश्यकता हो, वे विषय अवश्य पढ़ाये जाये। वेदों का अध्ययन आवश्यक है। श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, हनुमान आदि के जीवन चरित्र का अध्ययन करना है। संगीत भी सीखना है किन्तु खेल और करताल से देश का कल्याण नहीं होगा अतः नागाड़े, बिगुल आदि ओजस्वी वाद्य यंत्रों को बजाना है। धार्मिक शिक्षा भी देनी है किन्तु आडम्बर से दूर रहना है। धर्म का क्रियात्मक अनुभव होना

आवश्यक है। केवल बौद्धिक प्रशिक्षण से छात्रों में मनुष्यता के गुणों का प्रादुर्भाव नहीं होता अतः विशिष्ट भावों को जागृत करना आवश्यक है। विद्यालयों में किसी मत या सम्प्रदाय की शिक्षा न देकर सभी धर्मों के सारभूत तत्वों की जानकारी दी जानी चाहिए। प्राचीन धर्म में नास्तिक वह है जो स्वयं में विश्वास नहीं करता इसलिए धर्म को पाठ्यक्रम में स्थान मिलना चाहिए।

पाठ्यक्रम में सत्य का समावेश होना चाहिए। सत्य आत्मा का स्वभाव है, सत्य में जीवन शक्ति होती है वह बलप्रद पवित्र और ज्ञान स्वरूप होता है। सत्य शक्ति देता है, हृदय के अन्धकार को दूर करता है, स्फूर्ति देता है, प्रकाश देता है। छात्रों को भाषा और साहित्य को भी शामिल करना। काव्य और कला की भी शिक्षा देनी है। विदेशी भाषा की अपेक्षा स्वदेशी भाषाओं पर पहले अधिकार करना चाहिए। मातृभाषा पर अधिकार के बाद विदेशी भाषा का अध्ययन लाभप्रद हो सकता है।

पाठ्यक्रम परिवर्तनशील होना चाहिए। पाठ्यक्रम विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार और उपयोगी हो। पाठ्यक्रम उच्च नैतिकता एवं उदात्त आदर्शों से युक्त होना चाहिए जिसके द्वारा हृदय को सुसंस्कृत बनाने की प्रेरणा मिले। पाठ्यक्रम में वर्तमान, भविष्य और अतीत किसी की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।

गुरू शिष्य संबंध :– स्वामी विवेकानन्द के कार्यों, विचारों से भगिनी निवेदिता पूर्णतः प्रभावित थी अतः विवेकानन्द के गुरू–शिष्य संबंधी विचारों इस प्रकार बताया है–

भगिनी निवेदिता के अनुसार शिक्षा गुरू–गृह वास के आधार पर होनी चाहिए जिसमें शिष्य गुरू के गृह स्थान पर ही रह कर शिक्षा ग्रहण करें। शिक्षक के तीन विशेष गुण बताए है। प्रथम गुण है उसका शास्त्र ज्ञान। अच्छा शिक्षक शास्त्रों के मर्म को जानता है। दूसरा गुण है निष्णाता– उसे हृदय और मन से पवित्र होना चाहिए। शिक्षक का चरित्र अग्नि के समान प्रकाशवान हो। चित्त की शुद्धता के बिना वह छात्रों में आध्यात्मिक शक्ति का संचार नहीं कर सकता। तीसरा गुण है कि शिक्षक को धन, नाम या यश संबंधी स्वार्थ सिद्धि के लिए धर्म शिक्षा नहीं देनी चाहिए अतः गुरू में त्याग भाव आवश्यक है।

शिक्षक में अपने छात्रों के प्रति प्रेम व सहानुभूति का भाव होना चाहिए ताकि शिक्षा ग्रहण का वातावरण आनन्दमयी बना रहे। इसी के साथ शिष्य के लिए भी कुछ आवश्यक गुण बताये हैं शिष्य को ज्ञान का पिपासु और जिज्ञासु होना चाहिए। शिष्य के भीतर जिज्ञासा ही वह मूल चाह है जिससे वह ज्ञान प्राप्त करता है और वह वही पाता है जो वह चाहता है। शिष्य में शुद्धता, विचार वाणी और कर्म की पवित्रता होनी चाहिए। शिष्य में लगन के साथ परिश्रम करने की इच्छा व शक्ति होनी चाहिए। शिष्य को गुरू में अटूट विश्वास होना। गुरू के प्रति विश्वास, नम्रता, विनय और श्रद्धा के बिना छात्र शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। गुरू के प्रति श्रद्धा भाव ही शिष्य में स्वतंत्र चिन्तन की शक्ति पैदा करती है।

जहाँ तक ऑकड़ों का प्रश्न है हम आज पहले से अधिक शिक्षित हैं। शिक्षा का प्रचार–प्रसार भी बढ़ा है। जिन अंचलों में शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी, वहाँ शिक्षा की व्यवस्था हुई है। प्रतिदिन ही अनेक स्कूल–कॉलेज खुल रहे हैं और प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक की सुविधाएं और अवसर लोगों को उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

लेकिन यह प्रयास आज का नहीं यह निरन्तर किये गये प्रयासों का परिणाम है जो आज दिखाई दे रहा है। शिक्षा के लिए बताए गए महत्वपूर्ण बिन्दुओं की प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है चाहे वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कहीं न कहीं हमें मिल जाती है। चाहे वह शिक्षण विधि से हो, बालक के विकास से हो, शिक्षण व्यवस्था से हो, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक हो, चाहे पाठ्यक्रम हो वह विद्यमान है। अतः कहा जा सकता है कि, भगिनी निवेदिता भारत के लिए एक ऐसी प्रकाशित दीप है जो सबको सदैव प्रकाशित करती रहेगी।

निष्कर्ष :– स्वामी विवेकानन्द निर्देश था : 'भविष्य की भारत–सन्तानों के लिए तुम एकाधार में जननी, सेविका और सखा बन जाओ।' अपने गुरूदेव के इस निर्देश का उन्होंने अक्षरशः पालन किया था। भारत की लज्जा और गर्व निवेदिता की व्यक्तिगत लज्जा और गर्व बन गये थे। किसी भी विदेशिनी ने भारत के धर्म, संस्कृति, दुःख और स्वप्न को निवेदिता की तरह अपना समझकर ग्रहण नहीं किया था। किसी भी विदेशिनी ने भारत के जनसाधारण के प्राणों की आशा–आकांक्षाओं, भारत की

अन्तरात्मा के सत्यस्वरूप को इतनी सूक्ष्मता से समझा न था। दरअसल, भारत के प्रति उनका आत्मनिवेदन इतना आन्तरिक, सर्वांगीण और परिपूर्ण था कि उनको विदेशिनी कहना ही मानों उनका अपमान करना था। उन्होंने कभी भारत की आवश्यकता, भारतीय नारी, जैसे शब्दों का उच्चारण नहीं किया, वे कहतीं हमारी आवश्यकता हमारी नारी। भारतवर्ष की बात उठते ही वे भाव–विभोर हो जाया करतीं। जपमाला लेकर वे भावस्थ हो जप करतीं भारतवर्ष, भारतवर्ष, भारतवर्ष! माँ, माँ, माँ!

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. सिस्टर निवेदिता, 'नोट्स ऑफ सम वन्डरिंग्स' (1962)
2. सिस्टर निवेदिता, 'द मास्टर एज आई सॉ हिम', (1910)
3. सिस्टर निवेदिता, 'हिन्टस ऑन नेशनल एजूकेशन इन इण्डिया (1966)
4. प्रवराजिका आत्मप्राण : विवेकानन्द की सिस्टर निवेदिता (1961)
5. प्रवराजिका आत्मप्राण : सिस्टर निवेदिता की कहानी (1910)
6. सिस्टर निवेदिता : मैने उनको मास्टर के रूप में देखा (1911)
7. सिस्टर निवेदिता : भारत पुस्तिका में राष्ट्रीय शिक्षा के संकेत, कोलकाता, बारहवा पुनर्मुद्रण संस्करण (1966)
8. चक्रवर्ती, वसुधा : सिस्टर निवेदिता, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (2002)
9. भारत की निवेदिता, स्वामी नित्याज्ञानानन्द और स्वामी उरूक्रमानन्द,रामकृष्ण मिशन इन्स्टीटयूट ऑफ कल्चर, गोल पार्क, कोलकाला– 2003 प्रथम हिन्दी संस्करण
10. Volume 2: The Web of Indian Life; an Indian Study of Love and Death; Studies from an Eastern Home; Lectures and Articles. ISBN AOE005-2
11. Volume 3: Indian Art; Cradle Tales of Hinduism; Religion and Dharma; Aggressive Hinduism. ISBN AOE005-3
12. Volume 4: Footfalls of Indian History; Civic Ideal and Indian Nationality; Hints on National Education in India; Lambs among Wolves. ISBN AOE005-4
13. Volume 5: On Education; On Hindu Life, Thought and Religion; On Political, Economic and Social Problems; Biographical Sketches and Reviews. ISBN AOE005-5

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

पंचायतीराज में महिला सशक्तिकरण तथा ग्रामीण विकास पर गाँधीवादी विचार का प्रभाव

सुमित्रा बेनल
रिसर्च स्कॉलर पी–एच.डी. राजनीतिशास्त्र, बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

प्रस्तावना :– भारत में स्थानीय स्वायत शासन का अस्तित्व प्राचीन काल से रहा है। उस समय भी महिलाओं की भागीदारी हुआ करती थी। स्वतंत्रता संघर्ष के क्रम में राजनीति और सामाजिक प्रक्रिया में महिलाओं के महत्व को समझा गया है। महिलाओं को राजनीति क्षेत्र में भागीदारी देने के लिये संविधान में कुछ प्रावधान किये गये तथा पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण दिया गया। अब महिलायें भी पंचायतों के काम में पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलकर चल रही है। ग्राम पंचायतों में जनजाति महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी सराहनीय है।

ग्राम पंचायतों में जनजाति महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी बनाने के लिए संविधान में विशेष प्रावधान किये गये है। महिलाओं की सत्ता में भागीदारी के लिये मध्यप्रदेश के 73 वें, 74 वें संविधान संशोधन के तहत् पंचायती व स्थानीय चुनाव निकाय में आरक्षण की भी व्यवस्था की गई है।

भारत विभिन्न सम्प्रदाय, धर्म, संस्कृति, क्षेत्रीय विविधताओं का देश हैं, वहीं मध्यप्रदेश में ऐसे अनेक मानव समूह है, जो आज भी सभ्यता या विकास से दूर, जंगल, पहाड़ दूरस्थ स्थल जैसे– प्राकृतिक वातावरण में निवास करते है, जिन्हें हम सामान्यतः आदिवासी, गिरीजन या अनुसूचित जनजाति के नाम से जानते है। अनुसूचित जनजाति प्राचीन समय से वनों में निवास करती आयी है, तथा वह गाँव के मुखिया को पंच परमेंश्वर को परम्परा से मानते आया है, जिसके अनुसार उनके सामाजिक जीवनचर्या का क्रियान्वयन होता है, वह जंगल से आर्थिक सहायता लेता है, नीम–हकीमों, झाड़–फूक, टिका, टोला, पूजा–पाठ से शारीरिक बिमारियों को समाप्त करना है। बंजर भूमि में कृषि मजदूरी, श्रमिक कार्य करते है।

मध्यप्रदेश में वर्ष 1994 में पंचायतीराज संस्थाओं के चुनाव कराये गये। ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, विकास खण्ड स्तर पर जनपद एवं जिला स्तर पर जिला पंचायत के चुनाव हुये। इन संस्थाओं में अनुसूचित जाति, जनजाति और महिलाओं को पर्याप्त आरक्षण दिया गया। ग्राम पंचायत के पंच, सरपंच एवं जनपद, जिला पंचायतों के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान पद्धति द्वारा किया गया। जबकि जनपद और जिला पंचायत के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष का चुनाव निर्वाचित सदस्यों में से अप्रत्यक्ष पद्धति द्वारा हुआ। पंचायती राज संस्थाओं को प्रशासकीय अधिकारों का प्रत्यायोजन किया गया तथा विकास के कार्यो, स्वास्थ्य, कृषि, राजस्व, भूमि सुधार आदि ग्रामीण उत्थान के कार्यो का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

73वें संविधान संशोधन के जरिए पंचायतों में 'आधी दुनिया' को 33 फीसदी आरक्षण दिया जा चुका हैं लेकिन आज भारी संख्या में महिलाएँ पंचायतों में चुन कर आ रही है। परंतु यह पूरा सच नहीं है। वास्तविकता यही है कि महिलाओं के नाम पर आज भी उनके पुरूष रिश्तेदार ही राजनीति करते हैं। हालांकि इस अधिनियम के जरिए अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को भी आरक्षण दिया गया है लेकिन इस वर्ग की महिलाओं की हालत जस की तस है। राजनीति में महिलाएं आज भी कठपुतलियां हैं, पुरूषों की 'डमी' मात्र हैं।

निष्कर्ष :– आज महिलाएँ घर की चाहर दीवारी से निकलकर हर क्षेत्र में प्रगति की ओर अग्रसर है। उसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सफलता के झंडे–गाड़ने शुरू कर दिए। जहाँ महिलाएँ समुद्र की गहराईयाँ को नाप आई, वहीं महिलाएँ आकाश की ऊँचाईयों को भी छू–आई हैं इसलिए दुनिया भर में महिला सशक्तिकरण की बातें की जाने लगीं।

अतः महिला सशक्तिकरण के बहुआयाम महिलाओं के संपूर्ण व्यक्तिव व सर्वागीण विकास में एक मील का पत्थर साबित होगा, ऐसी अपेक्षाएं हैं।

सुझाव :–

- पंचायत प्रतिनिधियों के लिए शिक्षा का एक निश्चित मापदण्ड तय किया जाना चाहिए ताकि इन पंचायत प्रतिनिधियों का बौद्धिक विकास हो सके। और वह अपने दायित्वों का निर्वाह उचित

तरीक से करे एवं इनमें अपने तथा गाँव के विकास के प्रति जागरूकता आए।

- ➢ पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देने में कोई कमी नहीं की जानी चाहिए ताकि सामाजिक सेवाओं ग्रामीण विकास योजनाओं के नियोजन एंव अपनी उचित भूमिका निभा सके।
- ➢ ग्राम सभा की बैठक माह में कम से कम एक बार अवश्य होना चाहिये, जिसमें ग्राम सभा के सभी सदस्यों को अपने–अपने सुझाव रखना अनिवार्य हो।
- ➢ महिला पंचायत प्रतिनिधियों को अपने अधिकारों एंव दायित्वों के प्रति सजग करने के लिए उन क्षेत्रों का भ्रमण कराना चाहिये, जिन क्षेत्रों में महिला पंचायत प्रतिनिधियों ने ग्रामीण क्षेत्रों की काया पलट कर एक नई मिसाल कायम की है। अतः उपरोक्त सुझावों को अमल में लाकर ग्रामीण विकास द्वारा ग्राम पंचायतों को सफल बनाया जा सकता है तथा ग्रामीण विकास योजनाओं को सफलतापूर्वक अनुसूचित जाति एंव जनजाति के विकास के लिए लागू किया जा सके। इस प्रकार सरकार को सकारात्मक कदम उठाने होंगे तथा जातिगत दलबंदी, गुटबंदी, परम्परागत परिपाटियों से पंचायतों को मुक्त रखना होगा तथा महिलाओं की व्यवहारिक भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी तभी 73 वां संविधान संशोधन सफल हो पाएगा। समय रहते सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक, वित्त, शोषण एवं भेद–भाव जैसी चुनौतियों की दिशा में सुधारात्मक कदम उठायें जाना चाहिए ताकि पंचायतीराज के विकास के लिए संभावनाये निर्मित हो सके।

संदर्भ–ग्रन्थ :–

- तिवारी, अशुंजा (2011) ’’ महिला उद्यमिता ’’ प्रकाशन ओमेगा पब्लिकेशन्स दरियागंज,दिल्ली
- आलोक, चेतनादित्य ”महिला सशक्तिकरण हमारे समाज का सहज स्वरूप अंक 08 मार्च 2016 केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली।
- गजेन्द्र गड़कर वसुधा ”महिला शिक्षा–एक अहम् पहलू” अंक 08 मार्च, 2016 केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली।
- देसाई, नीरा व ठॉर उषा (2009) ”भारतीय समाज में महिलाएं” राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली।
- राजकुमार (2005) ”नारी के बदलते आयाम”, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस अन्सारी रोड दरियांगज नई दिल्ली।
- पवार योगिता महेश, ”महिला सशक्तिकरण फिर भी मंजिल अभी बाकी अंक 08 मार्च, 2016 केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली।
- पाण्डेय, प्रेम नारायण (2000) ग्रामीण विकास एवं संरचनात्मक परिवर्तन रावत पब्लिकेशन जयपुर एवं नई दिल्ली।
- सिंह, अनिल, ”भारत में महिलाओं की स्थिति काल और आज”, अंक 08 मार्च, 2016 केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड, नई दिल्ली।
- चौधरी, कृष्णचंद्र जुलाई 2018 ”पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी” कुरुक्षेत्र।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

प्लास्टिक का बढ़ता हुआ उपयोग : पर्यावरण पर गंभीर खतरा

अपर्णा श्रीवास्तव
अतिथि सहायक प्राध्यापक, शिक्षा संकाय, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

प्रस्तावना :– बढ़ती आबादी और इसके साथ तकनीकी और वैज्ञानिक विकास के आधार जीवन का स्तर प्राप्त करने की चाह ने विश्व स्तर पर पर्यावरण को प्रभावित किया है। पिछले कुछ दर्शकों में तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण, प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और पर्यावरण के लिए खतरा पैदा करने वाले घातक पदार्थों के निरन्तर बढ़ते प्रयोग ने पर्यावरण और इसमें व्याप्त जीवन के समस्त रूपों के आस्तित्व को चुनौती दी है।

वर्तमान उपभोक्तावादी युग में प्लास्टिक से निर्मित वस्तुओं का चलन अत्याधिक बढ़ गया है। फर्नीचर, किचन में प्रयुक्त होने वाला सामान या अन्य कोई उपयोग सामग्री हो प्लास्टिक/पी.व्ही.सी. या पॉलीथीन का प्रचलन बढ़ता ही जा रहा है और यह पूरी दुनिया पर हावी हो गया है। प्लास्टिक के बढ़ते हुए उपयोग के संबंध में यह कहा जाये तो कोई गलत नहीं होगा कि जिस प्रकार से पाषाण युग, ताम्रयुग व लोह युग आदि का विवरण मिलता है वैसे ही आज की इस सभ्यता को प्लास्टिक युग के रूप में जाना जाएगा।

प्लास्टिक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह जैव विघटनीय (बायोडीग्रेडेबल) नहीं है। अतः इस कचरे को नष्ट करना आसान नहीं है। प्लास्टिक की पन्नियों से पर्यावरण पर दूरगामी दुष्प्रभाव होते हैं जो इस प्रकार हैं।

पर्यावरण पर प्रभाव :–

1. प्लास्टिक पूर्ण रूप से जैव अविघटनीय होता है पर्यावरण में सौ वर्षों से अधिक समय तक बना रहता है।
2. मानव स्वास्थ्य पर यह कार्सिनोजेनिक प्रभाव डालता है। त्वचा संबंधी रोग, कैंसर, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का कारण होता है।
3. मृदा में जैव श्वसन तंत्र एवं आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता को अवरूद्ध करता है जिससे पौधों का विकास प्रभावित होता है।
4. भूमिगत जल रिचार्ज में बाधा उत्पन्न करता है।
5. रंगीन/काले रंग की पॉलीथीन में रखी गई खाद्य सामग्री पॉलीथीन के रंग के प्रभाव से दूषित हो जाती है और स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालती है।
6. प्लास्टिक/पॉलीथीन की पन्नियों को जलाने से सल्फरडाईआक्साइड, कार्बन मोनोआक्साइड, नाइट्रोजन के–आक्साईड, हाइड्रोजन कार्बन्स, डाई–ऑक्सीजन, जैसी जहरीली गैस निकलती है जो पर्यावरण को दूषित करने के साथ मानव स्वास्थ्य को भी प्रभावित करती हैं।
7. पॉलीथीन की पन्नियां सीवेज पाईप को अवरूद्ध करती है एवं गंदे पानी के निकास में रूकावट पैदा करती है। सीवेज पानी की गन्दगी से मच्छर आदि कीट बढ़ते है और बीमारियों को बढ़ावा देते है।
8. प्लास्टिक की पन्नियों में भरकर खाद्य पदार्थ/जूठन आदि फेंक दिया जाता है जिसको खाने से पालतू पशुओं गयों आदि का पाचन तंत्र अवरूद्ध हो जाता है तथा उनकी मृत्यु भी हो जाती है।

प्लास्टिक से निर्मित डिस्पोसेवल वस्तुओं व पॉलीथीन की पन्नियों का प्रयोग सस्ता होता हैं अतः सामान्य तौर पर इन्हें फैकने में कोई हिचकता नहीं है। सर्वे द्वारा ज्ञात हुआ है कि पालीथीन की पन्नियों को खाने से प्रतिदिन 5 गायों की मौत हो जाती है।

मध्यप्रदेश में लगभग 50 प्रशित प्लास्टिक की रिसायकलिंग अर्थात पुर्नचक्रण कर प्रयोग किया जाता है। पुनर्चक्रित पालीथीन सस्ती होती है। अतः इसका उपयोग होटलों, सब्जी वाले द्वारा अधिक किया जाता है। वैज्ञानिक शोध द्वारा ज्ञात किया है कि रंगीन पन्नियों में घातक रसायन मिले होते हैं जैसे–

काला रंग – लेड

हरा रंग – बेरियम

लाल रंग – क्रोमियम

नीला रंग – तांबा

अतः रंगीन पॉलीथीन की थैलियों में प्रयुक्त हानिकारक रसायन उसमें रखी गई खाद्य सामग्री के साथ मिलकर हमारे शरीर में पहुँचते है और अपना दुष्प्रभाव छोड़ते हैं।

हमारे देश में प्लास्टिक व पॉलीथीन की पन्नियों के बढ़ते प्रयोग को कम करने के सम्बन्ध में भारत सरकार के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 'पर्यावरण संरक्षण' अधिनियम 1986 बनाया जिसके अन्तर्गत प्लास्टिक विनिर्माण एवं उपयोग नियम 2 सितम्बर 1999 को जारी किये गये। इसके बाद इस अधिसूचना को 16 जून 2003 को पुनः कुछ संशोधन कर और अधिक प्रभावशाली बनाया गया एवं इन्हें प्लास्टिक विनिर्माण विक्रय और उपयोग नियम 1999 कहा गया।

अधिसूचिना के मुख्य बिन्दु :– कोई भी विक्रेता पुनर्चक्रित प्लास्टिक से निर्मित पॉलीथीन की पन्नियों में खाद्य पदार्थों को रखना, भरकर ले जाना, प्रदान करना, पैकेजिंग के लिए उपयोग नहीं करेगा।

प्लास्टिक से बने कैरी बेगों/पात्रों के निर्माण की शर्ते :– पॉलीथीन की पन्नियां (कैरी बेग) अनुप्रयुक्त प्लास्टिक से उसके प्राकृतिक रंग अथवा सफेद रंग से बनायी जावेगी। पुनर्चक्रित प्लास्टिक से बनाये गये पात्रों का विनिर्माण ऐसे रंजकों और रंगों का उपयोग करते हुए किया जायेगा जो खाद्य पदार्थो, जीवों, पेयजल के सम्पर्क में आने वाले प्लास्टिक के लिए प्रयुक्त होने वाले रंजकों और रंगों की सूची भारतीय मानक ब्यूरो (आई.एस.) 9833:1981 के प्रावधानों के अनुसार होगे।

पुनर्चक्रण :– प्लास्टिक का पुनर्चक्रण आई.एस. 14534:1998 के अन्तर्गत उल्लेखित प्लास्टिक के पुनर्चक्रण के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के अनुसार होगा।

चिन्हांकन :– पुनर्चक्रित प्लास्टिक से निर्मित वस्तु/अन्तिम उत्पादक के पुनर्चक्रित अंकित किया जावेगा। साथ ही उसे निर्मित करने के दौरान पुनर्चक्रित प्लास्टिक का प्रतिशत भी दिया जाना चाहिए जो कि आई.एस. 14534:1998 के अनुसार हो।

कैरी बेगों की मौटाई :– पुनर्चक्रित कैरी बैगों की मोटाई 20 माइक्रोन से कम नहीं होना चाहिए तथा इनका आकार 8–12 इंच (20–30 से.मी.) से कम नहीं होगा।

कतिपय व्यक्तियों द्वारा स्वतः विनियमन :– उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना 'प्लास्टिक इण्डस्ट्री एसोसियेशन' अपनी सदस्य इकाईयों द्वारा विनियमन उपाय करेगी।

नियम को लागू करने संबंधी विभाग/संस्था :– पॉलीथीन संबंधी वस्तुओं के निर्माण एवं पुर्नचक्रण संबंधी नियमों को लागू करने संबंधी राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड। उपयोग– संग्रहण, पृथकीकरण, परिवहन, निष्पादन (डिस्पोजल) : जिला कलेक्टर/जिले के उप आयुक्त/ मुख्य कार्यपालन अधिकारी (स्थानीय संस्थाएं/संबंधित नगर पालिका निगम)।

नियमों का उल्लंघन/दण्डात्मक कार्यवाही :– पर्यावरण संरक्षण अधिनियम अथवा नियमों, आदेशों, निर्देशों को पूर्णतः पालन न होने पर अथवा उल्लंघन करने पर दण्डात्मक कार्यवाही के रूप में 5 वर्ष तक की जेल अथवा एक लाख रुपये जुर्माना तथा जेल/जुर्माना दोनों का प्रावधान है। यदि लगातार उल्लंघन होता है तो अतिरिक्त जुर्माना 5000/ रुपये प्रतिदन के हिसाब से होगा।

यदि उक्त अधिनियम, आदेश व नियमों का उल्लंघन का एक वर्ष तक निरंतर पाया गया तो दोषी को 7 वर्ष की जेल की सजा होगी।

पॉलीथीन के विकल्प के रूप में बायोडिग्रेडेवल प्लास्टिक :– बायोडिग्रेडेवल प्लास्टिक उत्पादक के संबंध में हमारे देश में तिरूवन्तपुरम स्थित सेन्ट्रल ट्यूबर क्रोम्स रिसर्च इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने टैपिमोका के स्टार्च की मदद से बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक का निर्माण किया है। टैपिमोका की खेती बड़े पैमाने पर केरल, तमिलनाडु में की जाती है। इस क्षेत्र में स्टार्च/साबूदाना बनाने के सैकड़ों उद्योग स्थित है। वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक उत्पादन के दौरान विशेष रसायनों में स्टार्च के घोल को डाला। इस तरह वायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक का निर्माण हुआ यह प्लास्टिक 6 महीनों के अंदर विखण्डित हुआ परन्तु विखण्डित की यह प्रक्रिया सूर्य की रोशनी में ही होती है। अतः वैज्ञानिक इस शोध से संतुष्ट नहीं और इसमें अन्य मिश्रण द्वारा इन्हें अधिक प्रभावी बनाने में प्रयासरत है।

इसी सम्बन्ध में तमिलनाडु के डॉ. राजगोपालन वासुदेवन जो भारतीय वैज्ञानिक है। इन्होंने प्लास्टिक से उत्पन्न होने वाले कचरे से सड़क बनाने का फार्मूला दिया है। इस फार्मूले के तहत जो सड़कें

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

बनाई वह टिकाऊ, कम लागत में बन जाती है। इसके अतिरिक्त विदेशी संस्थान के सहयोग से हरियाणा की एक फर्म के द्वारा भी बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक के सम्बन्ध में शोध किये जा रहे हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में हमें कहीं न कहीं पॉलीथीन के प्रयोग की भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। इन दुष्परिणामों को दृष्टिगत रखते हुए हमारे देश के कुछ राज्यों में भी पॉलीथीन की पन्नियों पर पूर्णतः अथवा अंशतः प्रतिबंध लगाया गया है।

इसी तरह अन्य राज्यों में भी बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक बनाने के संबंध में शोध कार्य किये जा रहे है जिससे भयंकर खतरे से निजात मिल सके।

शोध कार्यों के साथ–साथ साधारण मानव को भी अपने पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक होने की आवश्यकता है व पर्यावरण संरक्षण व प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने के लिए प्रयास करना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण हेतु उपाय :–

1. यथासंभव पुर्नचक्रण योग्य सामग्री जैसे स्टील, कांच द्वारा निर्मित वस्तुओं का प्रयोग करना।
2. जल/बिजली का आवश्यकतानुसार उपयोग करना।
3. प्लास्टिक की थैलियों का कम से कम प्रयोग करना।
4. ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोतों का उपयोग करने का प्रयास करना।
5. प्राकृतिक जल संसाधनों में कचरे का बहाव न करना।
6. प्रदूषण रोकने के लिए जलाऊ लकड़ी का उपयोग कम करना जिसके लिए विद्युत शवदाह गृहों का उपयोग करना।
7. प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने के लिए रासायनिक/जैविक खादों/ कीटनाशकों को संतुलित रूप से उपयोग करना।
8. सिंचाई के लिए ड्रिप/स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति से प्रयोग कर जल का सीमित उपयोग करने का प्रयास करना चाहिए।
9. घरों से उत्सर्जित कचरे के विभिन्न भागों जैसे– जैवीय कचरा, कागज, बोतलें, प्लास्टिक इत्यादि को पुनर्चक्रीयकरण क्रिया हेतु अलग–अलग एकत्रित करें।
10. औद्योगिक और बाहरी बहिस्त्राव वाले जल के उचित उपचार के बाद वृक्षारोपण और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उसका उपयोग करने का प्रयास करना चाहिए।
11. प्राकृतिक जल संसाधन में मृत मवेशी, मानव शरीर और कचरे का बहाव न करें।
12. वायु एवं ध्वनि प्रदूषण रोकने के लिए वाहनों की निरन्तर जाँच करते रहना चाहिए।

निष्कर्ष :– इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे उपाय हैं जिनकी सहायता से या जिन तरीकों को हम अपनाकर कम से कम अपने पर्यावरण को हानि पहुंचा सकते हैं बस आवश्यकता है जन चेतना की।

अनियोजित एवं अवैज्ञानिक ढंग से भवन निर्माण, खनन, औद्योगीकरण, प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित शोषण इत्यादि पर्यावरण असंगत कार्यों को यथाशीघ्र बंद कर देना चाहिए तथा प्रत्येक कार्य पर्यावरण संगत विधि से करना चाहिए तथा हमारा पर्यावरण संतुलित रह सकेगा।

पर्यावरण से सम्बन्धित मुख्य दिवस :–

1. विश्व वानिकी दिवस – 21 मार्च
2. विश्व स्वास्थ्य दिवस – 7 अप्रैल
3. विश्व पृथ्वी दिवस – 22 अप्रैल
4. विश्व पर्यावरण दिवस – 5 जून
5. विश्व जनसंख्या दिवस – 11 जुलाई
6. विश्व स्वच्छता दिवस – 2 अक्टूबर
7. विश्व वन्यप्राणी सप्ताह – 2–8 अक्टूबर
8. राष्ट्रीय पर्यावरण दिवस – 25 नवम्बर
9. प्रदूषण निवारण दिवस – 2 दिसम्बर
10. विश्व प्रदूषण दिवस – 3 दिसम्बर

सन्दर्भ सूची :–

1. श्रीवास्तव, डॉ. पंकज : 'पर्यावरण शिक्षा', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2007
2. शर्मा, डॉ. आर.ए. : 'पर्यावरण शिक्षा', आर लाल बुक डिपो, मेरठ
3. मित्तल, डॉ. संतोष : '21वीं सदी में पर्यावरण एवं शिक्षा' मीनू अग्रवाल, मेरठ
4. पर्यावरण संचेतना पत्रिका, इन्वायरमेंट केयर एण्ड सस्टेनेबल डेवलपमें सोसायटी, जबलपुर, संशोधित संस्करण 2007
5. शर्मा एवं माहेश्वरी : 'मूल्य, पर्यावरण और मानव अधिकार की शिक्षा', मेरठ

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

डॉ. शकीला खान
(अतिथि शिक्षक), शिक्षा शास्त्र विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि. सागर

सारांश :– प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य बदलते हुए भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना। प्रारंभ में महिलाओं की स्थिति काफी सोचनीय थी। महिलाओं को शक्ति, धन ज्ञान का प्रतीक समझा जाता था परन्तु फिर भी व्यावहारिक रूप में महिलाओं की स्थिति में कई प्रश्नवाचक चिन्ह लगे हुए थे। क्यों महिलाओं को पति की सेवक, दासी समझा जाता था। क्यों शिक्षा से वंचित रखा, जाता था। सम्पत्ति पर अधिकार नहीं था। मध्यकाल में तो महिलाओं का जीवन दुर्भाग्य बन गया था जबरजस्त गिरावट आयी, रूढियां जकड़ती गई, नारी अवला, भोग्या, बनकर रह गयी।

हमारे समाज में नारी की स्थिति वह नहीं है जो होनी चाहिए। नारी को गौण स्थान प्राप्त है जन्म से ही लड़का व लड़की में भेद किया जाता है जैसी ही बच्ची बड़ी होती जती है प्रतिबंधों की जंजीरे कड़ी होती जाती है। विवाह के बाजार में उसको केवल एक वस्तु की तरह समझा जाता है। सामाजिक जीवन का रथ एक पहिए से नहीं चल सकता किन्तु फिर भी न जाने क्यों दूसरे पहिए को महत्व क्यों है। महिलाऐं जनसंख्या का लगभग आधा भाग होती है। यदि आधा भाग अविकसित रह जाएगा तो कोई भी देश अविकसित व्यक्तित्व से महान नहीं पायगा यही कारण है कि भारत उन्नति की दौड़ में पीछे रह गया है।

अभी भी देर नहीं है आइए हम महिला को वह स्थान प्रदान करें जिसकी वह अधिकारणी है। आजादी के बाद हमने इस दिशा में सोचना और कार्य करना प्रारंभ किया एवं सोचनीय स्थिति में दलदल से निकालने का प्रयास किया है। दहेज निवारण अधिनियम, मातृत्व लाभ अधिनियम, समान पारिश्रमिक अधिनियम शारदा एक्ट आदि कुछ उपाय है जिनको महिलाआं की दशा सुधारने के लिए अपनाया गया है कई बार उतार चढ़ाव ने बाद आज वर्तमान भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में कई परिवर्तन व सुधार हुए प्रस्तुत अध्ययन में यही देखने का प्रयास किया गया कि महिलाओं की विभिन्न युगों में स्थिति क्या थी और वर्तमान में किस प्रकार सुधार हो रहा है।

की वर्ड :– भारतीय समाज, महिलाऐं, निर्योग्यताऐं, सुधार, स्थिति।

भारत में हमेशा से ही सैद्धांतिक रूप में नारी की मर्यादा रही है और उसका आदर हुआ है नारी शक्ति, धन और ज्ञान का प्रतीक मानी गई है अपने देश को हम 'भारत माता' कहकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी व्यावहारिक रूप से विभिन्न कालों में भारत में स्त्रियों की स्थिति उठती और गिरती रही है।

वैदिक युग :– यह हिन्दू समाज का स्वर्ण युग था। इस युग में नारी की स्थिति न केवल अच्छी थी बल्कि अत्यन्त उन्नत थी वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति उनसे आत्म विकास, शिक्षा, विवाह, सम्पत्ति आदि के संबंध में प्रायः पुरूषों के समान थी। ऋग्वेद के अनुसार पत्नी ही घर है महाभारत के कथानुसार घर, घर नहीं यदि हम उस घर में पत्नी नहीं।

वैदिक युग में लड़कियों की गतिशीलता पर कोई शक नहीं था न ही शिक्षा प्राप्त करने के संबंध में कोई प्रतिबंध था – वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था, सम्पत्ति में उनका बराबरी का हक था। सभा व समितियों में उनका बराबरी का हक था। सभा तथा समितियों में से स्वतंत्रापूर्वक भाग लेती थी किसी भी समाज में नारी की स्थिति उस वक्त के सांस्कृतिक और बौद्धिक प्रगति को बताती है और वहां की सभ्यता की सच्ची परख वहां की नारी के इतिहास से पता चलता है। परन्तु ऋग्वेद में कुछ ऐसी उक्तियां भी है। जो महिलाओं के विरोध में दिखाई पड़ती है मैत्रयी संहिता में स्त्री को शूद्र का अवतार कहा गया है। स्त्रियों के साथ कोई मित्रता नहीं है। इसका ह्रद्रय भेड़ियों का ह्रदय है। स्त्रियों को दास की सेवा का अस्त शस्त्र कहा गया। स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी कही न कहीं स्त्रियों को नीची दृष्टि से देखा जाता था फिर भी हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदर और प्रतिष्ठित थी। शिक्षा धर्म, व्यक्तित्व, सामाजिक विकास

में उसका महान योगदान था। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की अवनति शुरू हो गयी धर्म सूत्रों में बाल विवाह का निर्देश किया गया। जिसमें स्त्रियों की शिक्षा में बाधा पहुंची उन पर अनेक निर्योग्यताओं का आरोपण कर दिया गया, निन्दनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा स्वतंत्रता और उन्मुक्तता पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाये जाने लगे, बहु पत्नी प्रथा का प्रचलन बढ़ गया स्मृतिकारों ने यह निर्देश दिया की स्त्रियों को किसी अवस्था में स्वतंत्र न रखा जाए बचपन में उन्हें पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रखना उचित होगा। विधवाओं के पुनर्निवाह पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिए गए सती होना सर्वोत्तम समझा गया।

मध्ययुग :— पुराने समय में पुरूष के साथ चलने वाली स्थिति मध्य युग में पुरूष की सम्पत्ति समझी जाने लगी। और इनकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी। पर्दाप्रथा इस सीमा तक बढ़ गयी कि स्त्रियों के लिए कठोर एकान्त नियम बना दिए गए शिक्षण की सुविधा पूर्ण रूपेण समाप्त हो गई।

नारी के संबंध में मनु का कथन "पिता रक्षित कौमारे भर्ता रक्षति यौवने पुत्रक्षति स्थागिरे भावे न स्त्री स्वातन्नयम् अर्हति"। वहीं पर उनका कथन "यत्र नार्मस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की दृष्टव्य है वस्तुतः यह समस्या प्राचीनकाल से रही है। इसमें धर्म, संस्कृति, साहित्य परम्परा रीतिरिवाज और शास्त्र को कारण माना गया है।

मध्यकाल में विदेशियों के आगमन से स्त्रियों की स्थिति में जबरदस्त गिरावट आयी। अशिक्षा और रूढ़ियां जकड़ती गई, घर की चार दिवारी में कैद होती गयी और नारी एक अबला रमणी और भौया बनकर रह गयी। मनीषियों ने हिन्दु धर्म की रक्षा, स्त्रियों के मातृत्व और रक्त की शुद्धता बनाये रखने के लिए स्त्रियों के संबंध में नियमों को कठोर बना दिया है।

ऊँची जाति में शिक्षा समाप्त हो गई और पर्दा प्रथा का प्रचलन हो गया। विवाह की आयु घटकर 8—9 वर्ष हो गयी विधवाओं का पुनर्विवाह पूरी तरह समाप्त हो गया। और सती प्रथा चर्म सीमा पर पहुंच गयी इस युग में केवल स्त्रियों के सम्पत्ति के संबंध में सुधार हुआ और उन्हें पिता की सम्पत्ति में उत्तराधिकार मिलने लगा।

उन्नसवी सदी के पूर्वार्द्ध में भारत के कुछ समाजसेवियों जैसे राजाराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर तथा केशवचन्द्र सेन ने अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठायी, फलस्वरूप वर्षों से नारी स्थिति में आयी गिरावट में रोक लगी। आने वाले समय में स्त्री जागरूकता में वृद्धि हुई और नये नारी संगठनों का सूत्रपात हुआ जिनमें स्त्री शिक्षा, दहेज, बाल, विवाह जैसी कुरीतियों पर रोक, महिला, अधिकार महिला शिक्षा की मांग की गई। जब जब सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक शोषण की शिकार नारियों जब खुद अपनी पहचान की तलाश की है तब उनको सफलता अवश्य मिली है।

आधुनिक युग :— मध्यकालीन युगों में तो स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी ही पर आधुनिक समय में भी उनकी निर्योग्यताएं कम नहीं अर्थात् उनकी स्थिति अधिक नही सुधरी। स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारतीय महिलाऐं जिन निर्योग्यताओं का शिकार थी वह निम्न है।

1. सामाजिक निर्योग्यताएं :— सामाजिक जीवन के संबंध में कुछ निर्योग्यताऐं इस प्रकार थी— शिक्षा — महिलाओं को काफी समय से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रहा है। शिक्षा केवल नौकरी के लिए ही आवश्यक समझी जाती है और महिलाओं को नौकरी करना उचित नहीं समझा जाता है बाल विवाह और पर्दाप्रथा जाती कुरीतियां भी स्त्रियों की शिक्षा में बाधक थे।

नौकरी :— परम्परागत रूप से महिलाओं का घर से बाहर काम करना पारिवारिक सम्मान के विरूद्ध समझा जाता था। वे माता पहले है और उपार्जिका बाद में। स्वतंत्रता के पूर्व तक स्त्रियां न के बराबर ही नौकरी करते हुए देखी गई थी।

समिति और संघ :— लड़कियां द्वारा समिति और संघ बनाना एक नवीन कल्पना है स्वतंत्रता पूर्व तक इसे उचित नहीं समझा जाता था, स्त्रियों में शिक्षा का अभाव और पर्दाप्रथा का अत्यधिक प्रचलन होने के कारण किसी प्रकार की समिति या संघ का गठन करना उनके लिए स्वप्न था।

2. आर्थिक निर्योग्यताए :— स्वतंत्रता से पहले स्त्रियों को सम्पत्ति के संबंध में कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे

यहां तक कि अविवाहित कन्या का भी संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में अधिकार नहीं था। विवाहिता स्त्री के स्त्रीधन के अतिरिक्त और किसी अन्य प्रकार के सम्पत्ति संबंधी अधिकार व्याहारिक रूप में नहीं थे।

3. **पारिवारिक निर्योग्यताएं** :– विधवा माताओं की अवहेलना भारतीय परिवार की एक सामान्य विशेषता रही है पत्नी के रूप में उनकी स्थिति काफी दयनीय थी। पुरूषों की दृष्टि से वे दासी थी सास ससुर की सेवा करना उनका परम कर्तव्य समझा जाता था। पुत्री के रूप में स्थिति चिन्ताजनक थी इन्हें और स्वस्थ समझा जाता था, उनका शीघ्र विवाह कर दिया जाता था। इनकी स्वीकृति इच्छा अनिच्छा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था

राजनीतिक निर्योग्यताएं :– सन् 1919 तक स्त्रियों को वोट देने का अधिकार पूर्णतः प्राप्त नहीं था। 1919 की सुधार योजना में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने महिलाओं को मताधिकार देने का प्रश्न प्रान्तीय परिषद पर छोड़ दिया। 1935 के एक्ट में भी इस संबंध में कोई विशेष सुधार नहीं हुए और महिलाओं को मताधिकार केवल उनकी शिक्षा, पति की स्थिति, सम्पत्ति आदि के आधार पर दिया गया।

वर्तमान भारत में स्त्रियों की स्थिति :– अभी कुछ वर्ष पहले तक की भारत में स्त्रियां मध्यकालीन युग की परिस्थितियों में रहती थी और इनका शोषण भी हो रहा था। इसी शोषण के विरूद्ध स्त्रियों का महिला आन्दोलन प्रारंभ हुआ और परम्परा रूप से चली आ रही निर्योग्यताओं को चुनौती दी गयी इसी सन्दर्भ में महिलाओं की स्थिति में अनेक सुधार हुए।

1. **सामाजिक स्थिति में सुधार** – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है उनमें सामाजिक चेतना की आज नयी लहर देखने को मिलती है महिलायें रूढ़िवादी विचारों से दूरी होती जा रही है और नये तार्किक आदर्शों और मूल्यों को भी अपनाती जा रही हैं समाज में भी अब उनको आदर सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

2. **परिवार और विवाह के सम्बन्ध में उच्च स्थिति** – परिवार और विवाह के संबंध में आज भारतीय महिलाओं की स्थिति नहीं अधिक उच्च है। सन् 1929 में बाल विवाह अवरोध अधिनियम द्वारा बाल विवाह का अन्त कर दिया गया।

सन् 1961 में दहेज प्रतिबंध अधिनियम के द्वारा दहेज देना अपराध घोषित कर दिया गया। 1954 के विशेष विवाह अधिनियम ने स्त्रियों को धार्मिक व अन्य सभी प्रकार के प्रतिबन्धों से दूर विवाह करने की आज्ञा दे दी है। अब बहुपत्नी विवाह गैर कानूनी है इन सभी कारणों से परिवारों के अन्तर्गत भी स्त्रियों की स्थिति काफी सुधरी है।

3. **उच्च आर्थिक स्थिति** – आज महिलायें पति पर आश्रित नहीं है वे स्वयं सक्षम है वर्तमान भारत में महिलायें हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व बना रही है। आज भारत में विभिन्न मुख्य धन्धों में नौकरी करने वाली महिलायें की संख्या 10 करोड़ से भी अधिक है। 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के तहत पुरूषों के समान महिलाओं को सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हो गए है। निश्चय ही स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है।

4. **शिक्षा के सम्बन्ध में सुधार** – आज महिलायें शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ रही है। आज महिलायें वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, व्यावसायिक सभी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रही है। सरकार भी महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न योजनाऐं चला रही है। राज्य सरकारों ने लड़कियों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करके सराहनीय योगदान दिया है।

5. **राजनीतिक क्षेत्र में समानता** – स्वतंत्रता के पूर्व महिलाओं को वोट देने का अधिकार नहीं था परन्तु आज लोकसभा विधानसभा आदि के सदस्य के लिए उम्मीदवार होने का अधिकार है। पंचायत नगर पालिका आदि के चुनाव में काफी सीटे महिलायें के लिए आरक्षित कर दी गयी है। फलस्वरूप महिलाओं में पर्याप्त राजनीतिक चेतना आई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा उनकी आर्थिक सामाजिक शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर 21 वी सदी तक आते–आते पुनः महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ महिलाऐं सभी क्षेत्रों में चुनौतीपूर्ण कार्य कर अपनी योग्यता का प्रदर्शन कर रही है। आज की नारी, राजनीति, कारोबार कला तथा नौकरियों में पहुंचकर नये आयाम गढ़ रही है। भूमण्डलीकृत दुनिया में भारत की नारी ने अपनी एक नितांत सम्मानजनक जगह कायम कर ली है आंकड़े दर्शाते है कि प्रतिवर्ष कुल परीक्षार्थियों में 50 प्रतिशत महिलायें डाक्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण करती है। 12 प्रतिशत महिलायें विभिन्न राज्यों की मुख्यमंत्री बन चुकी है। साफ्टवेयर उद्योग में 21 प्रतिशत पेशेवर महिलाऐं हैं। फौज, राजनीति, जेल, पायलट तथा उद्यमी क्षेत्रों में महिलाओं के होने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। वहां सिर्फ नारी स्वयं को स्थापित ही नहीं कर पायी है बल्कि वहाँ सफल भी हो रही है।

वर्तमान समय में भारतीय सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं का संचालन तो हो रहा है लेकिन इन योजनाओं का क्रियान्वयन निचले स्तर तक उचित ढंग से न पहुँच सकने के कारण स्त्रियों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। विवेकानंद का यह कथन है कि "किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति, हमें नारियों की ऐसी स्थिति में पहुंचा देना चाहिए। जहां वे अपनी समस्याओं को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सके।" हमें नारी शक्ति के उद्धारक नहीं वरन उनके सेवक और सहायक बनना चाहिए। भारतीय नारियां, संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भांति अपनी समस्याओं को सुझलाने की क्षमता रखती है आवश्यकता है उन्हें उपयुक्त अवसर देने की। इसी आधार पर भारत के उज्जवल भविष्य की सम्भावनाऐं सन्निहित है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. आहुजा, राम (1999) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन, जयपुर, नई दिल्ली
2. भारत 2000, पृ. 294–297 पर आधारित
3. गुप्ता डॉ0 एस0पी0, गुप्ता डॉ0 अलका (2016) शिक्षा के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य शारदा पुस्तक भवन, पृ0 126
4. ज्योत्सना तिवारी, "वर्ष 95 के आइने में आधी दुनिया का सफर" दैनिक जागरण बरेली 20 दिसम्बर 1999, पृ. 12
5. मुखर्जी डॉ. रवीन्द्रनाथ, अग्रवाल डॉ0 भरत, 2012 भारतीय सामाजिक व्यवस्था, विवेक प्रकाशन, पृ. 403–410
6. राजीव सथान, "नारी प्रगति की गति" दैनिक जागरण बरेली 6 मार्च 1998 पृ. 1–3 से साभार उद्धृत
7. राजकुमार, डॉ. नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, 2005
8. www.hindikiduniya.com (2011)
9. www.rachankar.org (2015)
10. www.wemenaonce.com (2014)

SRF

डिन्डौरी जिले की जैव विविधता

विजय सिंह मार्को
शोधार्थी– भूगोल, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
डॉ. ब्रम्हानंद त्रिपाठी (शोध निर्देशक)
प्राध्यापक भूगोल, शासकीय स्वशासी मानकुंवर बाई कला एवं वाणिज्य महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

जैव विविधता से तात्पर्य :– जैव विविधता से तात्पर्य पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त जीव जगत की विविधत से है। जीवन के समस्त रूप जैसे मानव, जन्तु, पादप और सूक्ष्म जीव एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि इनमें से किसी एक में बाधा उत्पन्न होने पर अन्य सभी का सन्तुलन बिगड़ने लगता है। यदि किसी पादप अथवा जन्तु की जाति किसी कारण से संकटग्रस्त है जो उस स्थान का पर्यावरण किसी न किसी स्तर पर असन्तुलित हो जाता है। इस कारण मानव जाति का जीवन भी संकट में आने लगता है। जैव विविधता अधिनियम 2002 के अनुसार ''जैव विविधिता'' से आशय समस्त स्त्रोतों एवं पारिस्थतिकीय संकुलों से अंग के रूप में जीवन के रूपों की विविधता से है एवं इसमें एक प्रजाति के अंदर, विभिन्न प्रजातियों के मध्य एवं विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों के मध्य विविधता सम्मिलित है। सर वाल्टर जी रोंसन ने जैव विविधता को पारिभाषित करते हुए कहा है कि पादपों, प्राणियों, सूक्ष्म जीवों में पायी जाने वाली विभिन्न किस्में तथा विभिन्नतायें जैव विविधता कहलाती है। दूसरे शब्दों में पादपों, प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवों की जातियों में प्रचुरता के फलस्वरूप एक निश्चित आवास में अन्योन्य क्रियातंत्र में विविधता उत्पन्न होती है जो जैव विविधता कहलाती है। यह विविधता हमें यह आभास कराती है कि प्रकृति में उपस्थित प्रत्येक जीव इस प्रकृति को बनाये रखने में समान रूप से योगदान देता है। अतः जैव विविधता वास्तव में विभिन्न जीवों की पारस्परिक क्रियाओं और उनके महत्व को दर्शाते है।

भारतीय संस्कृति में जैव विविधता व वन्यप्राणियों से सम्बन्धित ज्ञान एवं उनके संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति जागरूकता प्राचीन समय से है। हिन्दू देवी–देवताओं के कई ववाहन पशु–पक्षी का होना मनुष्य के साथ प्राणियों के पुरातन सम्बन्ध को प्रदर्षित करता है। 300 वर्ष ईसा पूर्व रचित कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वन क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है, जिसमें कुछ पशु–पक्षियों एवं मछलियों को संरक्षण दिया गया था तथा उनका आखेट प्रतिबंधित किया गया था।

डिन्डौरी जिला – परिचय :– 25 मई सन् 1998 में मध्यप्रदेश के मण्डला जिले को 2 भागों में विभाजित कर मण्डला जिले के ही तहसील डिन्डौरी को जिला बनाया गया है। डिन्डौरी जबलपुर सम्भाग का जिला है। भौगोलिक दृष्टि से डिन्डौरी जिला मध्यप्रदेश राज्य के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। जिला डिन्डौरी म.प्र. के 5 (पाँच) जिलों की सीमाओं को स्पर्श करती है। जिले के उत्तर दिशा में जिला उमरिया, उत्तर पूर्व में अनूपपुर, उत्तर पश्चिम में जबलपुर, पश्चिम में मण्डला एवं दक्षिण दिशा में बालाघाट जिला स्थित है। डिन्डौरी जिले की अक्षांशीय एवं देशान्तरीय विस्तार इस प्रकार है– अक्षांशीय स्थिति भूमध्य रेखा से 22.00º से 23.22º उत्तरी अक्षांश, तथा 80.85º से 80.58º पूर्वी देशांतर के मध्य में स्थित है। समुद्र तल से डिन्डौरी जिले की अधिकतम ऊँचाई 1100 मीटर एवं न्यूनतम ऊँचाई 885 मीटर है। जिले का कुल क्षेत्रफल 6128 वर्ग कि.मी. है। वन संसाधनों के अंतर्गत वनों का क्षेत्रफल 230761.12 हेक्टेयर में फैला हुआ है।

डिन्डौरी जिले का सम्पूर्ण भाग सतपुड़ा श्रेणी, भौतिक प्रदेश के पूर्वी और उत्तर दक्षिणी भग में फैली मैकाल श्रेणी के अंतर्गत आता है। डिन्डौरी जिला सतपुड़ा मैकाल श्रेणी से आच्छादित है, जो गोंडवाना शैल समूह से निर्मित है। इस जिले में ऊँची–नीची पहाड़ियो के समूह और मैकाल श्रेणी की उपश्रृंखलाएँ फैली हुई हैं। जिले का ऊँचा भू–भाग चौरादादर पहाड़ी क्षेत्र है, जो डिन्डौरी जिले के पूर्व में स्थित है। चौरादादर पठारी भाग डिन्डौरी जिले को छत्तीसगढ़ राज्य बड़े निम्न भू–भागों से अलग करता है। डिन्डौरी जिले के पूर्वी भाग में पहाड़ों और खड़े ढाल वाले भाग अधिक हैं, जिले के इन्हीं क्षेत्रों में उत्पन्न हुए छोटी–छोटी नदियों के किनारे उपजाऊ भू–भाग है। इसमें से कुछ महत्वपूर्ण नदी बेसिन है। डिन्डौरी जिला

SRF

मुख्यालय से 88 किलो मीटर की दूरी पर अमरकंटक, नर्मदा नदी का उद्गम स्थल हैं, जिसकी समुद्र तल से ऊँचाई 1124 मीटर है। नर्मदा घाटी के उत्तरी भाग का अंश अधिकांशतः उच्चावच युक्त है, जो ऊबड़ – खाबड़ है। बीच–बीच में कुछ स्थानों पर उपजाऊ काली मिट्टी के क्षेत्र दृष्टि गोचर होते हैं। यहाँ पर आर्कियन युग की चट्टानें दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें शिष्टयुक्त नीस तथा ग्रेनाइट मुख्य है। जिले में क्रिटेशियस क्रम की चट्टानें मिलती हैं।

डिण्डौरी महाकौशल अंचल का एक महत्वपूर्ण जिला माना जाता है। यह अपनी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक धरोहर के कारण भारत में एक अलग पहचान बनाये हुए है। डिण्डौरी जिले के बजाग, समनापुर तथा करंजिया विकास खंडों के 52 वनग्राम, जो बैगा जनजाति बाहुल्य वाले हैं को मिलाकर ''बैगा चक'' क्षेत्र कहा जाता है। ये गाँव बैगा चक की रीढ़ की तरह महत्वपूर्ण हैं। इस जिले की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ बहुत बड़े क्षेत्रफल में वन पाये जाते हैं। इसके अलावा जीव–जन्तुओं की भी अनेक प्रजातियाँ पायी जाती हैं। कुल मिलाकर जैव विविधता के दृष्टिकोण से यह एक विकसित जिला माना जा सकता है।

डिण्डौरी जिले की मृदा :– डिण्डौरी जिले के मृदा में काफी भिन्नता है, जो कम रेतीली से लेकर लाल मुरमी, काली भूरी मिट्टी तक है। यहाँ का अधिकांश भाग पथरीला एवं अधिक उच्चावच युक्त है।

1. **कन्हार या काबर मिट्टी** – यह मिट्टी नदियों के किनारे एवं पहाड़ी की तलहटी में पाई जाती है। इसे सामान्यतः काली मिट्टी (Black Cotton Soil) कहा जाता है। यह सबसे अच्छी एवं फसलों के लिए उपयुक्त मिट्टी मानी जाती है।

2. **मोरंड मिट्टी** :– यह भी एक प्रकर की काली मिट्टी है, जिसमें नुकीले छोटे–छोटे सफेद चूने पत्थर के कण पाये जाते हैं। जिसे कंकण कहते है। इसमें सभी प्रकार के अनाज पैदा होते हैं।

3. **सेहरा मिट्टी** – इस प्रकार की मिट्टी में शुद्ध रेतीले हल्के पीले रंग के कमजोर कण पाये जाते है। यह मिट्टी चावल की पैदावार के लिए अति उत्तम है।

4. **कछारी मिट्ट** – यह अत्याधिक उपजाऊ मिट्टी है। इस मिट्टी का निर्माण नदियों के नवीन रेतीले निक्षेपों से होता है। नदी किनारे के इस प्रकार की मिट्टी को कछारी मिट्टी कहा जाता है।

5. **भर्रा मिट्टी** – यह मिट्टी निम्न किस्म की होती है। इसका रंग लाल मुरम के सदृश्य एवं पथरीली होती है। इसमें कोदो, कुटकी, मक्का आदी की फसल ली जाती है, अर्थात मोटे अनाज ही पैदा होते हैं।

डिण्डौरी जिले का अपवाह तंत्र :– डिण्डौरी जिले में प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदियों में नर्मदा तथा उसकी सहायक नदियाँ बुढ़नेर, सिल्गी, खरमेर, तार, सिवनी, मछरार, महानदी आदि नदियाँ प्रवाहित होते हैं। इनके अलावा जिले में प्रवाहित होने वाली छोटी–बड़ी नदियों का विवरण इस प्रकार है–

शहपुरा विकास खंड में कोढ़ार नदी कालाखोह नदी, दूनिया नदी, कसा, खरनेर, कनई, तेयी नदियाँ प्रवाहित होती है। अमरपुर विकास खंड में खरमेर, कटरार, घनघनी, कचनार, छापन नदियाँ प्रवाहित होती है। समनापुर विकासखंड में – मछरार, लपटी, खरमेर, छमना, छिपानी, बुढ़नेर, भोजोड़ नदियाँ, बजाग विकास खंड में – चकरार, सिवनी, घुटई, सुतकोटा, सुहई, मरजादी, आमाडोब नदियाँ प्रवाहित होती है। करंजिया विकास खंड में – सोनतीरथ, तुड़ार, सिवनी, तार नदियाँ प्रवाहित होती है, ये सभी नदियों से वर्श भर जल प्रवाह होने से जिले में जल की प्राप्ति होती रहती है।

डिण्डौरी जिले की वनस्पतियाँ :– जिला डिण्डौरी में उष्ण कटिबंधीय आर्द्र पर्णपाती वन पाये जाते हैं। यहाँ पाये जाने वाले वनों को वन प्रबंध की दृष्टि से मुख्यतः साल एवं मिश्रित वनों में वर्गीकृत किया जा सकता है। कुछ क्षेत्रों में सागौन वन भी पाये जाते है। किसी विशेष स्थान की वनस्पति का वनों का प्रकार उस स्थान की जलवायु भौमिक एवं मृदा पर निर्भर करता है। वनस्पति में विविधता एवं संरचना वर्षा, तापमान, स्थल की ऊँचाई, ढलान एवं रूख पर भी निर्भर रहता है। उथली, कम पोषक, कम जलधारण क्षमता, खराब जल निकास वाली मृदाओं वाले क्षेत्रों में वनस्पतियों की कम वृद्धि होती है। समान्यतः ऐसे क्षेत्रों मिश्रित वन पाये जाते हैं। इनके विपरीत परिस्थितियों में उच्चतर क्रम वाली प्रजातियाँ आती हैं जिनमें अच्छी वृद्धि होती है।

सामान्यतः ऐसे क्षेत्रों में साल वन पाये जाते हैं। जिले में पाये जाने वाले पादप वनस्पतियों का विवरण इस प्रकार हैं–

साल वन क्षेत्र में पाये जाने वाले वृक्ष :– साल, साजा, बहेड़ा, सेझी, हल्दू, बरंगा, पाडर, कुसुम, बीजा, जामुन, आम, सेमल, महुआ, आँवला, तिंसा, तेन्दू, गुंजा, भिलवाँ, कुम्भी, अचार, हर्रा, कसही, लेण्डिया, धावड़ा, सिरस आदि।

मिश्रित वन क्षेत्रों में पाये जाने वाले वृक्ष :– अर्जुन, साजा, तिंसा, धावड़ा, आम, पाडर, केकड़, बीजा, लेण्डिया, तेंदू, हर्रा, कसई, धोबन, जामुन, हल्दू, कलम, सेमल, खमेर, रोहन, गूलर, बरंगा, धामन, सलई, कुल्लू, शीशम, कारी, पलाश, आँवला, मुंडी, अमलताश, जमरासी, कचनार, कुँभी, बेर, बेल, खैर, बाँस आदि।

सागौन वन क्षेत्रों में पाये जाने वाले वृक्ष :– सागौन, लेण्डिया, साजा, धावणा, हल्दू, बीजा, सलई, कारी, धोबिन, बेल, गुंजा, केकड़, सलई, कुल्लू, ककई, धामिन आदि।

झाड़ियाँ :– सुरतेली, भुरभुसी, करौंदा, मोहती, हरसिंगार, धवई, मरोरफल, चिरोहे, गोखरू, छींद, झरबेरी, दूधी, गुरसकरी, लेंटाना, सिहारू, मरोड़फल, चकोड़ा, गोखरन, वन तुलसी मैनहर आदि।

घास :– लम्पा, सुकरा, कुसल, रोशा, खस, भुरभुसी, नागरमोथा, कांसा, मोवा, फूलबहरी, भेड़, छीरा, धोनद आदि।

बेलाएँ :– पलाश बेल, माहुल बेल, भातावर, मकोर, रामदातून, बैचांदी, दूधी, मालकांगनी, चिलाटी आदि।

शाक :– चपटी, सुगंधी, वनतुलसी, ब्राम्ही, चकोड़ा, हरदुली।

परजीवी :– अमरबेल, बन्धा।

औशधीय वनस्पतियाँ :– आँवला, हर्रा, बहेड़ा, भेलवा, सफेद मूसली, हड़जोड़, इंद्रायण, काली मूसली, भोरमाल, अपराजिता जंगली हल्दी, आक, कुंभी, अमलतास, बच, अपामार्ग, वज्रदंती, गुमची, चिरोटा, अडूसा, विधारा, भातावर, नीम, दन्ती, सलई तीखुर, नागरमोथा, काला धतूरा, भृंगराज, गुड़मार, वनतुलसी इंदीवर, किंवाच, गटारन, सर्पगंधा, जंगली प्याज आदि।

डिण्डौरी जिले की वन्य प्राणियाँ :– डिण्डौरी जिले के वनमंडल में पाये जाने वाले वन्य प्राणियों का विवरण इस प्रकार है–

बाघ, भोर, तेन्दुआ, चीतल/हिरन, चिंकारा, छुटरी, सांभर काला हिरन, बंदर, लोमड़ी, सेही, सियार, गौर (बायसन), जंगली सुअर, खरगोश, मोर, जंगली मुर्गा–मुर्गी, भालू, चौसिंधा, नील गाय, मूशक हिरन, लकड़बग्धा आदि।

पक्षी :– गिद्ध चील, शिकरा, बाज, डुबडुबी, अंजन, बगुला, लकलक, सुरखाब, जलमुर्गी, बटेर, तीतर, जंगली मुर्गी, मोर, तितुर, कबूतर, फाख्ता, तोता, कोयल, उल्लू, बतासी, किलकिला, कौडिल्ला, पत्रिंगा, नीलकंठ, हुदहुद, धनेश, कठफोड़वा, पीलक, भुजंग, भृंगराज, अबाबील, माहालट, जंगली कौआ, बुलबुल, मैना, बैबलर, फड़की, श्यामा, दूधराज, चकदिल, फुलचुहकी, शक्कर खोरा, पिलख, खंजन, गौरेया, बया, लालमुनिया, टिटहरी, पत्थरचितरा आदि।

सरी सर्प :– अजगर, नाग, धामन सांप, करायत, गेहुंआ असड़िया, कोबरा, पनढलवा। गिरगिटों में – फैन थ्रोनेड लिजार्ड एवं कैमेंलियान आदि।

मछलियाँ – जिले के नदियों में पाये जाने वाले मछलियों के नाम इस प्रकार है– रोहू, कतला, भृगल, कालबासु, नरेन, मांगुर, चपटरा, लम्बरा, खड़िडया, सिन्ना, सिलोनिया, पत्थरचटा, पाढ़न, झुण्डा, बाम, सिंघाड़, झींगा, केकड़ा आदि।

कीट पतंग :– तितलियाँ, मकड़ियाँ, गुबरैले, केंचुए, दीमक, चीटियाँ, सालबोरर कीड़ा आदि।

उभयचर :– मेढक एवं टोड आदि।

डिण्डौरी जिले के वन संसाधनों से अनेक लाभ प्राप्त होते है। वनों से इमारती लकड़ी एवं प्रचुर मात्रा में जलाऊ लकड़ी की प्राप्ति होती है। इमारती लकड़ी प्रदान करने वाले वृक्षों में साल, सागौन, शीशम, कसही, हल्दू साजा, बीजा आदि उल्लेखनीय हैं। कागज, दियासलाई, रबड़, लुग्दी तथा बहुत से उद्योग वनों से कच्चा माल प्राप्त करते हैं। वन राष्ट्रीय सम्पत्ति

SRF

है और आधुनिक सभ्यता के इनकी नितांत आवश्यकता है, ये उद्योग धंधो के लिए कच्चा माल, पशुओं के लिए चारा तथा राज्य के लिए आय प्रदान करते हैं। वनों से वनोपजों के अंतर्गत आँवला, हरद, बहेड़ा, चंदन, कत्था, साल बीज, गोंद, लाख, शहद, राल व बिरोंजा, बांस व बेंत, महुआ फूल व बीज, तेंदूपत्ता, माहुल पत्ता, बहुमूल्य औषधि, पौष्टिक फल आदि प्राप्त होते हैं। वृक्ष लगाना न केवल आर्थिक दृष्टि से वरन पर्यावरण की शुद्धि की दृष्टि से भी आवश्यक है।

जैव विविधता की समस्याऐं :– वर्तमान समय में जिले की जैव विविधता को अनेक खतरों का सामना करना पड़ रहा है। विगत कुछ वर्षो से कम वर्षा होने से जलाशयों में पानी का स्तर निम्न हो चुका है। इस कारण जैव विविधता के जलीय अंग नष्ट होने की स्थिति में है। वृक्षों की अवैध कटाई और यहाँ के लोगों का वन्य प्राणियों का शिकार जैव विविधता के लिए लगातार खतरा बना हुआ है तथा वनों का असीमित दोहन हो रहा है। शहरी क्षेत्रों का तेजी से बढ़ता दायरा भी इस क्षेत्र की जैव विविधता को बहुत अधिक हानिकारक साबित हो रहा है। कम वर्षा के कारण घासें और शाकीय पौधे लगातार कम होते जा रहे हैं तथा कई प्रजातियाँ समाप्त प्राय है। पर्यावरण प्रदूषण तथा जहरीली गैसों व प्लास्टिक के प्रयोग तथा रासायनिक उर्वरकों ने भी जैव विविधता को अत्याधिक हानि पहुंचाई है। इससे पादपों के साथ–साथ अनेक जीवों का जीवन संकट ग्रस्त हो गया है।

अतः आज आवश्यकता है कि इस प्राकृतिक विरासत को बनाये रखने के लिए हम सतत् जागरूकता अभियान चलायें और जन सहयोग से न सिर्फ इसका संरक्षण करें, बल्कि इसके विकास के उपाय खोजें। तभी हम इस जैव विविधता को बचाकर प्रकृति का तथा स्वयं का संरक्षण कर पायेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पर्यावरण अध्ययन एस.एस. सक्सेना, कैलाश पुस्तक सदन भोपाल 2010
2. भारतीय अर्थशास्त्र रूद्रदल एवं सुदरम, जयपुर 2009
3. पर्यावरण चेतना म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)
4. पर्यावरण अध्ययन 2004, डॉ. रतन जोशी
5. पर्यावरण भूगोल 2009, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा
6. प्रो. शुक्ल त्रिभुवन, पर्यावरण अध्ययन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 2006
7. शर्मा बी.डी. (2008) पर्यावरण शिक्षा नई दिल्ली ओमेगा पब्लिकेशन।
8. प्रतियोगिता दर्पण फरवरी 2010
9. धनकर, रविन्द्र, समसामयिक विशेशांक 2011, ध्यानकर पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

भारतीय उच्चशिक्षा में गुणवत्ता की उपयोगिता

डॉ. अरुण कुमार मिश्र
M.A, MEd., MPhil (Educational), UGC NET, Ph.D (Education)
विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग), फोर्ट इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी मवाना रोड मेरठ, उत्तरप्रदेश

प्रस्तावना :– वर्तमान समय में किसी भी देश की प्रगति उसके विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में शिक्षा और अनुसंधान में हुई निरंतर वृद्धि पर निर्भर करती है। भारत में जिस प्रकार की शिक्षा विद्यमान है उसे कई रूपों में सुधार की आवश्यकता है। जैसाकि हम जानते हैं कि भारत जनसंख्या की दृष्टि से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। इस कारण हमारी शिक्षा व्यवस्था पर एक विशाल जनसमूह को शिक्षित करने की जिम्मेदारी है। इसके लिए साधन और संसाधन बहुत ही सीमित है तथा परिस्थितियॉ भी अनुकूल नहीं है। भारत में अन्य देशों की तुलना में प्रतिवर्ष हजारों लाखों युवा ग्रेजुएट होते हैं। परन्तु इसके बावजूद सर्वाधिक बेरोजगारी भारत में पायी जाती है।

भारत जैसे विकासशील देश जहां बढ़ती जनसंख्या के कारण बेरोजगारी की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, वहां आर्थिक विकास के लिए तथा बेरोजगारी को दूर करने के लिए शिक्षा को उद्यमिता विकास से जोड़ने की आवश्यकता है। आजकल उद्यमिता विकास को उच्च शिक्षा में शामिल किया जा रहा है, परन्तु यह हमारे लिए किसी दुर्भाग्य से कम नहीं है कि वर्तमान उद्यमिता विकास की शिक्षा केवल पाठ्यक्रम तक ही सीमित रह गयी है। इसका उद्यमशीलता प्रवृत्ति पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं दिखाई दे रहा है। शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए तथा रोजगारोन्मुखी बनाने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि परम्परागत शिक्षा पद्धति के स्थान पर अन्य विकल्प समाज को उपलब्ध कराना होगा जिससे उद्यमिता विकास के अन्तर्गत उच्च शिक्षा में कौशल विकास तथा प्रशिक्षण को शामिल करना होगा । प्रस्तुत शोधपत्र भारतीय उच्च शिक्षा में उद्यमिता विकास के महत्व और भूमिका पर से चर्चा करता है।

उच्च शिक्षा की बात करते समय ये आवश्यक है कि हम प्रायमरी तथा मिडिल शिक्षा पर भी ध्यान दें। शिक्षा एक समग्र प्रक्रिया है जो कि व्यक्तित्व का समग्रता में विकास करती है। सर्वांगीण विकास जैसी परिभाषाएँ भी इसी तथ्य को इंगित करती है कि शिक्षा का कार्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है। यह तथ्य इस बात की ओर संकेत करता है कि व्यक्ति का विकास जन्म के साथ प्रारम्भ होता है तथा मृत्यु पर्यन्त चलता है इस प्रक्रिया के दौरान ही शैक्षिक विकास भी चलता रहता है अर्थात् यदि हम उच्च शिक्षा की बात करते हैं तो निश्चित हो हमें इसमें पूर्ववर्ती शिक्षा को भी समाहित करना होगा तभी हम उच्च शिक्षा की दशा एवं दिशा के संबंध में न्याय कर सकेंगे। इसलिये यह आवश्यक है कि हम बीमारी की जड़ पर विचार करें तभी बीमारी जड़मूल से समाप्त हो सकेगी अर्थात् उच्च शिक्षा में सुधार तभी सम्भव होगा जब हम प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान दें। उच्च शिक्षा सुधारने के लिये सरकार की प्राथमिक शिक्षा तथा उससे संबंधित नीतियों में सुधार आवश्यक है।

भारत में उच्च शिक्षा :– भारत में उच्च शिक्षा की स्थिति के बारे में समीक्षा करें तो हम देखते हैं कि विश्व के सर्वोच्च सौ विश्वविद्यालयों की सूची में भारत के एक भी विश्वविद्यालय शामिल नही है, यह स्थिति भारत के लिए किसी भी त्रासदी से कम नही हैं। इसका सीधा स तात्पर्य यह है कि भारत की उच्च शिक्षा ने विश्व को तनिक भी प्रभावित नहीं किया है। भले ही हम इस बात पर गौरव करते हों कि विगत कुछ वर्षों में भारत की साक्षरता दर बढ़ी है, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि हम उच्च शिक्षा के आंकड़ों की बात करें तो देश में लगभग 700 विश्वविद्यालय स्थापित है तथा लगभग 35 हजार 500 महाविद्यालय हैं।

अगर शिक्षा व्यवस्था में कुछ गुणात्मक बदलाव की पहल सरकार को करनी है तो उसमें बाजार परक गरीब विरोधी नीतियों को छोड़कर नये सिरे से इसके विभिन्न पहलूओं पर विचार करना होगा। शिक्षा में सरकारी फण्डिग को बढ़ावा देना होगा, शिक्षकों और कर्मचारियों को भारी संख्या में स्थाई करना होगा। संस्थानों का विस्तार करना हेगा। शिक्षण व्यवस्था के विभिन्न अवयवों को भी एकजुट होकर सरकार पर दवाब बनाने की आवश्यकता है। अगर जल्दी ही कारगर कदम नहीं उठाये गये तो ज्यादा भयावह

परिणामों की आशंका है।

उच्च शिक्षा में तीन प्रमुख कार्य करने होते हैं – शिक्षण, शोध, अकादमिक प्रशासन। किसी भी शिक्षक का समान रूप से इन तीनों पर अधिकार होना आसान कार्य नही है। किसी की शिक्षण में अधिक रूचि होगी तो किसी की शोध में तथा किसी में अकादमिक प्रशासनिक दायित्वों को अच्छी तरह निभाने की क्षमता होगी। एपीआई (अकादमिक कार्य निष्पादन सूचक) व्यवस्था के माध्यम से सभी को एक जैसा बनाने का प्रयास किया जा रहा है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि शिक्षक अपनी अभिरूचि वाला क्षेत्र मजूबत करने के बजाये जिसमें वह कमजोर है उसमें अधिक समय दे रहा है क्योंकि प्रमोशन हेतु उसे इन तीनों में अपनी दक्षता प्रदर्शित करनी होती है। राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष में एक बार आयोजित होने वाली यूजीसी नेट की परीक्षा को एम.फिल, पी.एच.डी. में प्रवेश, स्कॉलरशिप एवं छात्रों को मिलने वाली अन्य सुविधाओं के लिये आधार परीक्षा बनाया जा सकता है। ऐसा करना उच्च शिक्षा में एकरूपता तथा गुणवत्ता स्थापित करने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम साबित होगा। मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा नई शिक्षा नीति के लिए उच्चशिक्षा के संबंध में जो नीतिगत परामर्श लिया जा रहा है। उसमें गुणवत्ता संबंधी आश्वासन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है तथा मंत्रालय द्वारा राज्य विश्वविद्यालयों में सुधार हेतु विचार विमर्श के लिये जो बिन्दू रखे हैं उनमें "संबद्ध करने की प्रणाली में सुधार" को पहले स्थान पर रखा गया है। यूजीसी राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (नैक) से प्राप्त स्कोर के आधार पर उच्चशिक्षण संस्थानों को तीन श्रेणियों में रखने का प्रयास कर रहा है। इसी नैक स्कोर के आधार पर ही संस्थानों को स्वायत्ता देने पर विचार किया जायेगा।

उच्चशिक्षा में गुणवत्ता की उपयोगिता :– उच्चतर शिक्षा पर शोध करने वाले पूर्व आईएएस अधिकारी पवन अग्रवाल कहते हैं कि अब समय आ गया है कि इस धारणा को बदला जाये कि विश्वविद्यालय शिक्षा का उद्देश्यों छात्रों को भद्र बनाना है। भारत सरकार ने भी इसे शिक्षा मंत्रालय कहना बंद कर "मानव संसाधन मंत्रालय" कहना शुरू कर दिया है। ब्रिटेन में भी अब इसे शिक्षा और कौशल मंत्रालय कहा जाने लगा है। आस्ट्रेलिया में इसे "शिक्षा, रोजगार और कार्य स्थल संबंध मंत्रालय" कहा जाता है। एनआईआईटी के संस्थापक राजेन्द्र सिंह पवार कहते है कि "अब उस जाति व्यवस्था से छुटकारा पाने की जरूरत हैं जिसने एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था को जन्म दिया है जहां अगर एक इंसान व्यवसायिक शिक्षा लेने के लिये ट्रेन से उतरता है तो उसे बाद में उच्चशिक्षा के डिब्बे में सवार होने की अनुमति नहीं होती। "21वी सदी की उच्चशिक्षा को तब तक स्तरीय नहीं बनाया जा सकता जब तक भारत की स्कूल शिक्षा 19वीं सदी में विचरण कर रही हो। स्कूली शिक्षा की मूलभूत सुविधाओं में पिछले एक दशक में जबरदस्त वृद्धि हुई है।

आज की शिक्षा मनुष्य को मनुष्य होने से ही वंचित कर रही है। वह व्यक्ति को वे तमाम चीजें सिखाती हैं जो मनुष्यता के लिए घातक हैं, जैसे–प्रतियोगिता, तुलना, महत्वाकांक्षा, अहंकार, परिग्रह, स्वार्थपरता आदि। ऐसा मालूम पड़ता है कि मनुष्य की बेहतरी के लिए किया जाने वाला उपक्रम ही उसे बदतर बनाये जा रहा है। भारतीय समाज और शिक्षा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव और दबाव में जकड़ती जा रहा है। हम पुनः नवउपनिवेशवादी एवं नवसाम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के घेरे की ओर बढ़ रहे हैं। नई तकनीक एवं प्रोद्योगिकी शिक्षा के कारण विश्व सहित भारत में एक नया उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग विकसित हुआ है। इस वर्ग में नई सोच और जीवन शैली विकसित हो रही है। यह जीवन शैली लोगों को अपने देश की सभ्यता, संस्कृति, आस्था, आध्यात्म, भाषा, परंपरा, पंचांग, इतिहास व स्थानीय परिवेश से काट रही है। एक नई प्रकार की अपसंस्कृति विकसित हो रही है। स्थापित मूल्यों की अवहेलना का भाव स्वस्थ शैक्षिक वातावरण को भी प्रभावित कर रहा है। मूल्यों को खोकर वर्तमान में हमने बहुत कुछ खो दिया है। आज जब दुनिया के सभी राष्ट्र भौतिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्रतिस्पर्धा में खड़े हो गए हैं, मानवीय मूल्य व मानवीय संस्कृति की संवेदना शून्य सी हो गई है।

भारत जैसे सांस्कृतिक भौगोलिक आर्थिक राजनीतिक विविधता वाले देश में पर्यटन के क्षेत्र में असीम सम्भावनाएं मौजूद हैं परन्तु इस रास्ते में सभी ''फूलों का सेज नहीं बल्कि अनेक समस्यायें मुँह बाये खड़ी है'' लेकिन ईमानदार प्रयास करने के साथ भारत की आधी आबादी को रोजगार देने की हैसियत रखने वाला यह पर्यटन उद्योग अनेक अवसरों को अपने गर्भ में समेटे हुये है। फिलहाल वक्त के इस नाजुक दौर में जब केन्द्र में मजबूत सत्ता निर्वाचित हुई तब से पयर्टन

के विभिन्न क्षेत्रों में आशा और रोज़गार के अवसरों में वृद्धि के संकेत मिलने शुरू हो गये हैं कारपोरेट से लेकर जन भागीदारी के सहयोग ने उम्मीदों के पंखों को नयी रोशनी पैदा की है।

इस अध्ययन का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि पर्यटन की भूमिका आर्थिक विकास में क्या महत्व निभाते है? स्थानीय क्षेत्र में पर्यटन विश्व स्तर पर सर्वमान्य ओर सबसे तेजी से बढ़ने वाला उद्योग उभर चुका है। जिसमें कम कौशल कम शिक्षा और ज्ञान की जरूरत होने के साथ उच्च लाभांश दिलाने के लिए तैयार होता हैं। भारत विश्व की दूसरी आबादी वाला देश 125 करोड़ की ओर उन्मुख पहला स्थान चीन जो 1948 तक पछाड़कर पहला स्थान बनने जा रहा है। उसके पास विश्व की कुल भौगोलिक भूमि का 2.42 प्रतिशत और कुल विश्व जनसंख्या का 18 प्रतिशत के साथ विश्व की सबसे नवोदित आबादी 61 प्रतिशत जो 18–35 वर्श के युवा लोगों को शामिल करता है तब उसके रोजगार अवसरों की समस्या क्या होगी ? एक बहुत बड़ा यक्ष प्रश्न आज नीति निर्माताओं के लिए मुँह बायें खड़ा है। पर्यटन का विकास इस समस्या के समाधान में आसानी से अपनी भूमिका निभा सकता है। गरीबी उन्मूलन जन सशक्तीकरण, कम दक्षता और अर्थशास्त्र के लिहाज से प्रचुर संसाधनों का पूर्ण प्रयोग के साथ इस (व्हाइट ट्रेड इन्डस्ट्री) के नाम से पर्यटन जी0डी0पी0 के विशाल स्तर को बढ़ाने के लिए तैयार है। आज 12 ट्रिलियन डालर विश्व पर्यटन (2013) अंश को भारत आसानी से आधा भाग अपनी ओर समाहित कर सकता है। जो उसके जी0डी0पी0 का एक बहुत बड़ा हिस्सा होगा। हालया विश्व बैंक की रिपोर्ट में 2017 में भारत को 2028 तक विश्व की तीसरी सबसे बड़ी पर्यटन उद्योग का देश घोशित किया है।

निष्कर्ष :– किसी भी देश का सम्पूर्ण विकास तभी सम्भव हो सकता है जबकि उस देश का कोई भी युवा बेरोजगार न हो। यदि विकसित देशों की तुलना में देखा जाये तो भारत के इन देशों से पिछड़े होने का एकमात्र कारण यही है कि यहां का आधे से अधिक युवा शिक्षित बेरोजगारी की चपेट में है, यही इसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। इस समस्या से निपटने का सबसे बड़ा उपाय यही है कि शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाया जाये तथा शिक्षा को रोजगारोन्मुखी बनाया जाये। जब तक हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं करेंगे तब तक देश का आर्थिक विकास सम्भव नहीं होगा, क्योंकि विकासशील देश को विकसित बनाने के लिए कुशल तथा प्रशिक्षित उद्यमियों का होना बहुत आवश्यक है। राष्ट्र के तीव्र एवं सुनियोजित विकास के लिए उद्यमिता का विकास है। उद्यमिता को विकसित करके ही अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं जैसे, गरीबी, बेरोजगारी धन की कमी, निम्न उत्पादकता, निम्न जीवन स्तर आदि से छुटकारा पाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. शास्त्री आर.के. 2003, शिक्षा मनोविज्ञान सांख्यिकी तथा मापन, सूर्या पब्लिकेशन, दिल्ली।
2. शर्मा, आर.ए. (1996), शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श आर, लाल बुक डिपो मेरठ।
3. मध्यप्रदेश शासन वार्षिक प्रशासकीय प्रतिवेदन वाणिज्य, उद्योग और रोजगार विभाग।
4. मिश्र, आर. डी. (2006)ए मूल्यबोध तथा मानव अधिकार रचना, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, वर्ष –5 अंक –31, पृ.सं. 27–29
5. सरला मोहनलाल, ग्रहणशील मन, श्यामबिहारी राय ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड दरियागंज, नई दिल्ली।
6. सक्सेना नाथावत 1962, व्यावहारिक मनोविज्ञान, वाराणसी कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, पाठक एंव त्यागी, जी.एस.डी. सफल शिक्षण कला, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
7. तिवारी आदित्य नारायण 1974, शिक्षा मनोविज्ञान (भाग–2) उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
8. श्रीवास्तव, गिरधारी लाल 1970, शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ प्रकाशन केन्द्र।
9. **Vyas, K.C.** : The. Development of National Education in India—Bombay, Vora and Co: 1954.
10. **Zellner, A.A.** : Education in India—New York, Bookman. Associates, 1951. P. 272.
11. **Kaul, J. N.** : Higher Education in India : 1957-71 : Two Decades of Planned Drift, Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1974.
12. **Kaul, J. N. (ed.)** : Higher Education, Social Change and National Development, Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1975.

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की विभिन्न स्थिति

Dr. Shabana Anjuma
Anjuma Islamia Girls College, Jabalpur

भारत में संदर्भ में कार्ल मार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी कि समाज में स्त्रियाँ और पुरुष जब आर्थिक कार्यो में समान रूप से संलग्न होने लगेंगे, तब स्त्रियों और पुरूषों के बीच पाई जाने वाली असमानता स्वयं ही समाप्त हो जायेगी। भारत में आज कारखानों, चाय, बागानों, निर्माण कार्यो तथा दूसरे क्षेत्रों में जो स्त्रियाँ पुरूषो के समान काम करती हैं, उन्हें पुरूषों की तुलना में मिलने वाली मजदूरी आज भी बहुत कम है। कानून के द्वारा स्त्रियों और पुरूषों की मजदूरी में समानता का प्रावधान होने के बाद भी इस दशा में आर्थिक सुधार नहीं हो सका है। एक और पुरूषों की तुलना में कामकाजी महिलाओं की संख्या बहुत कम है, लेकिन जो स्त्रियाँ विभिन्न सेवाओं द्वारा आजीविका उपार्जित कर रही हैं, उन पर परिवार का दोहरा भार आ जाता है। दिन भर बाहर कार्य करने के बाद घर लौटने पर उन्हें बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त वे सभी कार्य करने पड़ते हैं, जो सामान्य गृहिणियों के द्वारा किये जाते हैं। स्त्रियों जो धन उपार्जित भी करती हैं, उस पर विवाह के पूर्व माता–पिता का तथा विवाह उपरांत पति का अधिकार रहता है। अपने ही द्वारा उपार्जित धन को स्त्रियाँ अपनी इच्छा से उपयोग नहीं कर सकती हैं। भारतीय समाज के मूल्य कुछ इस तरह के रहे हैं कि काम–काजी महिलाओं को सामान्य व्यक्तियों द्वारा संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी हो जाती है। अनेक मध्यमवर्गीय परिवार कामकाजी लड़की को परिवार की आय का एक प्रमुख साधन समझने के कारण उसका विवाह करने से कतरने लगते है। मुस्लिम कट्टरपंथी पुरूष, स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता को इस्लाम के विरूद्ध मानते है। इसके फलस्वरूप मुस्लिम स्त्रियों का जीवन आर्थिक रूप से आज भी पुरूषों पर निर्भर है।

महिलाओं के अप्रत्यक्ष रूप से धनोपार्जन की कोई गणना नहीं होती, जैसे पारिवारिक खेतों काम करना, व्यापारिक सहयोग करना, पानी, ईंधन, चारा लाने में समय व्यतीत करना इत्यादि। उनके इन कार्यो की जी0डी0पी0 में गणना नहीं होती। कार्यरत महिलाओं का सारा दिन शारीरिक एवं मानसिक रूप से थकने के बाद घर के उत्तरदायित्वों का निभाने के बाद उनके पास खुद के लिए समय नहीं होता। यहाँ तक की वे पोष्टिक भोजन, आर्थिक सुरक्षा व आराम से वंचित रह जाती है। सच तो यह है कि स्त्रियों की आर्थिक सहभागिता के कारण उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सुविधाओं में उतनी वृद्धि नहीं हुई है जितनी कि उनके परिवार में बढ़ते हुए तनाव के कारण वे स्वयं प्रतिबल से ग्रसित हो जाती है।

अर्थ यानी धन एक भाक्ति है जो विकास के अन्य स्त्रोतों को ऊर्जा प्रदान करता हो। अर्थ की शक्ति समाज, समुदाय व देश की अन्य शक्तियों को नियंत्रित करती है। सत्ता व विकास अर्थ की शक्ति से संचालित होते है और अर्थशक्ति ही सशक्तिकरण को सुदृढ़ करने में सहायक बनती है। यदि महिलाओं के हाथों में अर्थ को नियंत्रित व नियोजित करने की शक्ति होगी तो वे स्वयं ही सशक्तिकरण की दिशा ढूंढ लेगी। महिलाओं के आर्थिक स क्तिकरण का अर्थ मात्र उनके हाथों में धन–सम्पदा देना नहीं है और न ही उन्हें बाहर नौकरी करने की स्वतंत्रता प्रदान करना हैं। आर्थिक सशक्तिकरण का दायरा इनसे आगे हैं वह अपने में कई तत्वों का समाहित करता है। जो नारी के आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते है। आर्थिक सशक्तिकरण के कई पहलू हैं। स्त्रियों के आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ है कि समुदाय समाज और देश की अर्थव्यवस्था के संचालन व नियंत्रण में उसकी कितनी भागीदारी है ? वह उसमें कितना योगदान करती है ? किसी भी प्रकार के उत्पादन में उसका कितना व क्या योगदान रहता है।

''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज द्वारा सुसंस्कृत मनुष्य सब प्राणियों से श्रेष्ठतम होता है। यदि कोई मनुष्य ऐसा हो, जो समाज में नही रह सकता हो, अथवा जो यह कहता हो कि मुझे केवल अपने ही साधनों की आव यकता है, तो उसे मानव समाज का सदस्य मत समझो, वह या तो जंगली जानवर है या देवता'' अरस्तु मां को शिशु की प्रथम शिक्षिका कहा जाता है, वहां से वह जीवन की शिक्षा ग्रहण करता है और जीवन के महत्व को समझता है। इसलिए समाज

में महिलाओं का स्थान सम्मान जनक होना अनिवार्य है। सामाजिक सशक्तिकरण के अंतर्गत व्यक्ति के विकास के सभी पक्षों को शामिल किया जाता हैं और साथ–साथ यह भी देखा जाता है कि समाज में उत्पादन के साधनों का बटवारा कैसा है इसे सामाजिक न्याय की संज्ञा दी जाती है अर्थात समाज में बहुत ज्यादा असमानताएं न हो। सामाजिक सशक्तिकरण के अंतर्गत यह भी देखना अनिवार्य है कि समाज में कोई वर्ग अत्यधिक पिछड़ा न रहे और विकास से होने वाले फायदे का लाभ सभी को सुनिश्चित तरीके से पहुँचे, इसमें विभिन्न वर्गो तथा समुदाय के बीच बराबरी के अलावा पुरूष तथा महिला की समानता की बात भी आती है। जब तक महिलाओं को समाज में बराबर का दर्जा नहीं मिलता और उनका समुचित विकास नहीं होता तो सामाजिक सशक्तिकरण की परिकल्पना अधूरी रहेगी। इसलिए सामाजिक सशक्तिकरण के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु महिलाओं का विकास एक आवश्यक ही नहीं अनिवार्य शर्त है। समाज का सम्यक विकास भी सामाजिक सशक्तिकरण का पर्याय है।

भारत के सभी समुदायों से संबंधित महिलाओं की एक प्रमुख समस्या उनके सामाजिक जीवन से संबंधित है। कानून के द्वारा यद्यपि स्त्री तथा पुरूषों को समान सामाजिक अधिकार दिये गये है। लेकिन सामाजिक क्षेत्रों में पुरूषों के अधीन है। समाज में जो निर्णय लिये जाते हैं, उनमें स्त्रियों की इच्छाओं का कोई महत्व नहीं होता। कोई भी स्त्री चाहे कितनी भी कार्यकुशल क्यों न हो, उससे यह आशा की जाती है कि वह अपना संपूर्ण समय बच्चों के पालन–पोषण और घरेलू कार्य में ही व्यतीत करें। अन्य जो महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याऐं है, वे निम्नवत् है– जैसे स्त्रियों के स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही, पर्दा प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा एवं बलात्कारी इत्यादि।

सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत वैवाहिक समस्याऐं, पारिवारिक समस्याऐं एवं नैतिक शोषण की समस्याऐं भी सम्मिलित है जिनका विवरण निम्नानुसार हैं –

1. वैवाहिक समस्यायें – भारत में आज अनेक सामाजिक विधानों के द्वारा विवाह के क्षेत्र में स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार दिये गये हैं। इसके बाद भी स्त्रियों के जीवन में संबंधित परम्परागत समस्याओं में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बाल–विवाह के प्रचलन में किसी भी तरह की कमी नहीं हुई है। राजस्थान, गुजरात, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, बिहार तथा सीमा प्रान्त के अनेक प्रदेशों में छोटी–छोटी लड़कियों को माता–पिता की गोद में बिठाकर उनका विवाह कर देना सामान्य सी बात हैं। नगरों में भी एक सर्वेक्षण के अनुसार श्रमिक एवं मेहनतकश वर्ग में 29 प्रतिशत लड़कियों का विवाह 15 वर्ष की आयु से पहले कर दिये जाते हैं। इसी के फलस्वरूप ऐसी लड़कियों के स्वास्थ्य की स्तर हमेशा निम्न बना रहता है।

डॉ. सुशीला मेहता ने दहेज की समस्या को परम्परागत मूल्यों से संबंधित स्त्री जीवन की प्रमुख समस्या कहा है। कोई भी महिला चाहे कितनी कुशल, सुशील एवं शिक्षित क्यों न हो उसके माता–पिता द्वारा वर पक्ष को विवाह के समय, दहेज देना एक आम परम्परा बन चुकी है। दहेज से संतुष्ट न होने पर जला देना, हत्या, आत्महत्या के लिए मजबूर करना, प्रताड़ना आम बात हो चुकी है। जिसके कारण महिलाऐं स्वयं को निर्बल एवं असहाय महसूस करती है तथा सशक्तिकरण की ओर नहीं बढ़ पाती है।

स्त्रियों के वैवाहिक से संबंधित एक प्रमुख समस्या तलाक की समस्या है। पत्नी से असन्तुष्ट होने पर पति द्वारा अपनी पत्नी को छोड़ देना एक सामान्य सी बात है। यह स्थिति इस आधार पर और भी अमानवीय है कि छोड़ी हुई स्त्री अपना पुनर्विवाह भी नहीं कर सकती। यह स्त्री के सशक्तिकरण में बहुत बड़ी बाधा है।

कानून द्वारा आज भी मुस्लिम तथा जनजातीय पुरूषों को बहुपत्नी विवाह का अधिकार मिला हुआ है। इसके फलस्वरूप स्त्रियों को परिवार में कोई प्रतिष्ठा नहीं मिल पाती है। वे अपने प्राकृतिक अधिकारों से वंचित रह जाती है। इसके अतिरिक्त स्त्री द्वारा अंर्तजातीय विवाह करना शिक्षित व प्रगति ील विचारों वाले परिवारों में भी सामाजिक कलंक के रूप में देखा जाता है, जबकि पुरूष द्वारा अंर्तजातीय विवाह को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। अंर्तजातीय विवाह की स्थिति में साधारणतया लड़की को अपने परिवार में सभी तरह से अपमानित होने के साथ ही अकसर आर्थिक सुख–सुविधाओं से भी वंचित होना पड़ता है और ये बाते उनकी प्रगति में बाधक है।

2. पारिवारिक समस्याऐं – भारत में एक लम्बे समय से संयुक्त परिवारों का प्रचलन रहा है, जिसमें परिवार के सभी अधिकार किसी पुरूषकर्ता के हाथों में ही रहते है। इन संयुक्त परिवारों में स्त्रियों की दशा दासी–जीवन से अच्छी नहीं कही जा सकती। परिवार में सभी सदस्यों की सेवा करना उनका एक मात्र धर्म समझा और समझाया जाता है। आज संयुक्त परिवारों की संख्या में काफी कमी हो जाने के बाद भी स्त्रियों द्वारा सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने की अच्छा नहीं माना जाता। पुरूष की संदेहपूर्ण मनोवृत्ति स्त्रियों का पारिवारिक जीवन इस कारण संतुलित बना हुआ था कि धार्मिक मान्यताओं के आधार पर वे अपने सभी सामाजिक अभावों को भाग्य का परिणाम मानकर संतुष्ट हो जाती थी। आज स्त्रियों में जैसे–जैसे शिक्षा और सामाजिक जागरूकता बढ़ती जा रही है, उनकी पारिवारिक समस्याऐं पहले से अधिक गंभीर हो गई है। शिक्षा का प्रभाव से धार्मिक अंधविश्वासों और स्मृतिकालीन मूल्यों का प्रभाव जैसे–जैसे कम हो रहा है। स्त्रियाँ एक दुराचारी पति को न तो देवता मानती है और न ही पुरूषों के दुराचार को अपने भाग्य का परिणाम मानने के पक्ष में है। इसके फलस्वरूप स्त्रियों के मानसिक तनाव में वृद्धि हो रही है। अकसर यह स्थिति पति–पत्नि के बीच पृथक्करण अथवा विवाह–विच्छेद का कारण बन जाती है।

स्त्रियों के वर्तमान जीवन से संबंधित शायद सबसे गंभीर समस्या उनके नैतिक शोषण की समस्या है। भारत में जैसे–जैसे आर्थिक, सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्रों में स्त्रियों का सहभाग बढ़ा, किसी न किसी रूप में उनके नैतिक शोषण में भी वृद्धि होती रही। प्रमिला कपूर ने कामकाजी महिलाओं पर किये गये अपने अध्ययन में यह स्पष्ट संकेत दिया है कि अनेक कामकाजी महिलाओं को किस तरह अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। एक टी0वी0 रिपोर्ट के अनुसार इस समय महिलाओं के साथ प्रतिवर्ष 8 हजार से अधिक बलात्कार की घटनायें हो रही है। यह आकंड़े इसलिए भी अपूर्ण हैं, क्योंकि सम्मानित और मध्यवर्गीय परिवारों में इस तरह की घटनाओं की सामान्यतः कोई रिपोर्ट नहीं लिखवाई जाती। स्त्रियों के नैतिक शोषण का एक अन्य रूप उन अश्लील विज्ञापनों में देखने को मिलता है, जिनमें सौन्दर्य एवं कला के नाम पर स्त्री जीवन को बुरी तरह अपमानित किया जाता है। गांवों में अशिक्षित एवं दलित जातियों की स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचारों की खबरें दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह सभी ऐसी दशाएँ हैं, जिनके प्रति न तो पुलिस और प्रशासन अधिक जागरूक है और न ही जनमानस पर इसकी कोई तीखी प्रतिक्रिया होती है। महिलाओं को नैतिक खतरों से बचाने के लिए बनाये गये शरणालय आज अनैतिकता के केन्द्र बन चुके है।

सिमोन इ बुआ ने अपनी विश्व प्रसिद्ध पुस्त दर्शन शास्त्र इतिहास मनोविज्ञान और मानवशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर यह स्थापित किया कि, स्त्रियों का दमन इतिहास और संस्कृति की उपज है, और इसे एक प्राकृतिक प्रक्रिया नहीं समझा जा सकता। उनका कहना है, ''औरत (अपनी कमजोरियों के लिए जानी जाने वाली औरत) पैदा नहीं होती वरन् बना दी जाती हैं।''

राजनीतिक प्रक्रिया के संदर्भ में नारीवाद का आशय यह है कि राजनीति और राजनीति से जुड़े प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों को पुरूषों के समान भागीदारी प्राप्त होनी चाहिए। स्त्रियों के बिना किसी भेदभाव के मताधिकार प्राप्त होना चाहिए, उन्हें प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित होने का अधिकार होना चाहिए, प्रतिनिधि संस्थाओं और शासन–प्रशासन के क्षेत्र में निर्णय लेने वाली संरचनाओं में न केवल सिद्धान्त वरन् व्यवहार में भी महिलाओं को पुरूष के बराबर की भागीदारी, भूमिका और शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसा बिल्कुल नहीं है। राजनीतिक प्रक्रिया का प्रथम चरण है, मताधिकार। महिलाओं को मताधिकार प्राप्त करने के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा। अमेरिकी शोध संगठन के अपने विशद् सर्वेक्षण के आधार पर बताया है कि, महिलाओं ''World priorities'' को मताधिकार पुरूषों की तुलना में औसतन 47 वर्श बाद मिला। लगभग सभी देशों की राजनीति पुरूष वाली और पुरूषों की कार्यशैली पर आधारित है तथा उनमें महिलाओं की परिस्थितियों तथा सुविधाओं पर ध्यान नहीं दिया गया है। महिलाओं के लिए राजनीतिक दल का टिकट प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है। स्वाभाविक रूप से जब कोई महिला राजनीति में प्रवेश करना चाहती है तो पुरूष उन्हें पग–पग पर बाधा पहुँचाते हैं।

राजनीति सदा से ही पुरूष प्रधान रही है, जिसने सदियों से विकास की अन्य शक्तियों को नियंत्रित किया है। इसमें महिलाओं ने मात्र एक सलाहकार की भूमिका अदा की है, वह भी तब–जब

उनसे कोई सलाह या परामर्श मांगा गया, क्योंकि राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं को सदा से ही हाशिए पर रखा गया हैं तथा उनकी भागीदारी को उपेक्षित निगाहों से देखा गया है। केवल विकासशील देश में ही नहीं अपितु विकसित तथा लोकतान्त्रिक देशों में भी राजनीति में महिलाओं की भागीदारी सीमित ही रही। समाज में महिलाओं के कंधों पर हमेशा घर–परिवार सम्भालने का दायित्व रहा है। यद्यपि वैदिक युग से ही महिलाओं को समाज व सामाजिक व्यवस्था में एक सम्मानजनक दर्जा दिया गया था किंतु राजनीति में उनकी भागीदारी नाममात्र की होती थी। माना जाता है कि सभ्यता के आरंभ में अनेक समाजों में सत्ता स्त्री के हाथों में हुआ करती थी। वे कुछ विशेशाधिकार भी रखती थी। उन्हें पंचायतों में भी अधिकार दिए जाते थे, किंतु कालान्तर में विभिन्न समाजों में उसकी शक्ति को ही उसकी कमजोरी मान लिया गया। पुरूष औरत का सरंक्षक बन बैठा। स्त्री के लिए सत्ता के गलियारे बंद कर दिए गए और राजनीति पर पुरूष वर्ग का आधिपत्य हो गया। स्त्रियां व्यापक संचार से कट सी गई। राजपुती प्रशासन में स्त्रियों को परामर्शदात्री के रूप में आने के अवसर मिले, जिसका पुरा लाभ उन्हें नहीं मिल सका। किंतु भारत पर इस्लामी आक्रमणों के चलते स्त्रियां के जीवन पर भारी दबाव पड़ा जो निरन्तर बढ़ता गया। बंधनों में जकड़ी महिलाओं को शिक्षा तो मिली किंतु न तो उनका पुरा बौद्धिक विकास हुआ और न ही सशक्तिकरण। रजिया सुल्तान, अहिल्याबाई, रानी झांसी लक्ष्मीबाई आदि नामों का अपवाद स्वरुप उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने शासन और राजनीति में अपनी पकड़ बनाई थी। किंतु तत्कालीन पुरूष प्रशासकों ने उनके आधिपत्य व सत्ता को पूर्ण रूप से कभी स्वीकार नही किया।

राजनीतिक सशक्तिकरण राजनीतिक शक्ति से संबंधित है, जो शासन, नीति नियोजन व निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में निहित रहती है और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में महिला समानता पूर्वापेक्षित मानी जाती है अर्थात् किसी दल ने एक महिला नेता किस सीमा तक निर्णयों को प्रभावित कर सकती है। बिना राजनीतिक पृष्ठभूमि वाली महिला द्वारा निर्णयों महिला द्वारा पांच वर्ष तक सफलतापूर्वक शासन करना कठिन समझा जाता है। किंतु राजनीतिक संसाधनों का विनिमय कौशल, मध्यस्थता तथा पक्षधरता आदि उसे प्रभावी बनाता है, जिसमें दल की नीतियों का ज्ञान भी शामिल होता है। सशक्तीकरण वास्तव में विचारधारा, सिद्धान्तों पर नियंत्रण व पहुंच से संबंधित है, जो मूल्यों, मत–अभिमत तथा सामाजिक यथार्थ को देखने की प्रवृत्ति और सोच से निर्मित जटिल सरंचना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. रामबिहारी सिंह तौमर, भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक, श्रीराम मेहरा एण्ड कंपनी, आगरा पृष्ठ क्र. 30
2. जय प्रकाश नारायण, सामुदायिक समाज, रूप और चिंतन, सर्वसेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणासी, पृ. क्र. 45
3. रामबिहारी सिंह तौमर, भारतीय समाज एवं सांस्कृतिक, श्रीराम मेहरा एण्ड कंपनी, आगरा पृष्ठ क्र. 30
4. मनीश कुमार ; महिला सशक्तिरण : दशा और दिशा, पृष्ठ – 60
5. पुखराज जैन; पाश्चात्य प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, पृष्ठ –42
6. पुखराज जैन; पाश्चात्य प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, पृष्ठ –42
7. मनीश कुमार ; महिला सशक्तिरण : दशा और दिशा, पृष्ठ – 135
8. मनीश कुमार ; महिला सशक्तिरण : दशा और दिशा, पृष्ठ – 60
9. विधान बोधनी, विधायिका एवं महिला प्रतिनिधि, राजस्थान विधान सभा सचिवालय जयपुर, हिन्दी एवं अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका, जनवरी अप्रैल 2017 पृ. क्र. 15–17

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

सूचना एवं संचार तकनीकी से आई क्रांति से भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास

डॉ. मंजू सिंह
अतिथि विद्वान, मानकुंवर बाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

शोध–सार :– वर्तमान शताब्दी को सूचना एवं संचार तकनीकी के क्षेत्र में क्रांति के युग के नाम से जाना जाता है। सूचना एवं संचार की तकनीकियों ने मानव जीवन को न केवल सरल व सुगम बनाया अपितु कम श्रम में अधिकतम प्रतिफल तथा श्रम शक्ति के समुचित अधिकतम उपयोग का मार्ग भी प्रशस्त किया। आई.सी.टी. में वे सभी साधन शामिल होते है, जिनका प्रयोग कम्प्यूटर एवं नेटवर्क हार्डवेयर दोनों और साथ ही साथ आवश्यक सॉफ्टवेयर सहित सूचना एवं सहायता संचार का संचालन इत्यादि करने के लिए किया जाता है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग 1997 में डेनिस स्टीवेसन द्वारा ब्रिटेन की सरकार को भेजी गई एक रिपोर्ट में किया गया था, एवं सन् 2000 में ब्रिटेन के नये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संबंधी दस्तावेजों द्वारा प्रचारित से इसका प्रचार किया गया।

सन् 2000 के बाद ''सूचना एवं संचार तकनीकी'' के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है उसने दुनिया के अनेक देशों की अर्थव्यवस्था को एक नई ऊँचाई तक पहुँचाया है। सूचना एवं संचार तकनीकी ने ना सिर्फ वर्तमान में जहाँ एक ओर बहुत दूर रह रहे अपनों को करीब ला दिया बल्कि हमारे जीवन शैली को ही बदल कर रख दिया है, जिसका उपयोग और परिवर्तन हम अपने चारों ओर देख रहे है।

सूचना एवं संचार के इस परिवर्तन की क्रांति से लगभग सभी देशों की अर्थ व्यवस्था का विकास हुआ, वर्तमान समय में हर देश सूचना एवं संचार तकनीकी का उपयोग कर रहा है।

सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति ने ज्ञान के द्वार खोल दिये हैं। बुद्धि एवं भाषा के मिलाप से सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे आर्थिक संपन्नता की ओर भारत अग्रसर हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य के रूप में ई–कामर्स, इंटरनेट द्वारा डाक भेजना, ईमेल द्वारा संभव हुआ है। ऑन लाईन सरकारी कामकाज विषयक ई–प्रशासन, ई –बैंकिंग द्वारा बैंक व्यवहार ऑन लाईन, शिक्षा सामग्री के लिए ई–एजुकेशन, ई–मेडीसिन आदि माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के बहु आयामी उपयोग के कारण विकास के नये द्वार खुल रहे है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा है।

मुख्य शब्द (की–वर्ड) :– वर्तमान शताब्दी को सूचना एवं संचार तकनीकी के क्षेत्र में क्रांति के युग के नाम से जाना जाता है। सूचना एवं संचार तकनीकी विभाग (आई.सी.टी.) का मुख्य उद्देश्य संस्थान में संजाल (नेटवर्किंग), ई–मेल एवं कम्प्यूटर सेवाएँ उपलब्ध कराना है। विभाग का मुख्य क्रियाकलाप ई–मेल सेवा का उच्चीकरण, वेबसाइट, इंटरनेट, डी.एच.सी.पी., डी.एन.एस. रूटर, ब्रिज, एण्टी वायरस, बैंक–अप एवं डाटाबेस सर्वर का रखरखाव है। सुदूर संवेदन (रिमोट सेसिंग) रिमोट सेन्सिंग तथा जी आई.एस. तकनीक संस्थान का शोध केन्द्र बिन्दु है। संस्थान का लोकल एरिया नेटवर्क (एल.ए.एन.) का जाल जो लगभग 350 कम्प्यूटरों से जुड़ा हुआ है तथा पूरे सीमैप कैम्पस में फैला हुआ है। इस नेटवर्क से फाइबर केबिल, यूटीटीपी केबिल एवं स्विच का उपयोग किया गया है। ब्राह्य संसार से इस संस्थान के इंटरनेट को जोड़ने के लिए 14 मेगावाइट्स रेडियो लिंक का एक्सेस प्रदान किया गया है। इसी प्रकार ई–मेल एवं इंटरनेट सेवाओं को सभी कम्प्यूटर से जोड़ा गया है। आईसीटी ने एक नया डाटा सेन्टर स्थापित करने के लिए प्रयास शुरू कर दिये है। नये सर्वर के लिए उच्चीकृत इन्फ्रास्ट्रक्चर आदि की व्यवस्था पूर्ण कर ली गयी है। नेटवर्क (संजाल) की सुरक्षा बढ़ाने के लिए बहुस्तरीय फायरवाल तथा एन्टीवायरस व्यवस्था लागू की गयी है। विभाग कई प्रकार के इन हाउस डाटाबेस, अप्लीकेशन्स (Standalone & web) एस. एम.एस. आधारित कृषि सलाह एवं परम्परागत ज्ञान के अंकरूपण (Digitization) एवं विकास में शामिल है। औषधिय एवं सुगंध पौधों के इनवेन्ट्राइजेशन (सूचीबद्ध) तथा संरक्षण के अध्ययन हेतु संस्थान का शोध फोकस सुदूर संवेदन (रिमोट सेसिंग) तथा जी.आई.एस.सर्वे पर भी आधारित है।

सूचना एवं संचार के इस परिवर्तन की इस क्रांति से लगभग सभी देशों की अर्थव्यवस्था का विकास हुआ है। वर्तमान समय में हर देश सूचना एवं संचार का उपयोग कर रहा है। हाल ही में एक ग्लोबल

SRF

इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी रिपोर्ट जारी की गयी है, इस रिपोर्ट के अनुसार सामाजिक एवं आर्थिक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए सूचना एवं संचार तकनीकी के क्षेत्र का उपयोग कर तरक्की कर रहे अनेक देशों की एक रैंक तैयार की गयी है, इस रिपोर्ट के अनुसार सिंगापुर इस क्षेत्र में प्रथम स्थान पर है। इस रिपोर्ट मे जारी की गयी रैंक 53 कारकों को ध्यान में रखते हुए तैयार की गयी है, जिनमें उस देश का वातावरण सूचना एवं संचार को अपनाने की उत्सुकता उसका उपयोग एवं उसके प्रभाव से चार कारक प्रमुख है।

इस रिपोर्ट में 143 देशों की रैकिंग की गयी है। इस रिपोर्ट के अनुसार सबसे बेहतर और सबसे खराब प्रदर्शन करने वाले देशों के बीच एक बहुत बड़ा अंतर नजर आता हैं सबसे बेहतर रैंक वाले देशों ने 2012 के बाद से खराब रैक वाले देशों की तुलना में इस क्षेत्र में काफी सुधार किया है। इस रिपोर्ट में अमेरिका और जापान भी टॉप टेन में शामिल है। इस रिपोर्ट के अनुसार BRICS देशों की परफॉरमेंस थोड़ी निराशाजनक रही है। इस रिपोर्ट के अनुसार सूचना एवं संचार के क्षेत्र में तरक्की की नजर से रूस की रैंक 41 है, चीन की रैंक 62 साउथ अफ्रीका की 75 ब्राजील की 84 और भारत की रैंक 89 है। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि BRICS देशों में शामिल भारत की रैंक BRICS देशों में सबसे कम है। इस रिपोर्ट में सूचना एवं संचार तकनीकी क्षेत्र में तरक्की करने वाले टॉप टेन देशों में क्रमशः सिंगापुर, फिनलैंड, स्वीडन, नीदरलैंड, नार्वे, स्विट्जरलैण्ड, अमेरिका, इग्लैण्ड, लक्सेम्बर्ग एवं जापान को शामिल किया गया है। हम यह आशा करते है कि अगली ग्लोबल इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी रिपोर्ट में भारत की रैक अच्छी है।

भारत में सूचना एवं संचार तकनीकी के क्षेत्र का विकास :— सूचना एवं संचार तकनीकी का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। मानव जीवन से संबंधित सभी क्षेत्रों में सूचना एवं संचार तकनीकी के उपादेयता है। इससे संबंधित प्रमुख क्षेत्र निम्न है।

1. **शिक्षा** :— शिक्षा से संबंधित सभी आयामों में सूचना एवं संचार तकनीकी का महत्व है। शिक्षण, अधिगम सम्प्रेषण मापन व मूल्यांकन, प्रस्तुतीकरण, शोध, प्रकाशन, प्रसारण शैक्षिक आंकड़ों के संकलन व विश्लेषण शिक्षण विधियों, प्रविधियों व युक्तियों के विकास आदि सभी क्षेत्रों में सूचना एवं संचार तकनीकी की उपादेयता है। दूरस्थ शिक्षा में समाज व अधिगमकर्ता के अनुकूल शैक्षिक योजनाओं के नियोजन एवं प्रस्तुतीकरण में सूचना एवं संचार तकनीकी का अत्यंत प्रभावकारी महत्व है।

2. **व्यवसाय** :— वर्तमान में व्यापार व व्यवसाय का क्षेत्र ऐसा है जहाँ प्रत्येक स्तर पर सूचना एवं संचार तकनीकी की आवश्यकता है। आज क्रेता और विक्रेता दोनों आधुनिक संचार संसाधनों के माध्यम से एक स्थान से ही वस्तुओं का क्रय व विक्रय कैशलेस माध्यमों से कर रहे है। इसके अतिरिक्त अनगिनत वेब—आधारित ऑनलाईन ट्रेडिंग फार्म स्थापित हो गई है जो सस्ते व गुणवत्तापूर्ण उत्पाद लोगों के घर तक पहुँचा रही है।

3. **चिकित्सा** :— चिकित्सा के क्षेत्र में हुए तकनीकी विकास ने जीवन जीने की औसत आयु को एक नए शिखर पर पहुँचा दिया है। आधुनिक चिकित्सकीय तकनीकियों ने अनेक बीमारियों का रामबाण उपाय खोज लिया है। विभिन्न चिकित्सकीय उपकरणों जैसे इन्डोस्कोप, सीटी स्कैन, एक्सरे, कार्डियोग्राफी, कीमोथैरेपी, अल्ट्रासाउंड, इकोटेस्ट, ब्लडटैस्ट आदि के माध्यम से पूर्व जानकारी एवं उपचार कराया जा सकता है।

4. **विज्ञान** :— विज्ञान क्षेत्र में हुए तकनीकी विकास ना केवल अपने से संबधित क्षेत्रों में नए कीर्तिमान स्थापित किए अपितु अन्य सभी क्षेत्रों के लिए तकनीकी विकास का आधारभूत धरातल प्रदान किया। वैज्ञानिक तकनीकियों के कारण ही आज हम समयपूर्व विभिन्न मौसमी परिवर्तनों खगोलीय घटनाओं अतिवृष्टि, अनावृष्टि, तूफान, सुनामी आदि की जानकारी प्राप्त कर बचने व क्षति की सीमा को न्यून करने का प्रयास करते है।

कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र :— वर्तमान में सूचना एवं प्रौद्योगिकी जनमाध्यम की बदौलत सूचना विश्व में एक वैश्विक ग्राम (ग्लोबल विलेज) बन गया है। देश के बेरोजगार अब स्वरोजगार की तरफ अग्रसर हो रहे है तथा ग्रामीण क्षेत्र में शहरों में पलायन की दर में कमी देखी जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी तकनीकी विकास तेजी से होने लगी है, ग्रामीण साक्षरता की स्थिति में भी इजाफा हो रहा है, विद्युत आपूर्ति की स्थिति चाहे जैसी हो लेकिन संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी की सुदृढ़ पहुँच ने जबरदस्त क्रांति ला दी है। इस प्रौद्योगिकी के

उपयोग से देश में अनेक ग्रामीण केन्द्र संचालित हो रहे है जिनसे सामाजिक संरचना में उत्थान तो आ ही रही है, साथ आधुनिक तकनीकी के प्रति आई जागरूकता ने समाज के ढाँचे को बदल दिया है यदि ग्रामीण ज्ञान केन्द्रों की कार्य प्रणाली को चुस्त–दुरूस्त करके उसे और सुविधा एवं साधन, सम्पन्न बना दिया जाए तो यह अत्यंत सार्थक एवं अनुकरणीय पहल होगी। जीवन–यापन के लिए ग्रामीण ज्ञान केन्द्र परियोजना का मीडिया लैब एरिया, सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय भारत सरकार के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के कोर ग्रुप के समक्ष मार्च 2006 को प्रस्तुत किया गया। परियोजना की प्रकृति शोध अभिकल्पन और विकास (आर.डी.एंड डी) का अनुप्रयोग कर उत्पादन क्षमता बढ़ाने हेतु है।

भारत देश की रक्षा में सूचना संचार तकनीकी :– हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स लिमिटेड (एचएएल) रक्षा उत्पादन विभाग के अंतर्गत सबसे बड़ा रक्षा सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम हैं वांतरिक्ष के क्षेत्र में भारतीय रक्षा सेवाओं के लिए लड़ाकू विमानों, प्रशिक्षक विमानों तथा हेलिकॉप्टरों जैसे रक्षा उपक्रम निर्माण करता है। विमानों/हेलिकॉप्टरों के अंतर्गत सु–30 एम.के.आई. मल्टीरोलफाइटर, हॉक–प्रोन्नत जेट प्रशिक्षक हलका लड़ाकू विमान (एलसीए) माध्यमिक जेट प्रशिक्षक (आईजेटी), डॉर्नियर 228–हलका परिवहन वायुयान, ध्रुव (प्रोन्नत हलका हेलिकॉप्टर), चेतक, चीता एवं चीतल हेलिकॉप्टर उत्पादनों में प्रमुख है। मिश्रित धातुओं जैसे कि सुपर एलॉयज, टिटेनियम मिश्र धातु विशेष इस्पात एवं धब्बारहित इस्पात, साफ्ट मैग्नेटिक मिश्र धातुओं के वृहत श्रृंखला के विनिर्माण में आत्मनिर्भर है। मिधानी भारत देश की रक्षा, अंतरिक्ष उड्डानियकी, परमाणु ऊर्जा, इलेक्ट्रॉनिक्स दूर संचार और अनेक सामरिक क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड (बीईएल) रक्षा क्षेत्र में रडारों एवं हथियार प्रणालियों सोनार, संचार, इडब्ल्यूएस, इलेक्टोआप्टिकल एवं टैंक इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में बुनियादी क्षमताएं रखता है। गैर–रक्षा क्षेत्र में (बीईएल) की उत्पाद श्रेणी में इवीएम, टेबलेट, पीसी, आईसी, हाइब्रिड, माइक्रोसर्किट, सेमी कंडक्टर डिवाइस, सोलर सैल इत्यादि शामिल है। जिसमें सूचना संचार तकनीकी की अहम भूमिका है।

भारतीय रेलवे में सूचना संचार तकनीकी :– रेलवे सूचना प्रणाली केन्द्र क्रिस मुख्यतः एक प्रोजेक्ट ओरिएंटेड संगठन है जो रेलवे की प्रमुख कम्प्यूटर प्रणालियों के विकास में काम लगा है। क्रिस ने सूचना प्रौद्योगिकी में विशेष ज्ञान और महारत हासिल कर ली है। स्वंय के अनुसंधान विकास भारतीय रेल एक नवीन और वृहद सूचना प्रौद्योगिकी के माहौल में भारत के सर्वाधिक उन्नत मंत्रालयों में से एक है। क्रिस द्वारा मुख्यतः परियोजनाओं पर कार्य किया जाता है।

(1) यात्री आरक्षण प्रणाली (पीआरएस)

(2) अल्फा माइग्रेशन

(3) इंटरनेट पूछताछ

(4) अनारक्षित टिकिट प्रणाली (यूटीएस)

(5) इंटरनेट पर टिकटों की बुकिंग

यह केवल सूचना संचार तकनीकी से ही संभव हुआ।

भारत देश के अनुसंधान क्षेत्र में सूचना संचार तकनीकी :–

स्लोगन

''आधुनिक युग का है ''आधार'' सूचना तकनीकी और संचार'' :–

आधार कार्ड से लिंक :– बैंक अकाउन्ट से लिंग, पेन कार्ड से लिंक, समग्र आईडी से लिंक, खाद्य आपूर्ति से लिंक, नगर निगम टैक्स से लिंक, पेंशन से लिंग, रजिस्ट्री से लिंक, शिक्षा क्षेत्र से लिंक, गैस कनेक्शन से लिंक, मोबाइल कार्ड से लिंक

भूमि रिकार्ड, नक्शा, आवेदनों का ऑनलाईन पंजीकरण, आय प्रमाण–पत्र, आवासीय प्रमाण–पत्र, जाति प्रमाण–पत्र, भू–स्वामी के भू–अधिकारों और ऋण से जुड़े पास बुक और ऋण भार से जुड़े प्रमाण पत्र, पेंशन, कृषि सब्सिडी सभी आधार से लिंक है एवं इसमें सूचना संचार तकनीकी की अहम भूमिका है।

आधार पर सुप्रीम कोर्ट ने सितम्बर 2018 को अहम फैसला सुनाते हुए इसकी वैधता को बरकरा रखा है। कोर्ट ने अपने फैसले में यह भी साफ कर दिया कि आधार कहा जरूरी है और कहाँ जरूरी नही है।

कहाँ जरूरी है–

1. पैन कार्ड बनाने के लिए आधार कार्ड जरूरी होगा।

2. आयकर रिर्टन दाखिल करने के लिए भी आधार नंबर जरूरी होगा।
3. सरकार की लाभकारी योजनाओं और सब्सिडी का लाभ पाने के लिए भी आधार कार्ड अनिवार्य होगा।

कहाँ जरूरी नही है–

1. सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में साफ किया कि मोबाइल सिम के लिए कंपनी आधार नहीं मांग सकती।
2. बैंक भी अकाउंट खोलने के लिए आधार नंबर की मांग कर सकते है।
3. इसके साथ सुप्रीम कोर्ट ने साफ किया कि स्कूल एडमिशन के वक्त बच्चे का आधार नम्बर नहीं मांग सकते।
4. सीबीएसई, नीट और यूजीसी की परीक्षाओं के लिए भी आधार जरूरी नही, जबकि पहले इसके लिए आधार मांगा जा रहा था।
5. सीबीएसई बोर्ड एग्जाम में शामिल होने के लिए छात्रों से आधार की मांग नहीं की जा सकती।
6. 14 साल से कम के बच्चों के पास आधार नहीं होने पर उसे केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा दी जाने वाली जरूरी सेवाओं से वंचित नही किया जा सकता है।
7. टेलीकॉम कंपनियों, ई कॉपर्स फर्म, प्राइवेट बैंक और अन्य इस तरह के संस्थान आधार की मांग नहीं कर सकते है। फैसले के दोरान सुप्रीम कोर्ट ने कहा आधार डेटा को 6 महीने से ज्यादा डेटा स्टोर नही किया जा सकता है। 5 साल तक डेटा रखना बैंड इन लॉ है। सुप्रीम कोर्ट ने आधार एक्ट की धारा 57 को रद्द करते हुए कहा कि प्राइवेट कंपनिया आधार की मांग नहीं कर सकती।

भविष्य में और आधार में परिवर्तन की संभावना है लेकिन इन सब में सबसे सर्वश्रेष्ठ बात यह है कि 'आधार' के आधार पर खोये बच्चे फिंगर प्रिंट के आधार पर मिल जाते हैं जो जनहित में उत्तम है। साथ ही 180 दिन की समय सीमा में एन.आर.आई. को आधार को देने की वैधता भी समाप्त हो गई है। और 'आधार' के आधार पर रिटर्न भर सकते है तत्पश्चात् 'आधार' के आधार पर आयकर विभाग पैनकार्ड जारी करेगा।

भारत में एस.एण्ड टी. संस्थानों में इंट्रामल और एण्ड डी–प्रोजेक्ट्स के डेटाबेस को विकसित किया गया है। डेटाबेस देश में एस.एंड टी. संस्थानों में अनुसंधान एवं विकास परियोजना के बारे में जानकारी प्रदान करता है। यह राष्ट्रीय नेटवर्क पर ऑनलाईन उपलब्ध होता है।

आधुनिक युग में सूचना संचार और संसाधनों तक व्यापक पहुँच शिक्षा लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया और समग्र आर्थिक विकास की दुर्गम बाधाओं को दूर करने का एक मात्र समाधान सूचना संचार तकनीकी है।

सूचना संचार तकनीकी क्षेत्र में नवाचार को प्रोत्साहित करने के लिए इन योजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है। जो निम्नलिखित है:–

- प्रौद्योगिकी उष्मायन और उद्यमियों का विकास (टीआईडीई)
- गुणक अनुदान योजना (एमजीएस)

सूचना संचार तकनीकी द्वारा वन्य–प्राणी, जीव जन्तु संरक्षणः– विलुप्त हो रहे, वन्यजीवों पशु पक्षियों उनकी संख्या में वृद्धि के लिए और उनके संरक्षण के लिए बेहतर रखरखाव के लिए चिप ट्रेकर जैसे Animal migration tracking wildlife radio telemetry द्वारा हो रहा है।

सूचना संचार तकनीकी से भारत देश की रक्षा में भारतीय रेलवे में सड़क परिवहन, जल परिवहन, वायु परिवहन, भारत देश के अनुसंधान क्षेत्र में ''नदी जोड़े, विकास करें'' परियोजना में, चिकित्सा क्षेत्र में, शिक्षा में व्यवसाय में बैंकिंग क्षेत्र में विज्ञान में इलेक्ट्रिकल कार, बुलेट ट्रेन औद्योगिक क्षेत्र में विकास हो रहा है।

इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों जैसे अंतरिक्ष विज्ञान, नैनोटेक्नोलॉजी, सैन्य विज्ञान, रक्षा क्षेत्र अभियांत्रिकी क्षेत्र, केमिकल इंडस्ट्री फिल्म क्षेत्र आदि सूचना एवं संचार तकनीकी का एक अभिन्न संभावना वाला क्षेत्र है। संचार क्षेत्र में हुई सूचना क्रांति ने इसके क्षेत्र को अत्यत व्यापक एवं महत्वपूर्ण बना दिया है। मानव जीवन और उससे संबंधित सभी क्षेत्रों में सूचना एवं संचार तकनीकी की उपादेयता है।

GPRS सिस्टम द्वारा गाड़ियों का लोकेन का पता किया जा सकता है और आसानी से अपनी यात्रा सफलतापूर्वक GPRS सिस्टम द्वारा पूरा किया जा सकता।

सी.सी.टी.वी. कैमरे सीटी बस में और 100 डायल में घरों में सुरक्षा हेतु लगाया जाता है। सरकारी दफ्तरों, रोड में कॉलेजों में, इत्यादि स्थानों में सी.सी.टी.वी. कैमरे द्वारा व्यक्तियों पर नजर रखा जा रहा है, जिससे भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं से बचाव किया जा सके।

साफ–सफाई में भी पीछे नही है जहाँ साफ–सफाई नहीं हुई वहां का फोटो–खींचकर वाट्सएप पर अपलोड कर शिकायत कर साफ–सफाई करायी जा रही है। इस तरह सूचना एवं संचार तकनीकी में क्रांति आई है। सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति ने ज्ञान के द्वार खोल दिये है। बुद्धि एवं भाषा के मिलाप से सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे आर्थिक संपन्नता की ओर भारत अग्रसर हो रहा है। इलेक्ट्रॉनिक वाणिज्य के रूप में ई–कॉमर्स, इन्टरनेट द्वारा डाक भेजना ई–मेल द्वारा संभव हुआ है। ऑनलाईन सरकारी कामकाज विषयक ई–प्रशासन, ई–बैंकिंग द्वारा बैंक व्यवहार, ऑनलाईन, शिक्षा सामग्री के लिए ई–एजुकेशन ई–मेडीसिन आदि माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी का विकास हो रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के बहुआयामी उपयोग के कारण विकास के नये द्वार खुल रहे है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र तेजी से विकसित हो रहा हैं इस क्षेत्र में विभिन्न प्रयोगों पर अनुसंधान करके विकास की गति को बढ़ाया गया हैं

सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरी धरती को एक गाँव बना दिया है। इसने विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं की जोडकर एक वैश्विक अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है। यह नवीन अर्थव्यवस्था अधिकाधिक रूप से सूचना के रचनात्मक व्यवस्था व वितरण पर निर्भर है। इसके कारण व्यापार और वाणिज्य में सूचना का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसलिए इस अर्थव्यवस्था को सूचना अर्थव्यवस्था या ज्ञान अर्थव्यवस्था कहना सर्वोत्तम हागा।

सुझाव :– सूचना एवं संचार तकनीकी द्वारा समाचार (न्यूज) भारत स्तर से बाहर विश्व स्तर पर विश्व का समाचार (न्यूज) भारत के सभी न्यूज चैनलों द्वारा दिखाया जाना चाहिए। सूचना एवं संचार तकनीकी द्वारा सभी देशों में हो रहे गतिविधियों का हाल इस माध्यम से एक दूसरे देशों में समाचार द्वारा दिखाया जाना चाहिए।

इस प्रकार न्यूज चैनलों का क्षेत्र व्यापक हो जायेगा विश्व के सभी न्यून चैनलों एवं भारत के न्यूज चैनलों का दायरा भारत तक सीमित न होकर विश्व स्तर तक होने से हमें एक–दूसरे देशों की तकनीकी का पता चलेगा और विश्व तीव्र गति से प्रगति करेगा।

सूचना एवं संचार तकनीकी में अत्यधिक प्रगति हो रही है। ऐसे में भारत देश को स्वयं अपने देश का स्वदेशी सर्च इंजन जनहित में भारत में ही बनाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

- www.csir.res.in
- www.mnaidunia.jagran.com
- www.en.m.wikipedia.org.
- https;//hi.m.wikipedia.org
- www.hindi.indiawaterportal.org.
- www.cimap.res.in
- www.s.navbharattimes.indiatimes.com

SRF

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

73वें संविधान संशोधन के पूर्व एवं पश्चात स्थानीय स्वशासन व्यवस्था

डॉ. श्रीमति अनुराधा चंदेल
सहायक प्राध्यापक, राजनीति शास्त्र, अंजुमन इस्लामिया महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारत में स्थानीय स्वशासन व्यवस्था लागू करने के संदर्भ में वर्तमान ''पंचायतीराज' शब्द भारत में प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण पर श्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में गठित अध्ययन दल की अनुशंसाओं के बाद प्रयुक्त हुआ। इसके पूर्व ग्राम और क्षेत्रीय स्तर की स्वायत्तशासी संस्थाओं के लिए ''ग्राम पंचायत'', डिस्ट्रिक्ट पार्क'' अथवा ''सब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड'' शब्दों का प्रयोग किया जाता था। पंचायतीराज ग्राम, विकासखंड एवं जिला स्तर पर पंचायतीराज्य के स्वप्नदृष्टा गांधी जी तथा संरक्षक एवं मार्गदर्शक पंडित नेहरू की आशा और आकांक्षाओं के अनुरूप सहकारी समाज एवं पंचायतीराज की स्थापना का लक्ष्य रखा गया।

डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में संविधान सभा का प्रारूप तैयार करने वाली समिति ने कार्य करना प्रारंभ किया। ''भारतीय संविधान में पंचायत प्रणाली को प्रस्थापित करने का श्रेय संविधान सभा को मिला किंतु उसे व्यवहारिक रूप देकर विकसित करने का दायित्व राज्य सरकारों को दिया गया।'' इस प्रकार स्वतंत्र भारत के संविधान में पंचायतीराज व्यवस्था का प्रावधान रखा। संविधान के चालीसवें अनुच्छेद में कहा गया कि—

''राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और उन्हें इतनी सत्ता तथा शक्तियां सौंपेगा जो उनकी संयुक्त सरकार की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बना सकें।''

1940 में पहली बार स्थानीय स्वशासन मंत्रियों का सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता केंद्रीय, स्वास्थ्य मंत्री के द्वारा की गयी। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने इसका उदघाटन किया। उन्होंने लोकतंत्र की सफलता के लिये स्थानीय शासन को अत्यंत महत्वपूर्ण बतलाते हुये कहा कि ''स्थानीय स्वशासन लोकतंत्र की किसी भी व्याख्या का सच्चा आधार है और होना चाहिए। हमारा कुछ ऐसा स्वभाव पड़ गया है कि हम उच्च स्तर पर ही लोकतंत्र की बात सोचते हैं निम्न स्तर पर नहीं। परंतु यदि नीचे से नींव का निर्माण नहीं किया गया तो संभव है लोकतंत्र सफल न हो सके।''

26 जनवरी 1950 में जब नया संविधान देश में लागू किया गया तो ग्रामीण स्थानीय स्वशासन को संविधान की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाने का प्रयास किया गया। स्थानीय प्रशासन को राज्यों की कार्यसूची अंतर्गत रखा गया तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में धारा 40 में कहा गया कि राज्य का कर्तव्य होगा कि वह ग्राम पंचायतों का संगठन इस प्रकार करें कि वे स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें।

तदुपरांत भारत में पंचायतीराज की स्थापना और स्थानीय शासन के विकास के लिये निरंतर प्रयास किये गये। इस दिशा में उत्तरप्रदेश सरकार को अग्रणी होने का गौरव प्राप्त हुआ। जहां सन 1947 में ही पंचायत अधिनियम तैयार हो गया और सन 1948 में पंचायत निर्वाचन संपन्न कराये गये।

2 अक्टूबर 1950 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारंभ किया गया किंतु कई कारणों से वांछित सफलता न मिल सकी। ग्रामीण क्षेत्रों की विकास गति में तीव्रता लाने एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रम व राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं को आशानुकूल सफलता न मिलने के कारणों से आदि की जांच के बाद आवश्यक, मार्ग दर्शन प्राप्त करने की दिशा में योजना आयोग द्वारा योजना कार्यक्रम पर एक समिति तत्कालीन गुजरात के मुख्यमंत्री बलवंतराय मेहता की अध्यक्षता में गठित की गयी, जिसे बाद में ''लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण'' पंचायतीराज का नाम दिया गया। इसके द्वारा 1957 में अपना प्रतिवेदन प्रकाशित किया गया जिसकी अनुशंसाएं स्वीकार कर ली गई। केंद्र सरकार द्वारा राज्य सरकारों से इसे लागू करने का आग्रह किया गया।

सर्वप्रथम राजस्थान सरकार द्वारा 2 अक्टूबर 1959 को राज्य में पंचायतीराज लागू करके अग्रणी होने का गोरव प्राप्त किया गया। इसके पश्चात अधिकांश राज्यों द्वारा पंचायतीराज व्यवस्था को लागू किया गया। मेहता समिति द्वारा पंचायतीराज के त्रिस्तरीय संस्थानिक ढांचे के अंतर्गत निचले स्तर पर जिला परिषदों की स्थापना किये जाने की अनुशंसा की गयी। मध्यप्रांत में पंडित द्वारका प्रसाद मिश्र इस समय स्थानीय शासन मंत्री थे। उस समय जिला परिषदों के कार्यक्षेत्र का इतना अधिक विस्तार किया गया कि संपूर्ण जिला

प्रशासन ही इसके अंतर्गत आ गया तथा प्रशासन ही इसके अंतर्गत आ गया तथा प्रशासन की वैधता को समाप्त कर दिया गया। इस योजना राज्यपाल तथा अन्य लोगों ने कई आलोचना की जिसके कारण इसे लागू नहीं किया जा सका। ''वर्ष 1948 में मध्यप्रांत की विधानसभा ने संशोधन रूप में उसे मध्यप्रांत तथा बरार स्थानीय स्वशासन अधिनियम 1948 के द्वारा अंगीकार कर लिया गया। तथा इस रूप में वह जनपद स्थानीय शासन के नाम से विख्यात हुई।

''जनपद शब्द प्रशासन के लिये निर्मित गांव के समूह का अर्थबोध देता है जो कि प्राचीन भारत में प्रचलित था। जनपद योजना ऐसी नवीन कार्य विधि थी जिसने अनेक मामलों में नया मार्ग दिखलया। चूंकि जनपद ने जिले की अपेक्षा तहसील के छोटे क्षेत्र को महत्व प्रदान किया इससे स्थानीय शासन के विकास को महत्वपूर्ण गति मिली। इस प्रणाली ने शासन को जनता के अत्यधिक नजदीक कर दिया जिससे की रूचि शासन के कार्यों और गतिविधियों में तीव्र हुई। इस व्यवस्था में ग्रामीण और नगरीय शाखाओं के जनपद सभा का आंशिक नियंत्रण स्थापित कर उन्हें एकीकृत करने का प्रयास भी किया गया। जनपद में स्थित सभी सरकारी विभागों के कर्मचारियों पर जनपद सभा के मुख्यकार्यपालिका अधिकारी का नियंत्रण स्थापित किया गया। अपनी कमियों के बावजूद भी इस योजना के प्रशासन के विकेंद्रीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। ग्रामीण स्थानीय स्वशासन समिति ने अपने प्रतिवेदन में कहा था कि ''यद्यपि जनपद सभाओं की उपलब्धियां आशा से बहुत कम हैं फिर भी हम समझते हैं कि संस्थाओं का आस्तित्व पूर्णतः निरर्थक सिद्व नहीं हुआ है।

मध्यप्रदेश में ग्रामीण स्थानीय शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम 1981 का निर्माण किया गया था। इस अधिनियम के प्रयोजन के लिये त्रिस्तरीय पंचायत की स्थापना की गयी। इसमें किसी ग्राम अथवा ग्रामों के समूह के लिये ग्राम पंचायत तथा किसी खण्ड के लिये जनपद पंचायत तथा किसी जिले के लिये जिला पंचायत की स्थापना किया जाना सुनिश्चित किया गया था।

मध्यप्रदेश में पंचायतीराज व्यवस्था के त्रिस्तरीय स्वरूप को इस ढांचे द्वारा दर्शाया जा सकता है। परंतु इसका ढांचा मूल रूप से नहीं लिया गया है जो कि अन्य राज्यों में प्रचलित है। इस अधिनियम के तहत राज्य सरकार या राज्य सरकार द्वारा निर्मित प्राधिकृत किया गया कोई अधिकारी लिखित आदेश में ग्राम या ग्रामों के समूह के लिये ग्राम पंचायत स्थापित कर सकेगा। ऐसे आदेश में ग्राम पंचायत का वह नाम जिस नाम से वह जानी जायेगी उसका मुख्यालय उसकी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र की सीमायें और ग्राम पंचायत क्षेत्र की जनसंख्या विर्निष्ट की जायेगी।

मध्यप्रदेश में स्थानीय स्वशासन व्यवस्था :–

मध्यप्रदेश में राज्यशासन

- जिला पंचायत
- जनपद पंचायत
- ग्राम पंचायत

उस समय के विद्यमान अधिनियम में यह व्यवस्था दी गई कि राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा किसी जिले को खण्डों में विभाजित कर सकेगी। अधिसूचना में ऐसे खण्ड में समाविष्ठ उसका मुख्य क्षेत्र विनिर्दिष्ट किया जायेगा। प्रत्येक खण्ड के लिये एक जनपद पंचायज होगी जो उस खण्ड के नाम से जानी जायेगी। राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा जिला पंचायत स्थापित कर सकेगी अधिकारिता उसी जिले पर होगी।

प्रत्येक ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत एवं जिला पंचायत उस नाम से जो धारा 4 के अधीन के आदेश या अधिसूचना में उसके लिये विनिर्दिष्ट किया गया हो एक नियमित निकाय होगी। उसका शाश्वत उत्तराधिकारी होगा। प्रत्येक ग्राम पंचायत की कम से कम दस वार्डों में जैसा भी जिलाधीश अवधारित करें विभाजित किया जायेगा एवं प्रत्येक वार्ड एक सदस्यी वार्ड होगा।

पंचायत का गठन :– 73वें संविधान संशोधन पूर्व तथा मध्यप्रदेश पंचायत राज एवं ग्रामीण स्वराज अधिनियम के पूर्व पंचायतों की गठन व्यवस्था में अधिक अंतर नहीं था। उस समय यह प्रावधान था कि प्रत्येक ग्राम पंचायत क्षेत्र के लिये एक मतदाता सूची में नाम दर्ज किये जाने के लिये निरहित होगा।

यदि वह भारत का नागरिक नहीं है विकृत चित्त का है और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित कर दिया गया है, मतदान करने के लिये किसी ऐसी विधि उपबंधों के अधीन तत्समय निरहित है जो निर्वाचनों के संबंध में भ्रष्ट आचरणों और अन्य अपसाधों से संबंधित है। किसी भी ऐसे व्यक्ति का नाम मतदाता

सूची में से काट दिया जायेगा जो उसका नाम दर्ज कर दिये जाने के पश्चात इस प्रकार निरहित हो जाता है।

नाम दर्ज किये जाने के लिये शर्त :– 73वें संविधान संशोधन पूर्व नाम दर्ज करने हेतु प्रावधान था कि धारा 1 के उपबंधों के अधीन रहते हुये ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस वर्ष की जिसमें मतदाता सूची तैयार की जाती है या पुनरीक्षित की जाती है, जनवरी के प्रथम दिन को 18 वर्ष से कम आयु का नहीं है। उस ग्राम पंचायत क्षेत्र से संबंध विधानसभा निर्वाचन नामावली में दर्ज किया जाने के लिये अन्यथा अहित है। कोई भी व्यक्ति एक से अधिक ग्राम पंचायत क्षेत्रों की मतदाता सूचियों में नाम दर्ज कराने का हकदार नहीं होगा। पंचायत का पदाधिकारी होने के लिये निरर्हितायें कोई भी व्यक्ति किसी भी पंचायत का पदाधिकारी होने का पात्र नहीं होगा जो मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम 1981 के प्रारंभ होने के पूर्व या पश्चात–सिविल अधिकारी संरक्षण नियम 1955 के अधीन स्थापक पदार्थों के उपयोग, उपभोग या विक्रय से संबंधित किसी विधि के अथवा राज्य के किसी भाग में प्रवृत तत्समान किसी विधि के अधीन किसी अपराध या सिद्ध दोष ठहराया गया हो जब तक कि उसकी दोष सिद्ध के समय से पांच वर्ष की कालविधि या ऐसे कम कालविधि जो राज्य सरकार किसी विशिष्ट मामले में अनुज्ञा करें या किसी अपराध का सिद्ध दोष ठहराया गया हो और ऐसे कारावास में जो वह छः मास से कम का न हो दण्डित किया हो जब तक कि उसके छोड़े जाने के समय से पांच वर्ष की कालावधि या ऐसी कम कालविधि को राज्य सरकार किसी विशिष्ट मामले में अनुज्ञा करे, या न बीत चुकी हो।

जो किसी पंचायत के अधीन लाभ का कोई पद धारण करता हो या किसी अन्य स्थानीय अधिकारी की या किसी सहकारी सोसायटी की राज्य सरकार या केंद्रीय सरकार के नियंत्रणधीन किसी सेक्टर पब्लिक उपक्रम की सेवा में हो।

वस्तुतः 73वें संविधान के पूर्व मध्यप्रदेश राज्य में पंचायत राज अधिनियम–1990 लागू था जिसकी धाराएं उपधाराएं एवं नियम उस समय की पंचायत व्यवस्था पर लागू होते थे। 1992 में 73वें संविधान संशोधन के पूर्व एवं पश्चात मध्यप्रदेश पंचायतराज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम–1993 की रचना की गई। तथा संशोधन के पूर्व एवं पश्चात की व्यवस्थाओं में क्या और कहां परिवर्तन हुए हैं उनका तथ्य पूर्ण विश्लेषण संपूर्ण शोध पत्र में दिया गया है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. डॉ. एन. के. श्रीवास्तव ''भारत में पंचायतीराज'' 1989.
2. मोहन्ती डी.के., इंडियन ट्रेडिशियन फ्रॉम मनु टू अम्बेडकर, अनमोल पब्लिकेशन प्रायवेट लिमिटेड न्यु दिल्ली (2003) पेज 171.
3. श्रीराम माहेश्वरी भारत में स्थानीय प्रशासन 1984 पृ. 22, 26.
4. विश्वप्रकाश गुप्त एवं मोहिनी गुप्त आजादी के 59 वर्ष, खण्ड–1 (2004) पृ. 85.
5. जहीर मोहम्मद शेख मध्यप्रदेश पंचायत अधिनियम 1981, पृ. 8–12.
6. डॉ. राधेश्याम द्विवेदी – मध्यप्रदेश पंचायतराज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम–1993 वर्ष 2001.

उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति छात्राओं की समस्याओं का अध्ययन

डॉ. निशा शर्मा
शोध निर्देशिका, महात्मा ज्योतिराव फुले विश्वविद्यालय, जयपुर
प्रतिमा दुबे
शोधार्थी, महात्मा ज्योतिराव फुले विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रस्तावना :– मानव जीवन का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव जीवन की दृष्टि चाहे जो भी रही हो, उसने शारीरिक शक्ति, मानसिक विकास, बौद्धिक उन्नति, भौतिक आनन्द और आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिये एकमात्र शिक्षा का ही सहारा लिया है। मानव ने असम्भव से असम्भव कार्य को शिक्षा द्वारा ही सम्भव बनाया है।

शिक्षा मनुष्य के लिये तृतीय नेत्र के समान है। शिक्षा वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिये ही नहीं, अपितु सभ्यता और संस्कृति के विकास के लिये भी अपरिहार्य है। शिक्षा ही वह साधन है जो मानव को प्राणी जगत के अन्य जीवों से पृथक करती है, जिससे व्यक्ति अपना व्यक्तिगत जीवन सुखमय बनाता है तथा सामाजिक जीवन के अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए राष्ट्र के विकास में सक्रिय योगदान देता है।

आज हम वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। हमारे चारों ओर विज्ञान ही दृष्टि गोचर होता है। फलस्वरूप आज मानव जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र शेष नहीं है, जो विज्ञान के चमत्कारों से अप्रभावित रह गया है। खाने–पीने, उठने बैठने, लिखने पढ़ने, यात्रा, उद्योग और ईंधन के अतिरिक्त कला और साहित्य भी आज विज्ञान से प्रभावित है। प्रकृति पर क्रमशः विजय के द्वारा सुख–सुविधाओं में वृद्धि विज्ञान की ही देन है।

आधुनिक समय में जिस प्रकार शिक्षा का प्रसार हो रहा है, वहीं पर अभिभावकों एवं शिक्षा तन्त्र के प्रबन्धकों ने शिक्षा प्रदान करने वाली शिक्षण संस्थाओं को भी पाठ्यक्रमों के आधार पर कई भागों में विभाजित करके खड़ा कर दिया है। उन्होंने इस विभिन्नता का आधार विज्ञान, वाणिज्य एवं कला संकाय को बनाया है, उनमें से मुख्यतः यहाँ कला संकाय के अन्तर्गत गृह विज्ञान विषय एवं उसके प्रयोगात्मक स्वरूप को उद्दत किया जा रहा है।

इतना उपयोगी विषय होने के बावजूद भी उच्च माध्यमिक स्तरों पर गृह विज्ञान विषय में प्रायोगिक कार्य व प्रयोगों के प्रति घटती रूचि एक गंभीर मसला है। गृह विज्ञान विषय में सिद्धान्त व प्रयोग को एक साथ लेकर चलने की जिस धारणा की बात की जाती है, वह मूर्त रूप नहीं ले सकी है, कारण है – संसाधनों और कुशल शिक्षकों का अभाव।

गृह विज्ञान प्रायोगिक शिक्षा के मामले में ग्रामीण और शहरी बालिकाओं के बीच बहुत बड़ी खाई है। इसके कई कारण हैं, लेकिन प्रमुख कारण है – ग्रामीण क्षेत्रों में ढाँचागत सुविधाओं का अभाव, अपर्याप्त सहायक–तंत्र, सूचना का अभाव और अन्य संसाधनों की कमी। साथ ही तमाम शैक्षणिक सहायता में व्यवस्था का शहर की ओर ज्यादा झुकाव। गृह विज्ञान क्षेत्र में रोजगार और शिक्षण संबंधी सूचनाओं के मामले में ग्रामीण क्षेत्र की बालिकाएँ अनभिज्ञ रहती हैं, जिसके फलस्वरूप वे न केवल इस विषय बल्कि इसके प्रयोगात्मक कार्यों में समस्याग्रस्त रहती हैं।

समस्या अभिकथन :– उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति छात्राओं की समस्याओं का अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य :–

(1) उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र की छात्राओं की समस्याओं का अध्ययन करना।
(2) उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति सरकारी एवं निजी विद्यालयों की छात्राओं की समस्याओं का अध्ययन करना।

अनुसंधान विधि :– शोधकर्त्री ने अपने शोध कार्य के लिये सर्वेक्षण विधि को आधार बनाया है।

ISSN : 2394-3580 **Swadeshi Research Foundation** Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

चर :–

1. **स्वतन्त्र चर :–** गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति छात्राओं की समस्याएँ।

न्यादर्श :– प्रस्तुत शोध कार्य में हनुमानगढ़ जिले के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के उच्च माध्यमिक स्तर के सरकारी एवं निजी विद्यालयों में गृह विज्ञान विषय को ऐच्छिक विषय के रूप में लेने वाली कुल 220 छात्राओं {110 छात्राएँ ग्रामीण क्षेत्र (55 सरकारी विद्यालयों से + 55 निजी विद्यालयों से) + 110 छात्राएँ शहरी क्षेत्र (55 सरकारी विद्यालयों से + 55 निजी विद्यालयों से)} को अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में चुना गया है, जिनकी आयु 16 से 19 वर्ष के मध्य है।

प्रयुक्त उपकरण :– अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण निम्न हैं –

- **गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति छात्राओं की समस्या संबंधी प्रश्नावली** – स्वनिर्मित प्रश्नावली।

सांख्यिकी – अध्ययन में प्रयुक्त की जाने वाली सांख्यिकी मध्यमान, प्रमाप विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात है।

अध्ययन में प्रयुक्त परिकल्पनाएँ :–

परिकल्पना – 1 उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र की छात्राओं की समस्याओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

समूह	संख्या N	मध्यमान $(\bar{X})$	प्रमाप विचलन (σ)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर
ग्रामीण छात्राएँ	110	26.44	3.284	3.866	अस्वीकृत
शहरी छात्राएँ	110	29.96	3.956		

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गृह विज्ञान विषय के प्रायोगिक कार्य प्रयोगशाला में करवाये जाने में, प्रयोग के दौरान प्रयोग संबंधी समुचित दिशा–निर्देश दिये जाने में, विषय अध्यापक न होने के कारण प्रयोगात्मक कार्य नहीं कर पाने में, गृह विज्ञान प्रयोगशाला नवीन उपकरणों से सुसज्जित होने में, प्रयोग हेतु आवश्यक उपकरण एवं सामग्री समय पर उपलब्ध कराये जाने में तथा विद्यालय द्वारा समय–समय पर गृह विज्ञान शिक्षण संबंधी संगोष्ठियों/सेमीनार का आयोजन नहीं करवाये जाने आदि गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति समस्याओं संबंधी कारकों में उच्च माध्यमिक स्तर की ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र की छात्राओं में असमानता पायी जाती है।

परिकल्पना – 2

उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं निजी विद्यालयों की छात्राओं की समस्याओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

समूह	संख्या N	मध्यमान $(\bar{X})$	प्रमाप विचलन (σ)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर
सरकारी विद्यालयों की छात्राएँ	55	24.18	2.469	3.991	अस्वीकृत
निजी विद्यालयों की छात्राएँ	55	28.46	3.116		

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गृह विज्ञान प्रयोगशाला में प्रायोगिक कार्य कराने से पूर्व संबंधित प्रयोग का प्रदर्शन किये जाने में, प्रयोगशाला में प्रायोगिक कार्य स्वयं करने में, प्रायोगिक कार्य में विषय अध्यापक का दक्ष/निपुण होना अनिवार्य होने में, प्रायोगिक कार्य से संबंधित फाईल स्वयं बनाने में, प्रायोगिक कार्य सदैव प्रयोगशाला में ही करने में, क्षेत्रीय कार्य करने हेतु विद्यालय से बाहरी क्षेत्रों में जाने में तथा पुस्तकालय में गृह विज्ञान विषय से संबंधित सभी सन्दर्भ पुस्तकें उपलब्ध होने आदि गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति समस्याओं संबंधी कारकों में उच्च माध्यमिक स्तर के ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी एवं निजी विद्यालयों की छात्राओं में असमानता पायी जाती है।

परिकल्पना – 3 उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं निजी विद्यालयों की छात्राओं की समस्याओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

समूह	संख्या N	मध्यमान ($\bar{X}$)	प्रमाप विचलन (σ)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर
सरकारी विद्यालयों की छात्राएँ	55	26.55	2.842	3.742	अस्वीकृत
निजी विद्यालयों की छात्राएँ	55	30.14	3.668		

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गृह विज्ञान के प्रायोगिक कार्य के दौरान आने वाली समस्याओं का समाधान विषय अध्यापक द्वारा किये जाने में, प्रायोगिक कार्य प्रयोगशाला में न करवाकर केवल प्रयोग संबंधी फाईल ही तैयार करवाये जाने में, प्रयोगशाला में उपकरणों को प्रयोग में लेने से पूर्व उनकी समुचित जानकारी प्रदान किये जाने में, प्रयोगशाला में कराये गये प्रयोगों का घर पर अभ्यास करने हेतु उपकरण व सामग्री उपलब्ध हो जाने में, क्षेत्रीय कार्य के दौरान आवश्यकतानुसार सूचनाएँ आसानी से उपलब्ध नहीं होने में, गृह विज्ञान विषय के पाठ्यक्रम में निर्धारित समस्त प्रायोगिक कार्य करवाये जाने में तथा गृह विज्ञान के प्रयोगों द्वारा सैद्धान्तिक ज्ञान को आसानी से समझ लेने आदि गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति समस्याओं संबंधी कारकों में उच्च माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के सरकारी एवं निजी विद्यालयों की छात्राओं में असमानता पायी जाती है।

परिकल्पना – 4 उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों की छात्राओं की समस्याओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

समूह	संख्या N	मध्यमान ($\bar{X}$)	प्रमाप विचलन (σ)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर
ग्रामीण छात्राएँ (सरकारी विद्यालय)	55	24.18	2.469	1.642	स्वीकृत
शहरी छात्राएँ (सरकारी विद्यालय)	55	26.55	2.842		

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गृह विज्ञान संबंधी प्रयोग वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध विधि से कराये जाने में, प्रयोगशाला में प्रायोगिक कार्य के दौरान अध्यापक द्वारा सहायता किये जाने में, विषय अध्यापक द्वारा प्रायोगिक कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किये जाने में, प्रायोगिक कार्य शैक्षिक सत्र में नियमित रूप से नहीं करवाये जाने में, क्षेत्रीय कार्य के दौरान लोगों का व्यवहार सहयोगात्मक नहीं रहने में, प्रयोगात्मक कार्यों को रोचक व उत्साहवर्धक बनाने के लिए अन्य क्रियाकलाप/नवाचार का आयोजन नहीं किये जाने में तथा प्रयोगों द्वारा सिद्धान्तों की विश्वसनीयता की जाँच नहीं हो पाना मानने आदि गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति समस्याओं संबंधी कारकों में उच्च माध्यमिक स्तर की ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों की छात्राओं में समानता पायी जाती है।

परिकल्पना – 5 उच्च माध्यमिक स्तर पर गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के निजी विद्यालयों की छात्राओं की समस्याओं में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

समूह	संख्या N	मध्यमान ($\bar{X}$)	प्रमाप विचलन (σ)	क्रान्तिक अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर
ग्रामीण छात्राएँ (निजी विद्यालय)	55	28.46	3.116	1.082	स्वीकृत
शहरी छात्राएँ (निजी विद्यालय)	55	30.14	3.668		

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गृह विज्ञान विषय अध्यापक द्वारा प्रयोगात्मक कार्यों को समुचित महत्त्व दिये जाने में, प्रयोगात्मक कार्यों हेतु कालांश निर्धारण में, प्रायोगिक कार्य साप्ताहिक करवाये जाने में, पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रयोग मानसिक स्तर के अनुकूल होने में तथा गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक ज्ञान से तार्किक शक्ति का विकास होने आदि गृह विज्ञान विषय में प्रयोगात्मक कार्य के प्रति समस्याओं संबंधी कारकों में उच्च माध्यमिक स्तर की ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के निजी विद्यालयों की छात्राओं में समानता पायी जाती है।

शैक्षिक निहितार्थ :–

(i) शोध परिणामों को देखकर छात्राऍं अपनी गृह विज्ञान विषय के प्रायोगिक कार्यों में आ रही समस्याओं का वास्तविक मूल्यांकन कर, उन्हें दूर करने का प्रयास करेंगी।

(ii) प्रशासक वर्ग / विद्यालय प्रशासन भी गृह विज्ञान विषय के प्रायोगिक कार्यों में छात्राओं की व्यवहारिक समस्याओं यथा शिक्षक संबंधी, पाठ्यक्रम संबंधी, प्रयोगशाला संबंधी, उपकरणों संबंधी आदि को जानकर, उनके निराकरण का प्रयास करेंगे।

(iii) प्रशासक वर्ग को विज्ञान, वाणिज्य एवं कला संकाय के अन्य विषयों के साथ–साथ गृह विज्ञान विषय को भी पर्याप्त महत्ता दी जानी चाहिए, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में निपुण शिक्षकों की नियुक्ति, प्रयोगशालाओं में उपकरणों की उपलब्धता

(iv) विद्यालय प्रशासन (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में) को गृह विज्ञान विषय के प्रायोगिक कार्यों के अन्तर्गत प्रयोगशाला में सम्पादित होने वाले आन्तरिक प्रयोगों के साथ–साथ बाह्य सर्वे / भ्रमण का भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिए ताकि छात्राओं की झिझक दूर हो सके तथा वे विषयवस्तु में हो रहे नवाचारों को जान सकें।

(v) छात्राऍं भी क्षेत्रीय भ्रमण / सर्वे के दौरान संबंधित संस्थानों/व्यक्तियों से सूचनाऍं एकत्रित करें तथा अपने विषय के अन्तर्गत प्राप्त जानकारी से उन्हें अवगत करावें ताकि छात्राओं में चिंतन, निर्णय, तार्किक क्षमता का विकास हो, साथ ही झिझक भी दूर हटे और वे अपने इच्छित विषय के निष्पत्ति स्तर में सुधार ला सकें।

(vi) अभिभावक अपने बच्चों में लिंग भेद के आधार पर अन्तर न करें तथा उनकी समस्याओं को समझें तथा उन्हें दूर करने का यथासंभव प्रयास कर अभिप्रेरित करें, साथ ही उनकी रूचि के आधार पर विषय चयन, व्यवसाय चयन में यथासंभव सहायता करें।

(vii) शिक्षक, छात्राओं की आयु, मानसिक स्तर, रूचि आदि को ध्यान में रखते हुए उनकी समस्याओं को समझकर उन्हें दूर करने का पूरा–पूरा प्रयास करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

- चौबे, सरयू प्रसाद (1990) : शिक्षा के दार्शनिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आधार, इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
- गुप्ता, रामबाबू (1995) : भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, रतन प्रकाशन मंदिर, प्रोफेसर कॉलोनी, दिल्ली गेट, आगरा
- गुप्ता, एच.पी. (2005) : आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- जायसवाल, सीताराम (2011) : शिक्षा में निर्देशन और परामर्श, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
- कपिल, एच.के. (2005) : अनुसंधान विधियाँ, हरप्रसाद भार्गव, आगरा
- लोढ़ा, एम.पी. (2007) : नैतिक शिक्षा के विविध आयाम (द्वितीय संस्करण) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- नागर, के.एन. (2009–10) : सांख्यिकी के मूल तत्त्व, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ
- पाल, हंसराज (2006) : प्रगत शिक्षा मनोविज्ञान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- श्रीवास्तव, डी.एन. (2007) : मनोवैज्ञानिक अनुसंधान एवं मापन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

ISSN : 2394-3580 Swadeshi Research Foundation Vol. – 6, No. - 9 July 2019
A Monthly Journal of Multidisciplinary
International Peer Refereed, Review, Indexing & Impact Factor - 4.2 Research Journal

वर्तमान में साहित्य की चुनौतियाँ

प्रीती सिंह
शोधार्थी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

वस्तुतः वर्तमान दौर इक्कीसवीं सदी का है। न केवल इस सदी अपितु साहित्य के सामने भी आज कई चुनौतियाँ मुँह बाए खड़ी हैं। चाहे वे राजनीति जगत की हों, चाहे समाज से संबंधित हो या फिर संस्कृति की ही क्यों न हों। इन तमाम चुनौतियों में राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर की चुनौतियाँ शामिल हैं जिनसे न केवल समाज बल्कि साहित्य भी जूझ रहा है। इन चुनातियों में यदि दलित, स्त्री, आदिवासी और किन्नर संबंधी चुनातियाँ यदि सामाजिक स्तर की हैं तो सत्ता की विसंगतिया, अलगाववाद और नक्सलवाद आदि राष्ट्रीय समस्याएँ हैं तो आतंकवाद, पर्यावरणीय संकट और सीमा–सुरक्षा आदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की चुनातियाँ हैं। इसके अलावा पारिवारिक विघटन, किसानों की समस्याएँ, मूल्यों में क्षरण, तकनीकी का प्राधान्य, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति, संवेदनहीनता, साम्प्रदायिकता, दंगा, विज्ञापनतंत्र, शोषण, गरीबी और अशिक्षा आदि चुनातियों का वर्तमान साहित्य सामना करता नजर आ रहा है।

अपने समय के ये संकट कविताओं, कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और लघुकथाओं समेत साहित्य की लगभग हर विधाओं में बराबर दृष्टिगोचर हो रहा है। उदय प्रकाश की कविताएँ यदि शहरी संवेदनहीनता, बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति को बेनकाब करती हैं तो एकान्त श्रीवास्तव की कविताएँ अपने समय में आन पड़े जल, जंगल और जमीन के संकटों से जूझती हैं, केदारनाथ सिंह की कविताओं में यदि लोक का संस्पर्श है तो अशोक वाजपेयी की कविताएँ जन्म–मृत्यु और प्रेम की विशद व्याख्या करती हैं, सौमित्र मोहन यदि चाकू से खेलते हैं तो वीरेन डंगवाल 'इसी दुनिया में' फँसे 'दुष्चक्र में स्रष्टा' की तलाश करते हैं, राजेश जोशी चाँद की वर्तनी सुधारते हुए 'नेपथ्य में हँसी' गयी हँसी को सुनते हैं तो आलोक धन्वा अपनी दुनिया रोज बनाते हैं, मंगलेश डबराल यदि 'घर का रास्ता' खोजते हैं तो चंद्रकांत देवताले पत्थर फेंकते हैं। इसी क्रम में बद्रीनारायण को 'सच सुने कई दिन हुए' हैं तो अरुण कमल को 'पुतली में संसार' दिखाई देता है।

इतना ही नहीं 'इस पौरुष पूर्ण समय में' भी कवयित्री कात्यायनी स्त्री की पीड़ा व्यक्त कर देती हैं, तो अनामिका की 'कविता में औरत' अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती है। नीलेश रघुवंशी को यदि 'घर निकासी' का दर्द है तो गीताश्री 'कविता जितना हक' माँगती हैं। साथ ही ओमप्रकाश वाल्मीकि के माध्यम से समूचा दलित 'सदियों का संताप' महसूस करते हुए कह उठता है 'बस्स बहुत हो चुका!' पर 'अब और नहीं', तो मलखान सिंह ब्राह्मणों को अपनी यातना की करुण दास्तान सुनाते हैं क्योंकि उनकी इस यथास्थिति के लिए कहीं–न–कहीं वे ही जिम्मेदार हैं। वर्तमान साहित्य जगत में यदि निर्मला पुतुल सैकड़ों आदिवासियों के साथ 'अपने घर की तलाश में' निकलती हैं तो सुशीला टाकभौरे को 'शिकंजे का दर्द' सालने लगता है। इसके अलावा वर्तमान साहित्य में शिवमूर्ति की कहानियों में यदि आंचलिकता बोध है तो रणेंद्र के उपन्यासों में आदिवासियों की पीड़ा बड़े ही मार्मिक और कारुणिक ढंग से व्यक्त हुई है।

वर्तमान साहित्य में पर्यावरण–संकट एक सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। आज वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की चिंता व्यक्त की जा रही है। बड़े–बड़े कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले धुएँ ने हवा को विषाक्त कर दिया है और उनसे निकलने वाले प्रदूषित जल ने नदियों और तालाबों के जल को भी जहरीला बना दिया है। मोटर वाहनों से निकलने वाली कार्बन मोनो ऑक्साइड और ए. सी. एवं फ्रिज से निकलने वाली क्लोरो फ्लोरो कार्बन ने ओजोन परत को गहरे से प्रभावित किया है, जिससे पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर आ रही हैं और त्वचा कैंसर व मोतियाबिंद आदि जटिल बीमारियों को जन्म दे रही हैं। वैश्विक ऊष्णता के चलते बड़े–बड़े ग्लेशियर पिघल रहे हैं। फलस्वरूप जल–स्तर बढ़ता जा रहा है और तटीय क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के आवास का संकट गहराता जा रहा है। हमारे समय के प्रमुख कवि एकान्त श्रीवास्तव ने अपनी एक कविता 'विरासत' में इस संकट को इन शब्दों में व्यक्त किया है–

सूरज और चाँद को लग गया ग्रहण
डालियों में धँस गए विष बुझे तीर
नदियों में घुल गया हत्यारों का लहू
फूलों पर बैठ गई बारूद की गंध
क्या छोड़ जाऊँगा विरासत में आखिर।"(1)

आगे वे जल–संकट पर भी अपनी चिन्ता जाहिर करते हैं–

"सूखी हुई लहरें थीं रेत में
शंख, सीपी और घोंघे थे
एक पूरा समुद्र था सूखा हुआ
मगर पानी कहीं नहीं था।"(2)

वनों की अंधाधुंध कटाई ने जहाँ एक ओर पर्यावरण को असन्तुलित किया है वहीं दूसरी ओर जीव–जंतुओं और पशु–पक्षियों के आशियाने को भी उजाड़ दिया है, जिससे कई जीवों का अस्तित्व ही संकट में है। और–तो–और कई वन्य जीव लुप्तप्राय भी हैं जिनका नाम 'रेडबुक डाटा' में वर्णित किया जाता है। कवि वीरेन डंगवाल लुप्तप्राय गौरैया को इन शब्दों में दुलराते हैं–

मुझ पर संदेह मत करो गौरैया
लो, मैं खिड़की खोलता हूँ
जाओ, बाहर उड़ जाओ
धूप में अपने बदन को फुलाओ
और मटमैली ऊन का गुच्छा बनाओ।"(3)

न केवल वर्तमान साहित्य अपितु समूचे देश के लिए साम्प्रदायिक दंगे आज सबसे बड़ी चुनौती के रूप में सामने आ रहे हैं। चुनावी मौसम के करीब आते ही सत्ता को अपनी कुर्सी की चिंता सताने लगती है, इसलिए वह प्रायोजित दंगे करवाती है और ध्रुवीकरण की राजनीति करके अपनी कुर्सी सुरक्षित कर लेती है। लेकिन इन दंगों में हमेशा आम जनता ही पिसती है, उसे ही अपनों की कुर्बानी देनी पड़ती है, वही त्रिशूल, तलवार, कृपाण या गोली का शिकार होती है। ऐसी स्थिति में सर्वधर्मसमभाव और आपसी भाईचारे जैसे नैतिक पाठों को भुला दिया जाता है। एक अजीब प्रकार का उन्माद और विवेकशून्यता से लोग ग्रसित हो जाते हैं। तब सामने वाला इंसान सिर्फ मजहबी दुश्मन लगता है और देखते–ही–देखते हिंसा, रक्तपात और आगजनी जंगल में लगी आग की तरह फैलने लगते हैं। इस पूरे परिदृश्य को शिवमूर्ति के उपन्यास 'त्रिशूल' में महसूस किया जा सकता है। इसके अलावा मंगलेश डबराल भी अपनी एक कविता 'गुजरात के मृतक का बयान' में इस पीड़ा को इस शब्दों में बयां करते हैं–

"मेरी औरत मुझसे पहले ही जला दी गई
वह मुझे बचाने के लिए मेरे आगे खड़ी हो गई थी
और मेरे बच्चों का मारा जाना पता ही नहीं चला
वे इतने छोटे थे उनकी कोई चीख भी सुनाई नहीं दी।"(4)

लेकिन काबिल–ए–तारीफ है कि इस नफरत भरे माहौल में आज का कवि उम्मीद का दामन कभी नहीं छोड़ता। उसे इस बात की आशा है कि आततायी चाहे जितना जोर लगा लें, परन्तु सदियों की आपसी मोहब्बत, भाईचारा और यह मेल–मिलाप इतनी आसानी से नहीं दूर हो जाएगा। हाँ ऐसी परेशानियाँ महज कुछ ही दिनों के लिए होती हैं, उनसे घबराना कतई नहीं चाहिए क्योंकि बकौल वीरेन डंगवाल एक न एक दिन उजले दिन जरूर आएँगे। वे ढाढस बँधाते हैं कि–

"मैं नहीं तसल्ली झूठ–मूठ की देता हूँ
हर सपने के पीछे सच्चाई होती है
हर दौर कभी तो खत्म हुआ ही करता है
हर कठिनाई कुछ राह दिखा ही देती है।
आये हैं जब हम चलकर इतने लाख वर्ष
इसके आगे भी तब चलकर ही जायेंगे,
आयेंगे, उजले दिन जरूर आयेंगे।"(5)

वर्तमान साहित्य में हाशिए के समाज (दलित, स्त्री, आदिवासी, थर्ड जेंडर आदि) भी एक चुनौती के रूप में उभरे हैं। इस समाज के लोग केंद्र की राजनीति का शिकार हुए हैं जिन्हें कभी एक इंसान के रूप में देखे जाने की आवश्यकता ही नहीं महसूस की गयी। इन्हें मुख्य धारा के तथाकथित सभ्य लोगों द्वारा हाशिए में ढकेल दिया गया है जो कहीं–कहीं तो पशुवत जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। कहना न होगा कि इन सभी समुदायों की पीड़ा आज साहित्य के माध्यम से व्यक्त हो रही है। स्त्रियों की पीड़ा को मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, प्रभा खेतान, जया जादवानी, अलका सरावगी, अनामिका, गगन गिल, मधु कांकरिया और चित्र मुद्गल आदि कथाकारों की कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से अनुभव किया जा सकता है। समाज में स्त्रियों से साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता रहा है। आज तक उनका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार ही नहीं किया गया। वे किसी की पत्नी, किसी की माँ, किसी की बहन तो किसी की प्रेमिका रही हैं। उनकी इस व्यथा को प्रभा खेतान के उपन्यास 'अपने–अपने चेहरे'(1994) की पात्र रमा के इस कथन से महसूस कर सकते हैं "मेरा परिचय क्या

है इस उम्र में? किसकी पत्नी किसकी माँ? किस घर की बहू? मैं न सधवा, न विधवा।"(6) इसी भाव भूमि पर रजनी तिलक भी कहती हैं कि–

"औरत औरत होती है
उसका न कोई धर्म
न कोई जात होती है।
वह सुबह से शाम तक खटती है
घर में मर्द से पिटती है
सड़कों पर शोहदों से छिड़ती है।"

वर्तमान साहित्य थर्ड जेंडर की समस्याओं से भी सरोकार रखता है। प्रदीप सौरभ के उपन्यास 'तीसरी ताली' और हाल ही में प्रकाशित चित्रा मुद्‌गल के उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में समाज के इन तृतीयक लिंगी इंसानों की करुण दास्तान से परिचित हुआ जा सकता है। इसके अलावा साहित्य के क्षेत्र में इस वर्ग के लोग स्वयं अपनी मौजूदगी दर्ज करवा रहे हैं। इस कड़ी में हिजड़ा समाज की ख्यातिलब्ध समाजसेविका और रचनाकार लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' को भी परिगणित किया जा कहता है।

बीसवीं शताब्दी के आखिरी दो–तीन दशकों से दलितों ने भी साहित्य के क्षेत्र में अपनी पैठ बनायी है। इस बीच दलित आत्मकथाकारों ने अपनी आत्मकथाओं में न केवल अपनी अपितु अपने पूरे कुनबे के यथार्थ से हमारा परिचय करवाया। इन रचनाओं में उन्होंने दलितों पर हो रहे अत्याचारों, छुआ–छूत, गाली–गलौज और सवर्णों के द्वारा दी गयी यातना को बहुत ही आक्रोशित और बेलाग शब्दों में प्रस्फुटित कर दिया है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन', डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया' और 'मणिकर्णिका', शरणकुमार लिम्बाले की 'अक्करमाशी', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे', सूरजपाल सिंह चौहान की 'तिरस्कृत', श्यौराज सिंह बेचौन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' और सुशीला टकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' आदि आत्मकथाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वर्तमान साहित्य इन तमाम चुनौतियों को भी अंगीकार करते चल रहा है।

आज के साहित्य में हमें पारिवारिक विघटन की समस्या की अनुगूँज भी सुनायी पड़ती है। गाँवों से शहरों और शहरों से विदेशों में हो रहे पलायन से न केवल पारिवारिक व्यवस्था चरमरा उठी है बल्कि संस्कृति भी प्रभावित हुई है। गाँव धीरे–धीरे बुजुर्गों के आश्रय स्थल होते जा रहे हैं। एकल परिवार की प्रथा ने कहीं–न–कहीं लोगों को अपने बुजुर्गों, अपने गाँवों, अपने खेतों, अपनी लोक संस्कृति और अपनी प्रकृति से काट दिया है जिससे आज की पीढ़ी के मन में इन सब के प्रति कोई प्रेम या अपनत्त्व का भाव नहीं रह गया है, और जिसके प्रति प्रेम या अपनत्त्व का भाव नहीं रह जाता उसके प्रति हम बेखबर हो जाते हैं। वो सारी चीजें फिर उपेक्षा का शिकार हो जाया करती हैं। कहना न होगा कि आज इसीलिए बुजुर्ग, लोक और प्रकृति उपेक्षा के शिकार हैं। आज स्थिति यह है कि घर की देहरी से बाहर कदम रखने वाले का प्रत्यागमन बहुत ही कम हो पाता है। बच्चे पढ़ने–लिखने के उद्देश्य से बाहर जाते हैं और फिर बाहर के ही होकर रह जाते हैं। आजीविका के चलते भी अपने घर से निकला व्यक्ति बाहर ही रह जाता है और वहीं 'स्विफ्ट' हो जाता है। इस पढ़ने–लिखने और कमाने–धमाने के चक्कर में पति अलग, पत्नी अलग, बच्चे अलग और उस सब की दुनिया भी अलग–अलग हो जाती है और इसी तरह अलग–थलग रहते हुए वे अपनी–अपनी जिंदगियाँ काट देते हैं लेकिन दुर्भाग्य कि वे पुनः उस तरह नहीं मिल पाते। वे केवल स्मृतियों और सोशल मीडिया के माध्यम से ही एक–दूसरे से जुड़ पाते हैं। इस स्मृति की चर्चा भगवत रावत अपनी प्रसिद्ध और लोकप्रिय कविता 'अम्मा से बातें' में बहुत ही मार्मिक शब्दों में करते हैं–

"कितने शहर चले
कितने शहर बदले
लेकिन अम्मा ऐसा क्यों है
सपना अब भी
सिर्फ उसी घर का आता है।"(7)

इसी दर्द को कवि अरुण कमल इन शब्दों में कह उठते हैं–

"यह दुनिया माँ का गर्भ नहीं
जो एक बार घर से निकला
उसका फिर कोई घर नहीं।"(8)

घर से विलग होने की इस पीड़ा को विनोद कुमार शुक्ल ने भी 'गेंद का घर, मेरा घर' कविता में प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया है कि जिस प्रकार एक गेंद का कोई भी निश्चित ठौर–ठिकाना नहीं होता वैसे ही आज इंसान भी अपने घर से दूर होकर भटकता रहता है और भीड़ में खो जाता है। काव्यपंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"कितनी गेंदें पड़ोस में खो चुकी थीं।
गेंद ढूँढ़ने हम किसी के घर भी घुस जाते।
घरों में जाना और खो जाना हमने गेंद से सीखा।"(9)

आज का साहित्य सत्ता की विसंगतियों और उसके कुत्सित यथार्थ को भी बड़ी निडरता और निष्पक्षता से अभिव्यक्त कर रहा है। आजादी के सात दशकों के बाद भी गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी, किसानों की समस्याएँ, स्त्री–असुरक्षा और अस्मिता का संकट आदि चुनौतियाँ मुँह बाए खड़ी हैं। समाज का बिम्ब होने के नाते आज का साहित्य लगातार इन तमाम चुनौतियों को उभारता रहा है। मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' यदि सत्ता के विद्रूप यथार्थ और राजनीतिक विषमताओं को बेनकाब करता है तो संजीव का उपन्यास 'फाँस' भी किसानों की दयनीय दशा, उनके कर्ज, उनकी गरीबी और अन्ततः आत्महत्या के लिए विवश किसान जीवन की तमाम विडम्बनाओं से हमारा साक्षात्कार करवाता है। इसके अलावा 'सर्व शिक्षा अभियान' और 'सब पढ़ें सब बढ़ें' जैसे शैक्षिक नारे महज ख्याली पुलाव हैं। राजेश जोशी की कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' उन तमाम शैक्षिक योजनाओं को धता बताती है और कहती है कि–

"बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह।"(10)

सारी योजनाएँ आज केवल फाइलों और कागजों पर ही हैं, जमीनी स्तर पर समस्याएँ जस की तस हैं। अमीर और अमीर होते जा रहे हैं, गरीब और भी गरीब होते जा रहे हैं। इसी विसंगति को लक्ष्य करते हुए कभी अदम गोंडवी ने कहा था–

"तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है।
मगर ये आँकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है।।
तुम्हारी मेज चाँदी की तुम्हारे जाम सोने के।
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।।"(11)

हमारे समय के नेताओं का चारित्रिक पतन कितना और किस हद तक हुआ है, यह किसी से छिपा नहीं है। जितने भी चोर, बेईमान, उचक्के, लंपट और धूर्त हैं वे अपने कुकर्मों को ढकने के लिए या तो भक्ति का चोला ओढ़ लेते हैं या फिर जोड़–तोड़ और तिकड़मबाजी से धन इकट्ठा करके टिकट पाने की फिराक में लगे रहते हैं। दरअस्ल हमारे समय का यह कटु सत्य है कि आज राजनीति का देशसेवा से दूर–दूर तक कोई संबंध नहीं है। वह केवल एक पेशा हो गयी है, जिसमें जो जितना लोगों को लड़ा सके, जितनी पूँजी बटोर सके और जितना झूठ बोल सके वह उतना ही सफल होता है। देश के इन तथाकथित कर्णधारों की मंशा को धूमिल आदि कवियों ने तो पहले ही भाँप लिया था। समकालीन प्रसिद्ध कवि कुमार अम्बुज ने राष्ट्र के नेताओं की चुटकी इन शब्द–समूहों में ली है–

"बच्चा याद कर रहा है
राष्ट्र के नेताओं की जीवनियाँ
और हँस रहा है
राजनीति के पुरोधा के भाषण
और एक शराबी की कै का रंग
एक जैसा है।"(12)

उत्तरआधुनिकता के इस दौर में बाजारवाद और वृद्ध पूँजीवाद आज समाज में तीव्र गति से अपने पैर पसारते जा रहे हैं। इस बाजारवाद के साम्राज्य को फैलने और फलने–फूलने में भूमंडलीकरण ने चाणक्य की भूमिका अदा की है। फलतः इस बाजारवाद ने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। यह संस्कृति पूर्णतः लाभ पर आधारित है और इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार है, किसी को भी कैसे भी इस्तेमाल कर सकती है और–तो–और किसी के भी स्वाथ्य के साथ खिलवाड़ कर सकती है। इसी का ही असर है कि आज व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं में बेतहाशा वृद्धि होती जा रही है, फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के अपराधों में गुणात्मक और मात्रात्मक बढ़ोत्तरी होती जा रही है। इसी का प्रतिफलन है कि आज व्यक्ति स्वार्थी, अभिमानी और संवेदनशून्य होता जा रहा है। वह इतना व्यक्तिवादी होता जा रहा है कि अपने अलावा उसे दूसरों से कोई सरोकार नहीं रह गया है। इसीलिए वह अकेलेपन का शिकार हो रहा है और इस अकेलेपन ने उसे कुंठित और आत्मग्रस्त बना दिया है, जिसकी परिणति कभी–कभी आत्महत्या जैसी स्थिति का रूप ग्रहण कर लेती है। सोशल मीडिया का बढ़ता हुआ प्रचलन भी आग में घी डालने का काम कर रहा है। इन भयावह परिस्थितियों ने आज इंसानियत पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है। गायब होती जा रही इंसानियत, संवेदनशून्यता और उपभोक्तावादी संस्कृति जैसी आदि

चुनौतियों से साहित्य बराबर मुठभेड़ करता नजर आ रहा है। कथाकार उदय प्रकाश के उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की' की निम्नांकित पंक्तियाँ भूमंडलीकरण पर पुनर्विचार करने के लिए विवश करती हैं

"तो ये ग्लोबलाइजेशन हो रहा है? पूरी दुनिया एक गाँव बन रही है? सब कुछ अमेरिका हो जाएगा। अगर ऐसा है तो डॉ. वाटसन यहाँ से चले क्यों जाना चाहते हैं? सायाम तोम्बा चुप क्यों है? मधुसूदन के फादर उसे वापस केरल क्यों बुला रहे हैं? ईसाई पादरी स्टेन्स अपने नन्हें–नन्हें बच्चों के साथ अपनी कार के भीतर जल क्यों रहा है? कलकत्ते के गैर–बंगाली और मुंबई के गैर– मराठी डर क्यों रहे हैं? कश्मीर के अल्पसंख्यक हिन्दू अपना घर–जायदाद छोड़कर दर–दर क्यों भटक रहे हैं?"(13)

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अपने समय की तमाम विसंगतियों, विडम्बनाओं और यथार्थ को साहित्य व्यक्त करने में प्रायः सफल है। कहना न होगा कि वर्तमान की लगभग प्रत्येक चुनौती को साहित्य स्वीकार कर उनसे जूझता दिखाई पड़ रहा है। भले ही अभी कोई बहुत सटीक समाधान न खोजे गए हों लेकिन भविष्य को देखते हुए उम्मीद का दामन छोड़ देना भी कहाँ तक उचित है?

संदर्भ ग्रंथ :–

- रावत, भगवत (2014). प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 75
- कमल, अरुण (2006). पुतली में संसार. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 38
- शुक्ल, विनोद कुमार (2014). प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 135
- जोशी, राजेश (2004). नेपथ्य में हँसी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. सं. 23
- गोंडवी, अदम (2014). समय से मुठभेड़. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 59
- अम्बुज, कुमार (2014). प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. पृ. सं. 50
- प्रकाश, उदय (2006). पीली छतरी वाली लड़की. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 43
- श्रीवास्तव, एकान्त (2016). मिट्टी से कहूँगा धन्यवाद. नयी दिल्ली : प्रकाशन संस्थान. पृ.सं. 85
- वही, पृ. सं. 87
- डंगवाल, वीरेन (1991). इसी दुनिया में. इलाहाबाद : नीलाभ प्रकाशन. पृ. सं. 50
- डबराल, मंगलेश (2017). प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. पृ. सं.129
- डंगवाल, वीरेन (2015). दुष्चक्र में स्रष्टा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ.सं. 26
- तिवारी, रामचंद्र (2012). हिंदी का गद्य साहित्य. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृ. सं. 276

SRF